CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran
6.2
RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

श्रीहरिः

ीताकी राजविद्या

ीमद्भगवद्गीताके सातवें, आठवें और

वें अध्यायोंकी विस्तृत व्याख्या]

स्वामी रामसुखदास

मूल्य चार रुपये पचास पैसे

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीमद्भगवद्-

गीताकी राजविद्या

[श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें, आठवें और नवें अध्यायोंकी विस्तृत व्याख्या]

स्वामी रामसुखदास

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रकाशक—गोबिन्दभवन-कार्यालय—गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०४१ प्रथम संस्करण २०,०००

मूल्य चार रुपये पचास पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नम्र निवेदन

श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान-विज्ञानका असीम भण्डार है। इसे भलीभाँति समझनेमें मूर्धन्य विद्वानोंकी बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती है। इसे समझनेमें अच्छे-अच्छे तत्त्वालोचक भी अपने आपको असमर्थ पाते हैं, क्योंकि यह स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे निःसृत अति रहस्यमयी दिव्यवाणी है। साधक अपनी साधनाका सही मार्ग प्रशस्त करने एवं चरम लक्ष्यकी उपलब्धि करनेमें सफल हों। इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमारे परम श्रद्धेय एवं अधिकांश पाठकोंके लिये सुपरिचित स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजने इन तीनों (सातवें, आठवें एवं नवें) अध्यायोंकी बहुत ही सुन्दर, सरल एवं सुबोध व्याख्यामें 'गीताकी राजविद्या' नामक पुस्तक पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत की है। इसमें इस बातका दिग्दर्शन कराया गया है कि किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, देश, वेशका व्यक्ति भी निःसंकोच-भावसे स्वतन्त्रतापूर्वक भगवान्‌की ओर चलकर भगवत्-प्राप्ति कर सकता है।

साधकोंसे विनम्र निवेदन है कि प्रस्तुत पुस्तकका अध्ययन, मनन एवं भलीभाँति चिन्तन कर भगवत्-प्राप्तिसे निराश न होकर साधनामें पूर्ण तत्परतासे जुट जायँ।

—प्रकाशक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें, आठवें और नवें अध्यायका मूल पाठ ट—ध

प्राक्कथन .... न—स

सातवाँ अध्याय

श्लोक-संख्या	प्रधान विषय	पृष्ठ-संख्या
१—७	भगवान्‌द्वारा समग्ररूपके वर्णनकी प्रतिज्ञा करके अपरा-पराके संयोगसे प्राणियोंकी उत्पत्ति बताकर अपनेको सबका मूल कारण बतलाना ...	१—४८
८—१२	कारणरूपसे भगवान्‌की विभूतियोंका कथन ...	४८—६८
१३—१९	भगवान्‌के शरण न होनेवाले और शरण होने-वालोंका कथन	६८—१२६
२०—२३	अन्य देवताओंकी उपासनाओंका फलसहित वर्णन	१२६—१३६
२४-३०	भगवान्‌के प्रभावको न जाननेवालोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी प्रशंसा तथा भगवान्‌के समग्र-रूपका वर्णन	१३६—१८२
	सूक्ष्म विषय	
१	भगवान्‌के द्वारा समग्ररूपको सुननेके लिये आज्ञा ... (भगवान्‌में मन लगानेके उपाय २—८, विशेष बात ८, शरणागतिके पर्याय १०)	१—११
२	विज्ञानसहित ज्ञानको जाननेका माहात्म्य (ज्ञान और विज्ञान-सम्बन्धी विशेष बात १७)	१२—१९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्लोक-संख्या		पृष्ठ-संख्या
३	भगवत्तत्त्वको जाननेवालेकी दुर्लभताका वर्णन ...	२०–२६
४–५	अपरा और परा प्रकृतिका वर्णन ...	२६–३८
६	अपरा और परा प्रकृतिसे प्राणियोंकी उत्पत्ति बताकर भगवान्‌द्वारा अपनेको सबका महाकारण बतलाना (विशेष बात ४३)	३८—४५
७	भगवान्‌के सिवाय अन्य कारणका निषेध और कारणरूपसे भगवान्‌की व्यापकताका कथन ...	४५–४७
८–१२	कारणरूपसे भगवान्‌की सत्रह विभूतियोंका कथन (विशेष बात ५५)	४८–६८
१३	तीनों गुणोंसे मोहित प्राणियोंके द्वारा भगवान्‌को न जाननेका कथन	६८–७१
१४	गुणमयी दुरत्यय दैवी मायासे तरनेका उपाय शरणागतिको बतलाना ...	७१–७५
१५	दुष्कृती और मूढ़ पुरुषोंका भगवान्‌के शरण न होनेका कथन ... ... (विशेष बात ७९)	७६–८३
१६	चार प्रकारके सुकृती पुरुषोंका भगवान्‌के शरण होनेका कथन ... ... (विशेष बात ९३)	८३–९७
१७–१९	ज्ञानी (प्रेमी) भक्तकी महिमा और दुर्लभताका कथन ... ... (मार्मिक बात ११७, महात्माओंकी महिमा १२३)	९९–१२५
२०	कामनाओंसे मोहित प्राणियोंद्वारा अन्य देवताओंकी उपासनाका कथन	१२६–१२९
२१	भगवान्‌के द्वारा देवताओंमें श्रद्धा दृढ़ करनेका कथन	१२९–१३१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

श्लोक-संख्या पृष्ठ-संख्या

२२–२३ उपासनाके अनुसार गतिका वर्णन ··· १३२–१३६
(विशेष बात १३६)

२४–२५ भगवान्‌को न जाननेवालोंके सामने भगवान्‌का प्रकट न होना ··· १३६–१४४
(विशेष बात १३९)

२६ भगवान्‌की सर्वज्ञताका वर्णन ··· १४५–१४९

२७ प्राणियोंका द्वन्द्वोंसे मोहित होनेका कथन ··· १५०–१५५

२८–३० सगुण-निराकार, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार भगवान्‌के समग्ररूपको जाननेका फलसहित वर्णन १५५–१८२
(विशेष बात १६१, भगवान्‌के समग्ररूप-सम्बन्धी विशेष बात १७४, अध्याय सम्बन्धी विशेष बात १८०)

सातवें अध्यायके पद, अक्षर और उवाच १८३

सातवें अध्यायमें प्रयुक्त छन्द १८४

आठवाँ अध्याय

प्रधान विषय

१–७ अर्जुनके सात प्रश्न और भगवान्‌के द्वारा उनका उत्तर देते हुए सब समयमें अपना स्मरण करनेकी आज्ञा देना ··· ··· १८५–२२१

८–१६ सगुण-निराकार, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकारकी उपासनाका फलसहित वर्णन ··· २२१–२४६

१७–२२ ब्रह्मलोकतककी अवधिका और भगवान्‌की महत्ता तथा भक्तिका वर्णन ··· २४६–२६१

२३–२८ शुक्ल और कृष्ण-गतिका वर्णन और उसको जाननेवाले योगीकी महिमा ··· २६१–२८१

सूक्ष्म विषय

१–२ अर्जुनके सात प्रश्न ··· १८५-१८६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्लोक-संख्या		पृष्ठ-संख्या
३–५	भगवान्‌के द्वारा अर्जुनके सात प्रश्नोंका उत्तर ··· (विशेष बात १९५, मार्मिक बात २०७)	१८७–२०९
६	अन्तकालीन स्मरणके विषयमें सामान्य न्यायका वर्णन ··· ··· (विशेष बात २१२)	२०९–२१३
७	सब समयमें भगवान्‌का स्मरण करते हुए कर्तव्य-पालन करनेवालेको भगवत्प्राप्तिका कथन ··· (स्मरण-सम्बन्धी विशेष बात २१७)	२१४–२२०
८–१०	सगुण-निराकार परमात्माकी उपासनाका फलसहित वर्णन ··· ···	२२१–२२७
११–१३	निर्गुण-निराकार परमात्माकी उपासनाका फलसहित वर्णन ··· ···	२२७–२३१
१४–१६	सगुण-साकार भगवान्‌की उपासनाका फलसहित वर्णन ··· ·· (विशेष बात २३९, विशेष बात २४२, विशेष बात २४५)	२३१–२४६
१७–१९	ब्रह्माजीके रात-दिनकी अवधिका वर्णन ···	२४६–२५३
२०	परमात्मतत्त्वकी श्रेष्ठताका वर्णन ···	२५३–२५५
२१	सम्पूर्ण उपासनाओंके फलकी एकताका वर्णन	२५५–२५७
२२	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति होनेका कथन ··· (विशेष बात २६०)	२५७–२६१
२३	शुक्ल और कृष्ण-मार्गके वर्णनका उपक्रम ···	२६१–२६३
२४	शुक्ल-मार्गका वर्णन ··· ···	२६४–२६५
२५	कृष्ण-मार्गका वर्णन ··· ··· (विशेष बात २६९)	२६६–२७३
२६	दोनों मार्गोंको शाश्वत बताते हुए प्रकरणका उपसंहार करना ···	२७४–२७५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्लोक-संख्या		पृष्ठ-संख्या
२७	भगवान्‌के द्वारा दोनों मार्गोंको जाननेका फल बताकर अर्जुनको योगयुक्त होनेकी आज्ञा देना ...	२७६—२७८
२८	योगीकी महिमाका वर्णन	२७८—२८१
	आठवें अध्यायके पद, अक्षर और उवाच ...	२८१
	आठवें अध्यायमें प्रयुक्त छन्द ...	२८२

नवाँ अध्याय

प्रधान विषय

१—६	प्रभावसहित विज्ञानका वर्णन ...	२८३—३१४
७—१०	महासर्ग और महाप्रलयका वर्णन ...	३१४—३२७
११—१५	भगवान्‌का तिरस्कार करनेवाले आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेनेवालोंका कथन तथा दैवी प्रकृतिका आश्रय लेनेवाले भक्तोंके भजनका वर्णन	३२७—३४५
१६—१९	कार्य-कारणरूपसे भगवत्स्वरूप विभूतियोंका वर्णन	३४६—३५३
२०—२५	सकाम और निष्काम उपासनाका फलसहित वर्णन	३५४—३७५
२६—३४	पदार्थों और क्रियाओंको भगवदर्पण करनेका फल बताकर भक्तिके अधिकारियोंका और भक्तिका वर्णन	३७५—४३५

सूक्ष्म विषय

१	फलसहित ज्ञान-विज्ञान कहनेकी प्रतिज्ञा ... (ज्ञान और विज्ञान-सम्बन्धी विशेष बात २८५)	२८३—२८८
२	ज्ञान-विज्ञानकी महिमाका वर्णन ...	२८८—२९३
३	ज्ञान-विज्ञानपर श्रद्धा न रखनेवालोंके बार-बार जन्मने-मरनेका कथन ... .. (विशेष बात २९८) ...	२९४—३००

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्लोक-संख्या		पृष्ठ-संख्या
४–५	व्याप्य-व्यापकरूपसे भगवान्के स्वरूप और प्रभावका वर्णन	३०१–३१०
	(मार्मिक बात ३०९)	
६	भगवान्के द्वारा वायु और आकाशका दृष्टान्त देकर सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्थितिको अपने अधीन बताना	३१०–३१४
७–८	प्रकृतिके परवश प्राणियोंका महाप्रलयमें लीन होने और महासर्गमें उत्पन्न होनेका वर्णन ...	३१४–३२१
९–१०	भगवान्का सृष्टि-रचनारूप कर्मसे निर्लिप्त रहनेका कथन	३२१–३२७
११–१२	भगवान्से विमुख हुए प्राणियोंका आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेनेका कथन ...	३२७–३३४
१३–१४	दैवी प्रकृतिका आश्रय लेनेवाले भक्तोंके भजनका प्रकार	३३५–३४३
१५	भिन्न-भिन्न उपासनाओंका वर्णन ...	३४४–३४५
१६–१९	कार्य-कारणरूपसे यज्ञ और संसार-सम्बन्धी पैंतीस विभूतियोंका कथन ...	३४६–३५३
२०–२१	सकामभावसे यज्ञ करनेवालोंके आवागमनका वर्णन	३५४–३५७
२२	भगवान्के द्वारा अनन्यभक्तोंका योगक्षेम वहन करनेका कथन	३५८–३६१
२३	भगवान्से देवताओंको अलग मानकर किये गये पूजनको भगवान्का अविधिपूर्वक पूजन बताना ...	३६१–३६३
२४–२५	भगवान्को सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और मालिक मानने और न माननेवालोंकी गतियोंका वर्णन	३६३–३७५
	(विशेष बात ३६६, विशेष बात ३७२) ...	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्लोक-संख्या		पृष्ठ-संख्या
२६	भगवान्‌के द्वारा भक्तोंके प्रेमपूर्वक दिये गये उपहारको ग्रहण करना ··· ···	३७५–३८०
	(विशेष बात ३७८)	
२७	सम्पूर्ण क्रियाओंको भगवान्‌के अर्पण करनेका कथन ··· ···	३८०–३८५
	(विशेष बात ३८३)	
२८	पदार्थों और क्रियाओंको भगवान्‌के अर्पण करनेका फल ··· ··· ···	३८५–३९०
	(विशेष बात ३८८)	
२९	भगवान्‌की समता और भक्तिका प्रभाव ···	३९०–३९८
३०–३१	दुराचारीके द्वारा भी एक निश्चयपूर्वक भगवान्‌के सम्मुख होनेका फल बताना ···	३९८–४१३
	(मार्मिक बात ४१०)	
३२	भगवान्‌का आश्रय लेनेवाले पापयोनियों, स्त्रियों, वैश्यों और शूद्रोंको परमगतिकी प्राप्ति बताना ···	४१४–४२०
	(विशेष बात ४१७, मार्मिक बात ४१९)	
३३	भगवान्‌के द्वारा पवित्र ब्राह्मण और क्षत्रिय भक्तोंकी विशेषता बताकर अर्जुनको भगवद्भजनकी आज्ञा देना ··· ···	४२१–४२७
३४	भगवद्भजनका स्वरूप ···	४२७–४३५
	(विशेष बात ४३२)	
	नवें अध्यायके पद, अक्षर और उवाच ···	४३५
	नवें अध्यायमें प्रयुक्त छन्द ···	४३६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥
मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥
मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥
रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥
ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥
चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥
कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥
इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥
कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥
सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥
यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥
नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥
मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥
यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥
न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥
अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥१७॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥
त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपष्यसि ॥२८॥
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्राक्कथन

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

'जिनके आश्रित भक्तोंका आश्रय लेकर किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन, खस आदि अधम जातिके लोग और इनके सिवा अन्य पापीलोग भी शुद्ध हो जाते हैं, उन जगत्प्रभु भगवान् विष्णुको नमस्कार है।'

भगवान्‌के साथ जीवका जो स्वाभाविक स्वतःसिद्ध सम्बन्ध अथवा अभिन्नता है, उसका अनुभव करनेका नाम 'योग' है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—'संकर सहज सरूपु सम्हारा' (१।५७।४) अर्थात् भगवान् शंकरने अपने सहज स्वरूपकी तरफ दृष्टि डाली, स्वरूप सँभाला। सँभाली चीज वह होती है, जो पहलेसे ही हमारे पास है। केवल दृष्टि डालनेसे पता लग जाय कि यह है। ऐसे ही दृष्टि डालनेमात्रसे योगका अनुभव हो जाता है।

यहाँ प्रश्न होता है कि जिनकी विषयोंमें, पदार्थोंमें आसक्ति है, प्रियता है, क्या वे भी दृष्टि डाल सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि जबतक पदार्थोंका, भोग और संग्रहका अन्तःकरणपर रंग चढ़ा हुआ है, तबतक मनुष्यमें यह ताकत नहीं है कि वह अपने स्वरूपकी तरफ दृष्टि डाल सके। अगर किसी कारणसे, किसी खास विवेचनसे उधर दृष्टि पड़ भी जाय, तो उसका स्थायी रहना बड़ा मुश्किल है। कारण कि नाशवान् पदार्थोंकी जो प्रियता भीतरमें बैठी हुई है, वह प्रियता भगवान्‌के स्वतःसिद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सम्बन्धको समझने नहीं देती और समझमें आ जाय तो स्थिर नहीं रहने देती । हाँ, अगर उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जाय कि उस तत्त्वका अनुभव कैसे हो? क्या करूँ? कैसे करूँ? तो इस अभिलाषामें यह ताकत है कि वह संसारकी आसक्तिसे विमुख कर देगी* । फिर वह बात चट समझमें आ जायगी और स्थायी भी हो जायगी । कारण कि भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध नित्य और स्वतःसिद्ध है । पदार्थोंके, भोगोंके साथ कितनी ही घनिष्ठता हो जाय और अरबों जन्मोंतक इनके साथ एकता रहे, तो भी इनके साथ कभी अभिन्नता हो ही नहीं सकती । ऐसे ही भगवान्‌से कितना ही विरुद्ध हो जाय, विमुख हो जाय, तो भी उनसे कभी अलग हो ही नहीं सकता । संसारके साथ तो अभिन्नता असम्भव है और भगवान्‌के साथ भिन्नता असम्भव है ।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और इनसे भी आगे जो 'अहम्' (मैं-पन) है, उसका खिंचाव जब भगवान्‌की तरफ ज्यादा हो जाता है, तो 'अहम्' का जड़-अंश छूट जाता है और चिन्मय-तत्त्व (भगवान्) के साथ अभिन्नताका अनुभव हो जाता है । परन्तु इसके लिये अभिलाषा उत्कट होनी चाहिये । जैसे कितने ही वर्षोंका अँधेरा हो, एक दियासलाई जलते ही वह चला जाता है, ऐसे ही जड़ताके साथ कितना ही पुराना सम्बन्ध हो

* उत्कट अभिलाषा कई कारणोंसे जाग्रत् हो सकती है, जैसे—(१) कोई ऐसी आफत आ जाय, जिससे मनुष्य संसारसे सर्वथा निराश हो जाय, (२) किसी सन्तकी कृपा हो जाय, (३) पूर्वका कोई अच्छा संस्कार जाग जाय । (४) किसी एकपर पूरा विश्वास हो और समयपर वह धोखा दे दे, आदि ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भगवान्‌के साथ नित्ययोगकी उत्कट अभिलाषा होते ही वह नष्ट हो जाता है। इस नित्ययोगकी तरफ दृष्टि करानेके लिये ही भगवान्‌ने राजविद्या अर्थात् विज्ञानसहित ज्ञानका विवेचन किया है, जिसमें भक्तिकी बात मुख्य है।

भगवान्‌ने छठे अध्यायके अन्तमें कहा कि जो भक्त श्रद्धा-प्रेमसहित मेरा भजन करता है, वह सभी योगियोंमें श्रेष्ठ है। भक्तकी याद आते ही भगवान्‌के भाव उमड़ने लगे और उन्होंने अर्जुनके बिना पूछे ही सातवें अध्यायका विषय आरम्भ कर दिया। उसमें जड़ताके साथ माने हुए सम्बन्धको मिटानेके लिये भगवान्‌ने बहुत विलक्षण बात कही है कि वास्तवमें सब कुछ मैं ही हूँ, मेरे सिवाय कुछ नहीं है (७।७)। परन्तु तीनों गुणोंसे मोहित अर्थात् जड़ताके साथ अपना सम्बन्ध माननेवाले प्राणी इन गुणोंसे परे मेरेको नहीं जानते (७।१३)। अगर वे केवल मेरेको ही अपना मान लें, मेरे ही शरण हो जायँ; तो वे बड़ी सुगमतासे गुणमयी मायाको तर जायँगे (७।१४)। इस वास्ते जो मेरे भक्त होते हैं, वे मेरी तरफ ही लगे रहते हैं। उन भक्तोंके चार प्रकार हैं—अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी (७।१६)।

अर्थार्थीको धनका लोभ है, आर्त दुःखसे घबराया हुआ है, जिज्ञासु तत्त्वको जानना चाहता है और ज्ञानी ऐसा मानता है कि भगवान्‌के सिवाय कोई है ही नहीं। ये चारों भेद संसारकी आसक्तिको लेकर ही हुए हैं। संसारकी आसक्ति न हो तो ये चार भेद हो ही नहीं सकते। धनकी आसक्तिसे ही अर्थार्थी नाम पड़ा है, दुःखोंसे घबरानेसे ही आर्त नाम पड़ा है, तत्त्वको जाननेकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

इच्छासे ही जिज्ञासु नाम पड़ा है ! इस प्रकार ये नाम तो संसारके साथ सम्बन्ध होनेसे ही पड़े हैं । संसारका सम्बन्ध न रहे तो भक्त भगवान्‌की कृपासे भगवान्‌के नित्य-सम्बन्धको जान लेता है । इसलिये ऐसे भक्तोंको भगवान्‌ने 'ज्ञानी' (प्रेमी), 'सुकृती' और 'पुण्यकर्मा' कहा है (७ । १६, २८) । व्रत, दान आदि जितने कर्म हैं, वे सब-के-सब पवित्र करनेवाले हैं; परन्तु सबसे ज्यादा पवित्र करनेवाली चीज है—केवल भगवान्‌की ही लालसा हो, केवल भगवान् ही प्रिय लगें । संसारकी तरफसे वृत्ति नहीं छूटती तो न छूटे, पर भीतरसे भगवान्‌में प्रियता हो जाय । जैसे बच्चा खेलता है और सब कुछ करता है, पर माँ-माँ पुकारता है; क्योंकि माँके समान अच्छी कोई चीज नहीं है । ऐसे ही भक्त केवल भगवान्‌के शरण होकर भगवान्‌को पुकारे तो वह संसारसे स्वतः अलग हो जाता है (७ । १४) । कारण कि वास्तवमें संसारके साथ सम्बन्ध है ही नहीं । किसीकी भी ताकत नहीं है कि वह संसारसे एक रह सके और भगवान्‌से अलग रह सके । ऐसे भगवान्‌के शरणागत पुण्यात्मा भक्त भगवान्‌के समग्ररूपको जान लेते हैं और अन्तमें भगवान्‌को ही प्राप्त हो जाते हैं (७ । २९-३०) । तात्पर्य है कि जड़ताके सम्मुख होनेसे ही प्राणी बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं । अगर वे उससे विमुख होकर केवल भगवान्‌के ही सम्मुख हो जायँ तो वे भगवान्‌के सगुण-निराकार, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार—ऐसे समग्ररूपको जान जाते हैं और जन्म-मरणसे मुक्त होकर भगवान्‌को ही प्राप्त हो जाते हैं ।

आठवें अध्यायके आरम्भमें अर्जुनके प्रश्न करनेपर भगवान्‌ने कहा कि भैया ! जो अन्तकालमें मेरा स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है, वह मेरेको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है (८ । ५)। तात्पर्य है कि संसारमें राग, आसक्ति है, आचरण भी सर्वथा शुद्ध नहीं हैं, पर अन्तसमयमें मेरेको याद कर ले तो उस याद करनेमात्रसे वह सब पापोंसे तर जायगा—इसमें सन्देह नहीं है! कारण कि मनुष्यमात्रका वास्तविक सम्बन्ध भगवान्के साथ ही है। इस वास्तविकताको पकड़नेके समान अर्थात् भगवान्के साथ अपनापन करनेके समान पवित्र करनेवाली कोई वस्तु नहीं है।

फिर भगवान्ने कहा कि मेरेको चाहे सगुण-निराकार माने, चाहे निर्गुण-निराकार माने, चाहे सगुण-साकार माने, मेरेको चाहे जैसा मानकर मेरे किसी भी रूपका जो ध्यान करता है, वह मेरेको प्राप्त हो जाता है। यह सगुण-निर्गुण आदिका भेद मनुष्योंकी धारणामें है, मेरेमें नहीं है।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंताके साथ मनुष्यका किञ्चिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। इनके साथ सम्बन्ध माननेसे ब्रह्मलोकतक जाकर भी लौटकर पीछे आना पड़ता है। इसी तत्त्वको समझानेके लिये भगवान्ने शुक्ल और कृष्ण गतिका वर्णन किया। इन दोनों गतियोंके वर्णनका यही तात्पर्य है कि मनुष्य भगवान्के साथ अपने नित्य सम्बन्धका अनुभव कर ले।

एक बात ध्यान देनेकी है। साधकके भीतर ऐसी भावना रहती है कि इतना जप करेंगे, इतना ध्यान करेंगे, इतना एकान्तमें रहेंगे, ऐसी समाधि लगायेंगे, तब भगवान् मिलेंगे। ऐसी भावनाका होना तो बढ़िया है, पर इन साधनोंके सहारे हम भगवान्को प्राप्त कर लेंगे—ऐसा मानना गलती है। कारण कि भगवान् किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

साधनके अधीन नहीं हैं। वे तो केवल मनुष्यकी उत्कट अभिलाषाकी तरफ देखते हैं, उसकी योग्यता आदिकी तरफ नहीं देखते। योग्यता आदिकी जरूरत संसारमें होती है। भगवत्प्राप्तिमें योग्यता आदि कुछ भी मूल्य नहीं रखती।

भगवान् सब देशमें, सब कालमें, सम्पूर्ण वस्तुओंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण क्रियाओंमें, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें जैसे-के-तैसे हैं। भगवान्से नजदीक दूसरा कोई है ही नहीं। केवल भगवत्प्राप्तिकी उत्कट अभिलाषा हो जाय तो चट जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेद होकर भगवान्के नित्ययोगका अनुभव हो जाता है। इस वास्ते उत्कट अभिलाषा समाधिसे भी ऊँची चीज है। ऊँची-से-ऊँची निर्विकल्प समाधि हो, उससे भी व्युत्थान होता है और फिर व्यवहार होता है। इसमें मार्मिक बात यह है कि समाधिका भी आरम्भ और अन्त होता है। जबतक आरम्भ और अन्त होता है, तबतक जड़ताके साथ ही सम्बन्ध है। जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर साधनका आरम्भ और अन्त नहीं होता, प्रत्युत भगवान्से नित्ययोग हो जाता है।

भगवान्के साथ वियोग कभी हुआ ही नहीं, होना सम्भव ही नहीं। केवल संसारके संयोगके कारण भगवान्से वियोग माना हुआ है। संसारसे माने हुए संयोगको छोड़ते ही भगवद्-अभिलाषी पुरुषको तत्काल नित्ययोगका अनुभव हो जाता है और उसमें स्थायी स्थिति भी हो जाती है। इस तत्त्वको पुनः समझानेके लिये और सातवें अध्यायका विषय कहनेमें जो कमी रह गयी थी, उसको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पूरा करनेके लिये भगवान्‌ने अपनी ओरसे नवें अध्यायका विषय—विज्ञानसहित ज्ञानका वर्णन आरम्भ किया।

नवें अध्यायके आरम्भमें इस विज्ञानसहित ज्ञानकी महिमा बताते हुए भगवान्‌ने इसको 'राजविद्या', 'राजगुह्यम्' 'पवित्रम्', 'उत्तमम्', 'प्रत्यक्षावगमम्', 'धर्म्यम्', 'अव्ययम्' कहा, और साथमें कहा—'कर्तुं सुसुखम्' अर्थात् यह करनेमें बहुत सुगम है। इसमें परिश्रमका काम ही नहीं है। कारण कि सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदिमें सदा ज्यों-के-त्यों परिपूर्ण भगवान्‌के साथ जीवका नित्ययोग स्वतःसिद्ध है। केवल उधर दृष्टि डालनी है, जैसा कि कहा है—'संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥' परन्तु संसारकी आशा, कामना और सुखभोगके कारण नित्ययोगकी तरफ दृष्टि डालनेमें, उसका अनुभव करनेमें कठिनता मालूम देती है। इस नित्ययोगकी तरफ लक्ष्य करानेके लिये भगवान्‌ने अपनी बहुत विशेष महिमा कही कि मैं संसारमें हूँ और संसार मेरेमें है; पर मैं संसारमें नहीं हूँ और संसार मेरेमें नहीं है। तात्पर्य है कि निर्लिप्त, निर्विकाररूपसे सब जगह मैं-ही-मैं हूँ।

इस प्रकार विज्ञानसहित ज्ञानको बहुत अलौकिक, विचित्र ढंगसे समझाकर अन्तमें भगवान्‌ने भक्तिके सात अधिकारियोंका वर्णन किया। उसमें वर्ण (जन्म) को लेकर चार अधिकारी बताये—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आचरणोंको लेकर दो अधिकारी बताये—पूर्वके आचरणवाले पापयोनि और अभीके आचरणवाले दुराचारी। व्यक्तित्वको लेकर एक अधिकारी बताया स्त्रियाँ। तात्पर्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

है कि वर्ण (जन्म), आचरण और व्यक्तित्वसे भगवान्‌की भक्तिमें कोई फर्क नहीं पड़ता। कारण कि जन्म तो शरीरोंका होता है, आचरण शरीरसे होते हैं और व्यक्तित्व शरीरको लेकर होता है; परन्तु भगवान्‌का सम्बन्ध स्वयं-(स्वरूप) से है। इस वास्ते जब स्वयं 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं' इस प्रकार भगवन्निष्ठ हो जाता है; तो वर्ण, आचरण और व्यक्तित्वकी तरफ भगवान्‌की दृष्टि जाती ही नहीं*। कारण कि ये सब जड़के अंश होनेसे परिवर्तनशील हैं। और जीव स्वयं साक्षात् भगवान्‌का अंश होनेसे अपरिवर्तनशील है। इससे सिद्ध हुआ कि प्राणी किसी देश-का हो, किसी वर्णका हो, किसी सम्प्रदायका हो और कैसी ही वेश-भूषामें रहता हो, वह भगवान्‌का अंश होनेसे भगवान्‌की तरफ चलनेका पूरा अधिकारी है। वह चले अथवा न चले—यह उसकी मरजी है; पर भगवान्‌की तरफसे मनाही नहीं है। भगवान्‌ने तो उस प्राणीको अपना उद्धार करनेके लिये ही यह अन्तिम जन्म मनुष्य जन्म दिया है। इस वास्ते भगवान्‌ने बताया कि दुराचारी-से-दुराचारी भी भक्त बन सकता है, पर भक्तका कभी पतन नहीं होता—'न मे भक्तः प्रणश्यति' (९।३१)।

भगवान्‌के मनमें बहुत ज्यादा कृपा उमड़ रही है, इस वास्ते वे कहते हैं कि सीधी बात है, तू स्वयं मेरा भक्त बन जा, मेरेमें मनवाला हो जा, मेरा पूजन करनेवाला हो जा और मेरेको प्रणाम

* पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम्॥
(अध्यात्म० अरण्य० १०।२०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कर। तात्पर्य है कि तू केवल मेरी शरणमें आ जा। फिर तू मेरेको ही प्राप्त हो जायगा।

इस प्रकार संसारसे विमुख होकर भगवान्‌के साथ नित्य योगका अनुभव करनेके लिये ही यह 'राजविद्या' कही गयी है, जिसमें भक्तिका विशेष वर्णन हुआ है।

सातवें और नवें अध्यायके विषयकी एकता

सातवें अध्यायके आरम्भमें भगवान्‌ने विज्ञानसहित ज्ञान अर्थात् राजविद्याको पूर्णतया कहनेकी प्रतिज्ञा की थी—'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः' (७। २)। सातवें अध्यायमें भगवान्‌के कहनेका जो प्रवाह चल रहा था, आठवें अध्यायके आरम्भमें अर्जुनके प्रश्न करनेसे उसमें कुछ परिवर्तन आ गया। इस वास्ते आठवें अध्यायका विषय समाप्त होते ही भगवान् अर्जुनके बिना पूछे ही 'इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ज्ञानं विज्ञानसहितम्'··· (९। १) कहकर अपनी तरफसे पुनः विज्ञानसहित ज्ञान कहना शुरू कर देते हैं। सातवें अध्यायमें भगवान्‌ने जो विषय तीस श्लोकोंमें कहा था, उसी विषयको नवें अध्यायके चौंतीस और दसवें अध्यायके ग्यारहवें श्लोकतक लगातार कहते ही चले जाते हैं। इन श्लोकोंमें कही हुई बातोंका अर्जुनपर बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिससे वे दसवें अध्यायके बारहवें श्लोकसे अठारहवें श्लोकतक भगवान्‌की स्तुति और प्रार्थना करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि सातवें अध्यायमें कही गयी बात को भगवान्‌ने नवें अध्यायमें संक्षेपसे, विस्तारसे अथवा प्रकारान्तरसे कहा है।

सातवें अध्यायके पहले श्लोकमें 'मय्यासक्तमनाः' आदि पदोंसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जो विषय संक्षेपसे कहा था, उसीको नवें अध्यायके चौंतीसवें श्लोकमें 'मन्मनाः, आदि पदोंसे थोड़े विस्तारसे कहा है।

सातवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें भगवान्‌ने कहा कि मैं विज्ञानसहित ज्ञान कहूँगा, जिसको जाननेसे फिर जानना बाकी नहीं रहेगा। यही बात भगवान्‌ने नवें अध्यायके पहले श्लोकमें कही कि मैं विज्ञानसहित ज्ञान कहूँगा, जिसको जानकर तू अशुभ-(संसार-) से मुक्त हो जायगा। मुक्ति होनेसे फिर जानना बाकी नहीं रहता। इस प्रकार भगवान्‌ने सातवें और नवें—दोनों ही अध्यायोंके आरम्भमें विज्ञानसहित ज्ञान कहनेकी प्रतिज्ञा की और दोनोंका एक फल बताया।

सातवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें भगवान्‌ने कहा कि हजारोंमेंसे कोई एक मनुष्य वास्तविक सिद्धिके लिये यत्न करता है और यत्न करनेवालोंमें कोई एक मेरेको तत्त्वसे जानता है। इसका कारण नवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें बताते हैं कि इस विज्ञानसहित ज्ञानपर श्रद्धा न रखनेसे मनुष्य मेरेको प्राप्त न हो करके मौतके रास्तेमें चले जाते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

सातवें अध्यायके छठे श्लोकमें भगवान्‌ने अपनेको सम्पूर्ण जगत्‌का प्रभव और प्रलय बताया। यही बात नवें अध्यायके अठारहवें श्लोकमें 'प्रभवः प्रलयः' पदोंसे बतायी।

सातवें अध्यायके दसवें श्लोकमें भगवान्‌ने अपनेको सनातन बीज बताया और नवें अध्यायके अठारहवें श्लोकमें अपनेको अव्यय बीज बताया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सातवें अध्यायके बारहवें श्लोकमें 'न त्वहं तेषु ते मयि' कहकर जिस राजविद्याका संक्षेपसे वर्णन किया था, उसीका नवें अध्यायके चौथे, पाँचवें और छठे श्लोकमें विस्तारसे वर्णन किया है।

सातवें अध्यायके तेरहवें श्लोकमें भगवान्‌ने सम्पूर्ण प्राणियोंको तीनों गुणोंसे मोहित बताया और नवें अध्यायके आठवें श्लोकमें सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रकृतिके परवश हुआ बताया।

सातवें अध्यायके चौदहवें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा कि जो मनुष्य मेरे ही शरण हो जाते हैं, वे मायाको तर जाते हैं और नवें अध्यायके बाईसवें श्लोकमें कहा कि जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।

सातवें अध्यायके पन्द्रहवें श्लोकमें भगवान्‌ने 'न मां दुष्कृतिनो मूढाः' कहा था, उसीको नवें अध्यायके ग्यारहवें श्लोकमें 'अवजानन्ति मां मूढाः' कहा है।

सातवें अध्यायके पन्द्रहवें श्लोकमें भगवान्‌ने 'आसुरं भावमाश्रिताः' पदोंसे जो बात कही थी, वही बात नवें अध्यायके बारहवें श्लोकमें 'राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः' पदोंसे कही है।

सातवें अध्यायके सोलहवें श्लोकमें जिनको 'सुकृतिनः' कहा था, उनको ही नवें अध्यायके तेरहवें श्लोकमें 'महात्मानः' कहा है।

सातवें अध्यायके सोलहवेंसे अठारहवें श्लोकतक सकाम और निष्कामभावको लेकर भक्तोंके चार प्रकार बताये; और नवें अध्यायके

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तीसवेंसे तैंतीसवें श्लोकतक वर्ण, आचरण और व्यक्तिको लेकर भक्तों-के सात भेद बताये।

सातवें अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने महात्माकी दृष्टि-से 'वासुदेवः सर्वम्' कहा और नवें अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने अपनी दृष्टिसे 'सदसच्चाहम्' कहा।

भगवान्‌से विमुख होकर अन्य देवताओंमें लगनेमें खास दो ही कारण हैं—पहला कामना और दूसरा, भगवान्‌को न पहचानना। सातवें अध्यायके बीसवें श्लोकमें कामनाके कारण देवताओंके शरण होनेकी बात कही गयी और नवें अध्यायके तेईसवें श्लोकमें भगवान्‌को न पहचाननेके कारण देवताओंका पूजन करनेकी बात कही गयी।

सातवें अध्यायके तेईसवें श्लोकमें सकाम पुरुषोंको अन्तवाला (नाशवान्) फल मिलनेकी बात कही और नवें अध्यायके इक्कीसवें श्लोकमें सकाम पुरुषोंके आवागमनको प्राप्त होनेकी बात कही।

सातवें अध्यायके तेईसवें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा कि देवताओंके भक्त देवताओंको और मेरे भक्त मेरेको प्राप्त होते हैं। यही बात भगवान्‌ने नवें अध्यायके पचीसवें श्लोकमें भी कही।

सातवें अध्यायके चौबीसवें श्लोकके पूर्वार्धमें भगवान्‌ने जो 'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः' कहा था, उसीको नवें अध्यायके ग्यारहवें श्लोकके पूर्वार्धमें 'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्' कहा है। ऐसे ही सातवें अध्यायके चौबीसवें श्लोक-के उत्तरार्धमें जो 'परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्' कहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

था, उसीको नवें अध्यायके ग्यारहवें श्लोकके उत्तरार्धमें 'परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्' कहा है।

सातवें अध्यायके सत्ताईसवें श्लोकोंमें भगवान्‌ने 'सर्गे यान्ति' कहा था, उसीको नवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें 'मृत्युसंसारवर्त्मनि' कहा है।

सातवें अध्यायके तीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने अपनेको जाननेकी बात मुख्य बतायी है और नवें अध्यायके चौंतीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने अर्पण करनेकी बात मुख्य बतायी है।

इन तीन (सातवें, आठवें और नवें) अध्यायोंके अध्ययनसे एक विलक्षण बात पैदा होती है कि जीवमात्र भगवत्प्राप्तिका पूर्ण अधिकारी है। किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, देश, वेश, परिस्थिति आदिका तथा किसी भी भाव*, आचरण आदिका कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, वह उत्साहपूर्वक, निःसंकोचभावसे और स्वतन्त्रताके साथ भगवान्‌की ओर चल सकता है और भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। इस वास्ते इन अध्यायोंका ठीक तरहसे अध्ययन मनन करनेवाला साधक भगवत्प्राप्तिसे कभी निराश नहीं हो सकेगा। इन्हीं तीनों अध्यायोंकी व्याख्या 'गीताकी राजविद्या' नामसे साधकोंकी सेवामें प्रस्तुत है।

विनीत—

स्वामी रामसुखदास

---

* अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥
(श्रीमद्भा० २। ३। १०)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

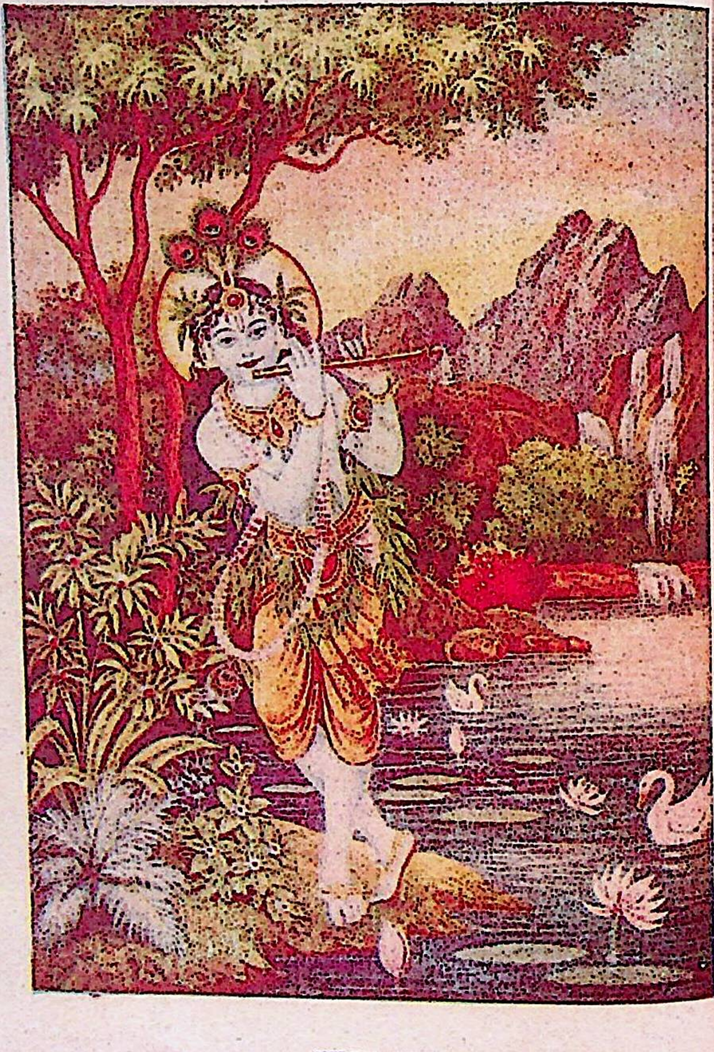

नटवर नागर

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

गीताकी राजविद्या

[श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें, आठवें और नवें अध्यायोंकी विस्तृत व्याख्या]

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

सम्बन्ध—

श्रीभगवान्‌ने छठे अध्यायके छियालीसवें श्लोकमें योगीकी महिमा कही और सैंतालीसवें श्लोकमें यह कहा कि योगियोंमें भी जो मेरेमें श्रद्धा-प्रेम करके मेरा भजन करते हैं, वे भक्त सर्वश्रेष्ठ हैं। भक्तोंको जैसे भगवान्‌की याद आती है, तो वे उसमें तल्लीन हो जाते हैं—मस्त हो जाते हैं, ऐसे ही भगवान्‌के सामने जब भक्तोंका विशेष प्रसङ्ग आता है तो भगवान् उसमें मस्त हो जाते हैं। इसी मस्तीमें सराबोर होते हुए भगवान् अर्जुनके बिना पूछे ही सातवें अध्यायका विषय अपनी तरफसे प्रारम्भ कर देते हैं।

श्लोक—

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥ १॥

अर्थ—

श्रीभगवान् बोले—हे पृथानन्दन! मेरेमें आसक्त मनवाला,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मेरे आश्रित होकर योगका अभ्यास करता हुआ तू मेरे समग्ररूपको निःसन्देह जैसा जानेगा, उसको सुन ।

व्याख्या—

'मय्यासक्तमनाः'—मेरेमें ही जिसका मन आसक्त हो गया है अर्थात् अधिक स्नेहके कारण जिसका मन स्वाभाविक ही मेरेमें लग गया है, चिपक गया है, उसको मेरी याद करनी नहीं पड़ती, प्रत्युत स्वाभाविक मेरी याद आती है और विस्मृति कभी होती ही नहीं—ऐसा तू मेरेमें मनवाला हो ।

जिसका उत्पत्ति-विनाशशील वस्तुओंका और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धका आकर्षण मिट गया है, जिसका इस लोकमें शरीरके आराम, आदर-सत्कार और नामकी बड़ाईमें तथा स्वर्गादि परलोकके भोगोंमें किञ्चिन्मात्र भी खिंचाव, आसक्ति या प्रियता नहीं है, प्रत्युत केवल मेरी तरफ ही खिंचाव है, ऐसे पुरुषका नाम 'मय्यासक्तमनाः' है ।

साधक भगवान्में कैसे मन लगाये, जिससे वह 'मय्यासक्तमनाः' हो जाय । इसके लिये कुछ उपाय बताये जाते हैं—

(१) जब साधक साधन करनेके लिये बैठे तो सबसे पहले दो-चार श्वास बाहर फेंककर ऐसी भावना करे कि मैंने मनसे संसारको सर्वथा निकाल दिया, अब मेरा मन संसारका चिन्तन नहीं करेगा, भगवान्का ही चिन्तन करेगा और चिन्तनमें जो कुछ भी आयेगा, वह भगवान्का ही स्वरूप होगा । भगवान्के सिवाय मेरे मनमें दूसरी बात आ ही नहीं सकती । इस वास्ते भगवान्का स्वरूप वही है, जो मनमें आ जाय और मनमें जो आ जाय, वही भगवान्का स्वरूप

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaor

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है—यह 'वासुदेवः सर्वम्' का सिद्धान्त है। ऐसा होनेपर मन भगवान्में ही लगेगा और लगेगा ही कहाँ !

(२) साधक जब सच्ची नीयतसे भगवान्के लिये ही जप-ध्यान करने बैठता है तो भगवान् उसको अपना भजन मान लेते हैं। जैसे, कोई धनी आदमी किसी नौकरसे कह दे कि 'तुम यहाँ बैठो, कोई काम होगा तो तुम्हारेको बता देंगे। किसी दिन उस नौकरको मालिकने कोई काम नहीं बताया। वह नौकर दिनभर खाली बैठा रहा और शामको मालिकसे कहता है—'बाबू ! मेरेको पैसे दीजिये।' मालिक कहता है—'तुम सारे दिन बैठे रहे, पैसे किस बातके ?' वह नौकर कहता है—'बाबू ! सारे दिन बैठा रहा, इस बातके !' इस तरह जब एक मनुष्यके लिये बैठनेवालेको भी पैसे मिलते हैं तो जो केवल भगवान्में मन लगानेके लिये सच्ची लगनसे बैठता है, उसका बैठना क्या भगवान् निरर्थक मानेंगे ? तात्पर्य यह हुआ कि जो भगवान्में मन लगानेके लिये भगवान्का आश्रय लेकर, भगवान्के ही भरोसे बैठता है, वह भगवान्की कृपासे भगवान्में मनवाला हो जाता है।

(३) प्रायः साधकोंकी यह शिकायत आती है कि हम चिन्तन करते हैं, जप-ध्यान करते हैं, पर हमारा मन नहीं लगता। मन न लगनेका तात्पर्य यह हुआ कि मनमें भूतकालकी बातें याद आती हैं, जो कि अब नहीं हैं अथवा भविष्यकी बातें याद आती हैं, वे भी अब नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनमें 'नहीं' का चिन्तन होता है, जिसकी सत्ता नहीं है। इस वास्ते साधकको यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि भूत और भविष्यके चिन्तनका विषय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अभी नहीं है, परन्तु भगवान् पहले भी थे, आगे भी रहेंगे तथा अभी भी पूर्णरूपसे विद्यमान हैं एवं मैं उनमें हूँ और वे मेरेमें हैं। ऐसे दृढ़ निश्चयसे जब दूसरी याद हट जाती है तो साधक भगवान्‌में आसक्त मनवाला हो जाता है!

(४) भगवान् सब जगह हैं तो यहाँ भी हैं, क्योंकि अगर यहाँ नहीं हैं तो भगवान् सब जगह हैं—यह कहना नहीं बनता। भगवान् सब समयमें हैं तो इस समय भी हैं, क्योंकि अगर इस समय नहीं हैं तो भगवान् सब समयमें हैं—यह कहना नहीं बनता। भगवान् सबमें हैं तो मेरेमें भी हैं, क्योंकि अगर मेरेमें नहीं हैं तो भगवान् सबमें हैं—यह कहना नहीं बनता। भगवान् सबके हैं तो मेरे भी हैं, क्योंकि अगर मेरे नहीं हैं तो भगवान् सबके हैं—यह कहना नहीं बनता। इस वास्ते भगवान् यहाँ हैं, अभी हैं, अपनेमें हैं और अपने हैं। कोई देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, घटना और क्रिया उनसे रहित नहीं है, उनसे रहित होना सम्भव ही नहीं है। इस बातको दृढ़तासे मानते हुए, भगवन्नाममें, प्राणमें, मनमें, बुद्धिमें, शरीरमें, शरीरके कण-कणमें परमात्मा हैं—इस भावकी जागृति रखते हुए नाम-जप करे तो साधक बहुत जल्दी भगवान्‌में मनवाला हो सकता है।

'मदाश्रयः'—जिसको केवल मेरी ही आशा है, मेरा ही भरोसा है, मेरा ही सहारा है, मेरा ही विश्वास है और जो सर्वथा मेरे ही आश्रित रहता है, उसका नाम **'मदाश्रयः'** है।

किसी-न-किसीका आश्रय लेना इस जीवका स्वभाव है। परमात्माका अंश होनेसे यह जीव अपने अंशीको ढूँढ़ता है। परन्तु

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जबतक इसके लक्ष्यमें, उद्देश्यमें परमात्मा नहीं होते, तबतक यह शरीरके साथ सम्बन्ध जोड़े रहता है और शरीर जिसका अंश है, उस संसारकी तरफ खिंचता है। वह यह मानने लगता है कि इससे ही मेरेको कुछ मिलेगा, इसीसे मैं निहाल हो जाऊँगा, जो कुछ होगा, वह संसारसे ही होगा। परन्तु जब यह भगवान्‌को ही सर्वोपरि मान लेता है, तब यह भगवान्‌में आसक्त हो जाता है और भगवान्‌का ही आश्रय ले लेता है।

संसारका अर्थात् धन, सम्पत्ति, वैभव, विद्या, बुद्धि, योग्यता, कुटुम्ब आदिका जो आश्रय है, वह नाशवान् है, मिटनेवाला है, स्थिर रहनेवाला नहीं है। वह सदा रहनेवाला नहीं है और सदाके लिये पूर्ति और तृप्ति करानेवाला भी नहीं है। परन्तु भगवान्‌का आश्रय कभी किञ्चिन्मात्र भी कम होनेवाला नहीं है, क्योंकि भगवान्‌का आश्रय पहले भी था, अभी भी है और आगे भी रहेगा। इस वास्ते आश्रय केवल भगवान्‌का ही लेना चाहिये! केवल भगवान्‌का ही आश्रय, अवलम्बन, आधार, सहारा हो। इसीका वाचक यहाँ **'मदाश्रयः'** पद है।

भगवान् कहते हैं कि मन भी मेरेमें आसक्त हो जाय और आश्रय भी मेरा हो। मन आसक्त होता है—प्रेमसे, और प्रेम होता है—अपनेपनसे। आश्रय लिया जाता है—बड़ेका, सर्वसमर्थका। सर्वसमर्थ तो हमारे प्रभु ही हैं। इस वास्ते उनका ही आश्रय लेना है और उनके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न होना है कि मेरे मनके विरुद्ध विधान भेजकर प्रभु मेरी कितनी निगरानी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

रखते हैं। मेरा कितना ख्याल रखते हैं कि मेरी सम्मति लिये बिना ही विधान करते हैं! ऐसे मेरे दयालु प्रभुका मेरेपर कितना अपनापन है! इस वास्ते मेरेको कभी किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिकी किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार भगवान्‌के आश्रित रहना ही 'मदाश्रयः' होना है।

'योगं युञ्जन्'—भगवान्‌के साथ जो स्वतःसिद्ध अखण्ड सम्बन्ध है, उस सम्बन्धको मानता हुआ तथा सिद्धि-असिद्धिमें सम रहता हुआ साधक जप, ध्यान, कीर्तन करनेमें, भगवान्‌की लीला और स्वरूपका चिन्तन करनेमें स्वाभाविक ही अटल भावसे लगा रहता है। उसकी चेष्टा स्वाभाविक ही भगवान्‌के अनुकूल होती है। यही 'योगं युञ्जन्' कहनेका तात्पर्य है।

जब साधक भगवान्‌में ही आसक्त मनवाला और भगवान्‌के ही आश्रयवाला होगा तो अब वह अभ्यास क्या करेगा? अब कौन-सा योग करेगा? वह भगवत्सम्बन्धी अथवा संसार-सम्बन्धी जो भी कार्य करता है, वह सब योगका ही अभ्यास है। तात्पर्य है कि जिससे परमात्माका सम्बन्ध हो जाय, वह (लौकिक या पारमार्थिक) काम करता है और जिससे परमात्माका वियोग हो जाय, वह काम नहीं करता है।

'असंशयं समग्रं माम्'—जिसका मन भगवान्‌में आसक्त हो गया है, जो सर्वथा भगवान्‌के आश्रित हो गया है और जिसने भगवान्‌के सम्बन्धको स्वीकार कर लिया है—ऐसा पुरुष भगवान्‌के समग्र रूपको जान लेता है अर्थात् सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार,

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अवतार-अवतारी और शिव, गणेश, सूर्य, विष्णु आदि जितने रूप हैं, उन सबको वह जान लेता है ।

भगवान् अपने भक्तकी बात कहते-कहते अघाते नहीं हैं और कहते हैं कि ज्ञानमार्गसे चलनेवाला तो मेरेको जान सकता है और प्राप्त कर सकता हैं, परन्तु भक्तिसे तो मेरा भक्त मेरे समग्र-रूपको जान सकता है और इष्टका अर्थात् जिस रूपसे मेरी उपासना करता है, उस रूपका दर्शन भी कर सकता है ।

'यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु'—यहाँ 'यथा'* पदसे प्रकार बताया गया है कि तू जिस प्रकार जान सके, वह प्रकार भी कहूँगा, और 'तत्' † पदसे बताया गया है कि जिस तत्त्वको तू जान सकता है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, तू सुन ।

छठे अध्यायके सैंतालीसवें श्लोकमें 'श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः' पदोंमें प्रथम पुरुष (वह) का प्रयोग करके सामान्य बात कही थी और यहाँ सातवाँ अध्याय आरम्भ करते हुए 'यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु' पदोंमें मध्यम पुरुष (तू) का प्रयोग करके अर्जुनके लिये विशेषतासे कहते हैं कि तू जिस प्रकार मेरे समग्ररूपको जानेगा, वह मेरेसे सुन ।

---

* स्थूलसे लेकर सूक्ष्मतक वर्णन करना (जैसे—भूमिसे जल सूक्ष्म है, जलसे अग्नि सूक्ष्म है, अग्निसे वायु सूक्ष्म है आदि)—यह 'यथा' कहनेका तात्पर्य है । इस 'यथा' अर्थात् प्रकारका वर्णन इसी अध्यायके चौथेसे सातवें श्लोकतक हुआ है ।

† जो कुछ कार्य (संसार) दीखता है, उसमें कारणरूपसे भगवान् ही हैं—यह 'तत्' कहनेका तात्पर्य है । इसका वर्णन इसी अध्यायके आठवेंसे बारहवें श्लोकतक हुआ है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grar

इससे पहलेके छः अध्यायोंमें भगवान्‌के लिये 'समग्र' शब्द नहीं आया है। चौथे अध्यायके तेईसवें श्लोकमें **'यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते'** पदोंमें कर्मके विशेषणके रूपमें 'समग्र' शब्द आया है और यहाँ 'समग्र' शब्द भगवान्‌के विशेषणके रूपमें आया है। 'समग्र' शब्दसे भगवान्‌का तात्त्विक स्वरूप सब-का-सब आ जाता है, बाकी कुछ नहीं बचता।

विशेष बात—

(१) इस श्लोकमें 'आसक्ति केवल मेरेमें ही हो, आश्रय भी केवल मेरा ही हो, फिर योगका अभ्यास किया जाय तो मेरे समग्ररूपको जान लेगा'—ऐसा कहनेमें भगवान्‌का तात्पर्य है कि अगर मनुष्यकी आसक्ति भोगोंमें है और आश्रय रुपये-पैसे, कुटुम्ब आदिका है तो कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग आदि किसी योगका अभ्यास करता हुआ भी मेरेको नहीं जान सकता। मेरे समग्ररूपको जाननेके लिये तो मेरेमें ही प्रेम हो, मेरा ही आश्रय हो। मेरेसे किसी भी कार्यपूर्तिकी इच्छा न हो। ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—इस कामनाको छोड़कर, भगवान् जो करते हैं, वही होना चाहिये और भगवान् जो नहीं करना चाहते, वह नहीं होना चाहिये—इस भावसे केवल मेरा आश्रय लेता है, वह मेरे समग्र रूपको जान लेता है। इसलिये भगवान् अर्जुनको कहते हैं कि तू **'मय्यासक्तमनाः'** और **'मदाश्रयः'** हो जा।

(२) परमात्माके साथ वास्तविक सम्बन्धका नाम 'योग' है और उस सम्बन्धको अखण्डभावसे माननेका नाम 'युञ्जन्' है। तात्पर्य यह है कि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदिके साथ सम्बन्ध मानकर अपने-

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0, In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'मैं'—रूपसे जो एक व्यक्तित्व मान रक्खा है, उसको न मानते हुए परमात्माके साथ जो अपनी वास्तविक अभिन्नता है, उसका अनुभव करता रहे।

वास्तवमें **'योगं युञ्जन्'** की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी आवश्यकता संसारकी आसक्ति और आश्रय छोड़नेकी है। संसारकी आसक्ति और आश्रय छोड़नेसे परमात्माका चिन्तन स्वतः स्वाभाविक होगा और सम्पूर्ण क्रियाएँ निष्कामभावपूर्वक होने लगेंगी। फिर भगवान्‌को जाननेके लिये उसको कोई अभ्यास नहीं करना पड़ेगा। इसका तात्पर्य यह है कि जिसका संसारकी तरफ खिंचाव है और जिसके अन्तःकरणमें उत्पत्ति-विनाशशील वस्तुओंका महत्त्व बैठा हुआ है, वह परमात्माके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता। कारण कि उसकी आसक्ति, कामना, महत्ता संसारमें है, जिससे संसारमें परमात्माके परिपूर्ण रहते हुए भी वह उनको नहीं जान सकता।

मनुष्यका जब समाजके किसी बड़े व्यक्तिसे अपनापन हो जाता है तो उसको एक प्रसन्नता होती है। ऐसे ही जब हमारे सदाके हितैषी और हमारे खास अंशी भगवान्‌में आत्मीयता जाग्रत् हो जाती है तो हरदम प्रसन्नता रहते हुए एक अलौकिक, विलक्षण प्रेम प्रकट हो जाता है। फिर साधक स्वाभाविक ही भगवान्‌में मनवाला और भगवान्‌का आश्रय लेनेवाला हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शरणागतिके पर्याय

आश्रय, अवलम्बन, अधीनता, प्रपत्ति और सहारा—ये सभी शब्द 'शरणागति' के पर्यायवाचक होते हुए भी अपना अलग अर्थ रखते हैं; जैसे—

(१) आश्रय—जैसे हम पृथ्वीके आधारके बिना जी ही नहीं सकते और उठना-बैठना आदि कुछ कर ही नहीं सकते, ऐसे ही प्रभुके आधारके बिना हम जी नहीं सकते और कुछ भी कर नहीं सकते। जीना और कुछ भी करना प्रभुके आधारसे ही होता है। इसीको 'आश्रय' कहते हैं।

(२) अवलम्बन—जैसे किसीके हाथकी हड्डी टूटनेपर डाक्टरलोग उसपर पट्टी बाँधकर उसको गलेके सहारे लटका देते हैं तो वह हाथ गलेके अवलम्बित हो जाता है, ऐसे ही संसारसे निराश और अनाश्रित होकर भगवान्‌के गले पड़ने अर्थात् भगवान्‌को पकड़ लेनेका नाम 'अवलम्बन' है।

(३) अधीनता—अधीनता दो तरहसे होती है—१ कोई हमें जबर्दस्तीसे अधीन कर ले या पकड़ ले और २—हम अपनी तरफसे किसीके अधीन हो जायँ या उसके दास बन जायँ। ऐसे ही अपना कुछ भी प्रयोजन न रखकर अर्थात् केवल भगवान्‌को लेकर ही अनन्यभावसे सर्वथा भगवान्‌का दास बन जाना और केवल भगवान्‌को ही अपना स्वामी मान लेना 'अधीनता' है।

(४) प्रपत्ति—जैसे कोई किसी समर्थके चरणोंमें लम्बा पड़ जाता है, ऐसे ही संसारकी तरफसे सर्वथा निराश होकर भगवान्‌के चरणोंमें गिर जाना 'प्रपत्ति' (प्रपन्नता) है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

(५) सहारा—जैसे जलमें डूबनेवालेको किसी वृक्ष, लता, रस्से आदिका आधार मिल जाय, ऐसे ही संसारमें बार-बार जन्म-मरणमें डूबनेके भयसे भगवान्‌का आधार ले लेना 'सहारा' है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी शब्दोंमें केवल शरणागतिका भाव प्रकट होता है। शरणागति कब होती है? जब भगवान्‌में ही आसक्ति हो और भगवान्‌का ही आश्रय हो अर्थात् भगवान्‌में ही मन लगे और भगवान्‌में ही बुद्धि लगे। अगर मनुष्य मन-बुद्धिसहित स्वयं भगवान्‌के आश्रित (समर्पित) हो जाय तो शरणागतिके उपर्युक्त सब-के-सब भाव उसमें आ जाते हैं।

मन और बुद्धिको अपने न मानकर 'ये भगवान्‌के ही हैं' ऐसा दृढ़तासे मान लेनेसे साधक '**मय्यासक्तमनाः**' और '**मदाश्रयः**' हो जाता है। सांसारिक वस्तुमात्र प्रतिक्षण प्रलयकी तरफ जा रही है और किसी भी वस्तुसे अपना नित्य सम्बन्ध है ही नहीं—यह सबका अनुभव है। अगर इस अनुभवको महत्त्व दिया जाय अर्थात् मिटनेवाले सम्बन्धको अपना न माना जाय तो अपने कल्याणका उद्देश्य होनेसे भगवान्‌की शरणागति स्वतः आ जायगी। कारण कि यह स्वतः ही भगवान्‌का है। संसारके साथ सम्बन्ध केवल माना हुआ है (वास्तवमें सम्बन्ध है नहीं) और भगवान्‌से केवल विमुखता हुई है (वास्तवमें विमुखता है नहीं)। इस वास्ते माना हुआ सम्बन्ध छोड़नेपर भगवान्‌के साथ जो स्वतःसिद्ध सम्बन्ध है, वह प्रकट हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सम्बन्ध—

पहले श्लोकमें भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा था कि तू मेरे समग्र रूपको जैसा जानेगा, वह सुन। अब भगवान् अगले श्लोकमें उसे सुनानेकी प्रतिज्ञा करते हैं।

श्लोक—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

अर्थ—

तेरे लिये मैं विज्ञानसहित ज्ञान सम्पूर्णतासे कहूँगा, जिसको जाननेके बाद फिर यहाँ कुछ भी जानना बाकी नहीं रहेगा।

व्याख्या—

'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः'—अब भगवान् कहते हैं कि भैया अर्जुन! अब मैं विज्ञानसहित ज्ञान कहूँगा,*

* मैं तेरेको 'विज्ञानसहित ज्ञान' सम्पूर्णतासे कहूँगा—इसमें विज्ञान ज्ञानका विशेषण है। विशेषण विशेष्यकी विशेषता बतानेवाला होता है। इस दृष्टिसे विशेष्य व्यापक हुआ और विशेषण व्याप्य हुआ अर्थात् ज्ञान (विशेष्य) बड़ा हुआ और विज्ञान (विशेषण) छोटा हुआ। परन्तु विज्ञानने ज्ञानकी विशेषता बता दी—इस दृष्टिसे विज्ञान बड़ा अर्थात् श्रेष्ठ हुआ। यहाँ यह संसार भगवान्‌से ही उत्पन्न होता है और भगवान्‌में ही लीन होता है—ऐसा मानना ज्ञान है; और सब कुछ भगवान् ही हैं, भगवान् ही सब कुछ बने हुए हैं, भगवान्‌के सिवाय कुछ है ही नहीं—ऐसा अनुभव हो जाना विज्ञान है। इसमें ज्ञान सामान्य हुआ और विज्ञान विशेष हुआ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तेरेको कहूँगा और मैं खुद कहूँगा तथा सम्पूर्णतासे कहूँगा। ऐसे तो हरेक आदमी हरेक गुरुसे मेरे स्वरूपके बारेमें सुनता है और उससे लाभ भी होता है; परंतु तेरेको मैं स्वयं कह रहा हूँ। स्वयं कौन? जो समग्र परमात्मा है, वह मैं स्वयं। मैं स्वयं मेरे स्वरूपका जैसा वर्णन कर सकता हूँ, वैसा दूसरे नहीं कर सकते; क्योंकि वे तो सुनकर और अपनी बुद्धिके अनुसार विचारकर ही कहते हैं*। उनकी बुद्धि समष्टि बुद्धिका एक छोटा-सा अंश है, वह कितना जान सकती है! वे तो पहले अनजान होकर फिर जानकार बनते हैं, पर मैं सदा अलुप्तज्ञान हूँ। मेरेमें अनजानपना न है, न कभी था, न होगा और न होना सम्भव ही है। इस वास्ते मैं तेरे लिये उस तत्त्वका वर्णन करूँगा, जिसको जाननेके बाद और कुछ जानना बाकी नहीं रहेगा।

दसवें अध्यायके सोलहवें श्लोकमें अर्जुन कहते हैं कि आप अपनी सब-की-सब विभूतियोंको कहनेमें समर्थ हैं—**'वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः'** तो उसके उत्तरमें भगवान् कहते हैं कि मेरे विस्तारका अन्त नहीं है, इस वास्ते प्रधानतासे कहूँगा—**'प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे'** (१०। १९)।

* जैसे, कोई वर्णन करता है तो वर्णन करनेवालेका जो स्वयंका अनुभव है, वह पूरा बुद्धिमें नहीं आता; बुद्धिमें जितना आता है, उतना मनमें नहीं आता और जितना मनमें आता है, उतना कहनेमें नहीं आता। इस प्रकार जब उसका अपना अनुभव भी पूरा कहनेमें नहीं आता अर्थात् वह अपने अनुभवको भी पूरा प्रकट नहीं कर सकता तो वह भगवान्‌की तरह कैसे कह सकता है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

फिर अन्तमें कहते हैं कि मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है-- 'नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप' (१० । ४०)। यहाँ (७ । २ में) भगवान् कहते हैं कि मैं विज्ञानसहित ज्ञानको सम्पूर्णतासे कहूँगा, शेष नहीं रखूँगा—'अशेषतः'। इसका तात्पर्य यह समझना चाहिये कि मैं तत्त्वसे कहूँगा । तत्त्वसे कहनेके बाद कहना, जानना कुछ भी बाकी नहीं रहेगा।

दसवें अध्यायमें विभूति और योगकी बात आयी कि भगवान्‌की विभूतियोंका और योगका अन्त नहीं है । अभिप्राय है कि विभूतियोंका अर्थात् भगवान्‌की जो अलग-अलग शक्तियाँ हैं, उनका और भगवान्‌के योगका अर्थात् सामर्थ्य, ऐश्वर्यका अन्त नहीं आता। रामचरितमानसमें कहा है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥
(उत्तर० ७३ ख)

तात्पर्य है कि सगुण भगवान्‌का जो प्रभाव है, ऐश्वर्य है, उसका अन्त नहीं आता। जब अन्त ही नहीं आता तो उसको जानना मनुष्यकी अक्लके बाहरकी बात है । परन्तु जो वास्तविक तत्त्व है, उसको मनुष्य सुगमतासे समझ सकता है । जैसे, सोनेके गहने कितने होते हैं ? इसको मनुष्य नहीं जान सकता, क्योंकि गहनोंका अन्त नहीं है; परन्तु उन सब गहनोंमें तत्त्वसे एक सोना ही है, इसको तो मनुष्य जान ही सकता है । ऐसे ही परमात्माकी सम्पूर्ण विभूतियों और सामर्थ्यको कोई जान नहीं सकता, परन्तु उन सबमें तत्त्वसे एक परमात्मा ही है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

इसको तो मनुष्य तत्त्वसे जान ही सकता है। परमात्माको तत्त्वसे जाननेपर उसकी समझ तत्त्वसे परिपूर्ण हो जाती है, बाकी नहीं रहती। जैसे, कोई कहे कि 'मैंने जल पी लिया' तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि अब संसारमें जल बाकी नहीं रहा। अतः जल पीनेसे जलका अन्त नहीं हुआ है, प्रत्युत हमारी प्यासका अन्त हुआ है। इसी तरहसे परमात्मतत्त्वको तत्त्वसे समझ लेनेपर परमात्मतत्त्वके ज्ञानका अन्त नहीं हुआ है, प्रत्युत हमारी अपनी जो समझ है, जिज्ञासा है, वह पूर्ण हुई है, उसका अन्त हुआ है, उसमें केवल परमात्मतत्त्व हो रह गया है।

दसवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है कि मेरे प्रकट होनेको देवता और महर्षि नहीं जानते, और तीसरे श्लोकमें कहा है कि जो मुझे अज और अनादि जानता है, वह मनुष्योंमें असम्मूढ़ है और वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। तो जिसे देवता और महर्षि नहीं जानते, उसे मनुष्य जान ले यह कैसे हो सकता है? भगवान् अज और अनादि हैं, ऐसा दृढ़तासे मानना ही जानना है। मनुष्य भगवान्‌को अज और अनादि मान ही सकता है। परन्तु जैसे बालक अपनी माँके ब्याहकी बरात नहीं देख सकता, ऐसे ही देवता, ऋषि, महर्षि, तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त आदि सब प्राणियोंके आदि तथा स्वयं अनादि भगवान्‌को वे प्राणी नहीं जान सकते। इसी प्रकार भगवान्‌के अवतार लेनेको, लीलाको, ऐश्वर्यको कोई जान नहीं सकता; क्योंकि वे अपार हैं, अगाध हैं, अनन्त हैं। परन्तु उनको तत्त्वसे तो जान ही सकते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

परमात्मतत्त्वको जाननेके लिये 'ज्ञानयोग' में जानकारी (जानने) की प्रधानता रहती है और 'भक्तियोग'में मान्यता (मानने) की प्रधानता रहती है। जो वास्तविक मान्यता होती है, वह बड़ी दृढ़ होती है। उसको कोई इधर-उधर नहीं कर सकता अर्थात् माननेवाला जबतक अपनी मान्यताको न छोड़े, तबतक उसकी मान्यताको कोई छुड़ा नहीं सकता। जैसे, मनुष्यने संसार और संसारके पदार्थोंको अपने लिये उपयोगी मान रखा हैं तो इस मान्यताको स्वयं छोड़े विना दूसरा कोई छुड़ा नहीं सकता। परन्तु स्वयं इस बातको जान ले कि ये सब पदार्थ उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं तो इस मान्यता-को मनुष्य छोड़ सकता है; क्योंकि यह मान्यता असत्य है, झूठी है। जब असत्य मान्यताको भी दूसरा कोई छुड़ा नहीं सकता, तब जो वास्तविक परमात्मा सबके मूलमें है, उसको कोई मान ले तो यह मान्यता कैसे छूट सकती है ! क्योंकि यह मान्यता सत्य है, यह यथार्थ मान्यता ज्ञानसे कम नहीं होती, प्रत्युत ज्ञानके समान ही दृढ़ होती है।

भक्तिमार्गमें मानना मुख्य होता है। जैसे, दसवें अध्यायके पहले श्लोकमें भगवान्ने अर्जुनसे कहा कि 'हे महाबाहो अर्जुन ! मैं तेरे हितके लिये परम (सर्वश्रेष्ठ) वचन कहता हूँ, तुम सुनो अर्थात् तुम इस वचनको मान लो।' यहाँ भक्तिका प्रकरण है, इस वास्ते यहाँ माननेकी बात कहते हैं। ज्ञानमार्गमें जानना मुख्य होता है। जैसे, चौदहवें अध्यायके पहले श्लोकमें भगवान्ने कहा कि 'मैं फिर ज्ञानोंमें उत्तम परम ज्ञान कहता हूँ, जिसको जाननेसे सब-के-सब मुनि परम-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सिद्धिको प्राप्त हुए हैं।' यहाँ ज्ञानका प्रकरण है, इस वास्ते यहाँ जाननेकी बात कहते हैं। भक्तिमार्गमें मनुष्य मान करके जान लेता है और ज्ञानमार्गमें जान करके मान लेता है; अतः पूर्ण होनेपर दोनों-की एकता हो जाती है।

ज्ञान और विज्ञानसम्बन्धी विशेष बात

संसार भगवान्‌से ही पैदा होता है और उनमें ही लीन होता है, इस वास्ते भगवान् इस संसारके महाकारण हैं—ऐसा मानना 'ज्ञान' है। भगवान्‌के सिवाय और कोई चीज है ही नहीं, सब कुछ भगवान् ही हैं, स्वयं भगवान् ही सब कुछ बने हुए हैं—ऐसा अनुभव हो जाना 'विज्ञान' है।

अपरा और परा प्रकृति मेरी है; इनके संयोगसे सम्पूर्ण प्राणियों-की उत्पत्ति होती है और मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌का महाकारण हूँ (७। ४–६)—ऐसा कहकर भगवान्‌ने 'ज्ञान' बताया। मेरे सिवाय अन्य कोई है ही नहीं, सूतके धागेमें उसी सूतकी बनी हुई मणियोंकी तरह सब कुछ मेरेमें ही ओतप्रोत है (७। ७)—ऐसा कहकर भगवान्‌ने 'विज्ञान' बताया।

जलमें रस, चन्द्र-सूर्यमें प्रभा मैं हूँ इत्यादि; सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मैं हूँ; सात्त्विक, राजस और तामस भाव मेरेसे ही होते हैं (७। ८–१२)—ऐसा कहकर 'ज्ञान' बताया। ये मेरेमें और मैं इनमें नहीं हूँ अर्थात् सब कुछ मैं-ही-मैं हूँ; क्योंकि इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है (७। १२)—ऐसा कहकर 'विज्ञान' बताया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जो मेरे सिवाय गुणोंकी अलग सत्ता मान लेता है, वह मोहित हो जाता है। परन्तु जो गुणोंसे मोहित न होकर अर्थात् ये गुण भगवान्‌से ही होते हैं और भगवान्‌में ही लीन होते हैं—ऐसा मानकर मेरे शरण होता है, वह गुणमयी मायाको तर जाता है। ऐसे मेरे शरण होनेवाले चार प्रकारके भक्त होते हैं—अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी (प्रेमी)। ये सभी उदार हैं, पर ज्ञानी अर्थात् प्रेमी मेरेको अत्यन्त प्रिय है और मेरी आत्मा ही है (७। १३—१८) —ऐसा कहकर 'ज्ञान' बताया। जिसको 'सब कुछ वासुदेव ही है'; ऐसा अनुभव हो जाता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है (७।१९) —ऐसा कहकर 'विज्ञान' बताया।

मेरेको न मानकर जो कामनाओंके कारण देवताओंके शरण हो जाते हैं, उनको अन्तवाला फल (जन्म-मरण) मिलता है और जो मेरे शरण हो जाते हैं, उनको मैं मिल जाता हूँ। जो मेरेको अज अविनाशी नहीं जानते, उनके सामने मैं प्रकट नहीं होता। मैं भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंको और उनमें रहनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंको जानता हूँ, पर मेरेको कोई नहीं जानता। जो द्वन्द्वमोहसे मोहित हो जाते हैं, वे बार-बार जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं। जो एक निश्चय करके मेरे भजनमें लग जाते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा वे निर्द्वन्द्व हो जाते हैं (७। २०-२८)—ऐसा कहकर 'ज्ञान' बताया। जो मेरा आश्रय लेते हैं, वे ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञको जान जाते हैं अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ, ऐसा उनको अनुभव हो जाता है (७। २९-३०)—ऐसा कहकर 'विज्ञान' बताया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते'—विज्ञानसहित ज्ञानको जाननेके बाद जानना बाकी नहीं रहता । तात्पर्य है कि मेरे सिवाय संसारका मूल दूजा कोई नहीं है, केवल मैं ही हूँ—**'मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय'** (७ । ७) और तत्त्वसे सब कुछ वासुदेव ही है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (७ । १९), और कोई है ही नहीं—ऐसा जान लेगा तो जानना बाकी कैसे रहेगा ? क्योंकि इसके सिवाय दूसरा कुछ जाननेयोग्य है ही नहीं । यदि एक परमात्माको न जानकर संसारकी बहुत-सी विद्याओंको जान भी लिया तो वास्तवमें कुछ नहीं जाना है, कोरा परिश्रम ही किया है ।

'जानना कुछ बाकी नहीं रहता'—इसका तात्पर्य है कि इन्द्रियोंसे, मनसे, बुद्धिसे जो परमात्माको जानता है, वह वास्तवमें पूर्ण—जानना नहीं है । कारण कि ये इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि प्राकृत हैं, इस वास्ते ये प्रकृतिसे अतीत तत्त्वको नहीं जान सकते । स्वयं जब परमात्माके शरण हो जाता है, तब स्वयं ही परमात्माको जानता है । इस वास्ते परमात्माको स्वयंसे ही जाना जा सकता है, मन-बुद्धि आदिसे नहीं ।

सम्बन्ध—

भगवान्‌ने दूसरे श्लोकमें यह बताया कि मैं विज्ञानसहित ज्ञानको सम्पूर्णतासे कहूँगा, जिससे कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता । जब जानना बाकी रहना ही नहीं तो फिर सब मनुष्य उस तत्त्वको क्यों नहीं जान लेते? इसके उत्तरमें अगला श्लोक कहते हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

श्लोक—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

अर्थ—

हजारों मनुष्योंमें कोई एक वास्तविक सिद्धिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले सिद्धोंमें कोई एक ही मेरेको तत्त्वसे जानता है ।

व्याख्या—

'मनुष्याणां सहस्रेषु* कश्चिद्यतति सिद्धये'—हजारों मनुष्योंमें कोई एक ही मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है । तात्पर्य है कि जिनमें मनुष्यपना है अर्थात् जिनमें पशुओंकी तरह खाना-पीना और ऐश-आराम करना नहीं है, वे ही वास्तवमें मनुष्य हैं । उन मनुष्योंमें भी जो नीति और धर्मपर चलनेवाले हैं, ऐसे मनुष्य हजारों हैं । उन हजारों मनुष्योंमें भी कोई एक ही सिद्धिके

---

* यहाँ भगवान्को 'मनुष्याणां सहस्राणाम्' अथवा 'मनुष्येषु सहस्रेषु' ऐसा कहना चाहिये था; क्योंकि 'यतश्च निर्धारणम्' इस सूत्रसे निर्धारण अर्थमें षष्ठी और सप्तमी—ये दोनों विभक्तियाँ होती हैं । परंतु भगवान्ने ऐसा न देकर 'मनुष्याणाम्' पदमें षष्ठी विभक्ति और सहस्रेषु' पदमें सप्तमी विभक्ति दी है । ऐसी दो विभक्तियाँ देनेका तात्पर्य है कि अरबों मनुष्योंमें अर्थात् मात्र मनुष्य-शरीरधारियोंमें जो श्रेष्ठ आचरणवाले हैं, उत्तम भाववाले हैं, संसारमें श्रेष्ठ कहलाते हैं और संसारसे विमुख होना चाहते हैं, ऐसे मनुष्य हजारों हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

लिये* यत्न करता है अर्थात् जिससे बढ़कर कोई लाभ नहीं, जिसमें दु:खका लेश भी नहीं और आनन्दकी किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं—कमीकी सम्भावना ही नहीं, ऐसे स्वत:सिद्ध नित्यतत्त्वकी प्राप्तिके लिये यत्न करता है।

जो परलोकमें स्वर्ग आदिकी प्राप्ति नहीं चाहता और इस लोकमें धन नहीं चाहता, मान नहीं चाहता, भोग नहीं चाहता, कीर्ति नहीं चाहता अर्थात् जो उत्पत्ति-विनाशशील वस्तुओंमें नहीं अटकता और भोगे हुए भोगोंके तथा मान-बड़ाई, आदर-सत्कार आदिके संस्कार रहनेसे उन विषयोंका सङ्ग होनेपर उन विषयोंमें रुचि होते रहनेपर भी जो अपनी मान्यता, उद्देश्य, विचार, सिद्धान्त आदिसे विचलित नहीं होता—ऐसा कोई एक पुरुष ही सिद्धिके लिये यत्न करता है। इससे सिद्ध होता है कि परमात्मप्राप्तिरूप सिद्धिके लिये यत्न करनेवाले अर्थात् दृढ़तासे उधर लगनेवाले बहुत कम मनुष्य होते हैं।

परमात्मप्राप्तिकी तरफ न लगनेमें कारण है—भोग और संग्रहमें लगना। सांसारिक भोग-पदार्थोंमें केवल आरम्भमें ही सुख दीखता है। प्राणी प्राय: तत्काल सुख देनेवाले साधनोंमें ही लगते हैं। उनका परिणाम क्या होगा—इसपर वे विचार करते ही नहीं। अगर वे भोग और ऐश्वर्यके परिणामपर विचार करने लग जायँ कि

* स्वर्ग आदि लोकोंकी और अणिमा, महिमा, गरिमा आदि सिद्धियोंकी प्राप्ति वास्तवमें सिद्धि है ही नहीं, प्रत्युत वह तो असिद्धि ही है; क्योंकि वह पतन करनेवाली अर्थात् बार-बार जन्म-मरणको देनेवाली है (९।२१)। इस वास्ते यहाँ परमात्माकी प्राप्तिको ही सिद्धि कहा गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'भोग और संग्रहके अन्तमें कुछ नहीं मिलेगा, रीते रह जायँगे और उनकी प्राप्तिके लिये किये हुए पाप-कर्मोंके फलस्वरूप चौरासी लाख योनियों तथा नरकोंके रूपमें दुःख-ही-दुःख मिलेगा', तो वे परमात्माके साधनमें लग जायँगे। दूसरा कारण यह है कि प्रायः लोग सांसारिक भोगोंमें ही लगे रहते हैं। उनमेंसे कुछ लोग संसारके भोगोंसे ऊँचे उठते भी हैं तो वे परलोकके स्वर्ग आदि भोग-भूमियोंमें लग जाते हैं। परन्तु अपना कल्याण हो जाय, परमात्माकी प्राप्ति हो जाय—ऐसा दृढ़तासे विचार करके परमात्माकी तरफ लगनेवाले लोग बहुत कम होते हैं। इतिहासमें भी देखते हैं तो सकामभावसे तपस्या आदि साधन करनेवालोंके ही चरित्र विशेष आते हैं। कल्याणके लिये तत्परतासे साधन करनेवालोंके चरित्र बहुत ही कम आते हैं।

वास्तवमें परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कठिन या दुर्लभ नहीं है, प्रत्युत इधर सच्ची लगनसे तत्परतापूर्वक लगनेवाले बहुत कम हैं। इधर दृढ़तासे न लगनेमें संयोगजन्य सुखकी तरफ आकृष्ट होना और परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये भविष्यकी आशा* रखना ही खास कारण है।

---

* परमात्मा सब देशमें, सब कालमें, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें, सब वस्तुओंमें, सब घटनाओंमें, सब परिस्थितियोंमें और सम्पूर्ण क्रियाओंमें स्वतः परिपूर्णरूपसे मौजूद हैं; अतः उनकी प्राप्तिमें भविष्यका कोई कारण ही नहीं है। परमात्मतत्त्व कर्मजन्य नहीं है। जो वस्तु कर्मजन्य होती है, वह भविष्यमें मिलती है। कारण कि जो कर्मजन्य वस्तु होती है, वह उत्पत्ति-विनाशवाली होती है और उसमें देश, कालकी दूरी होती है; अतः उसीके लिये भविष्य होता है। अगर मनुष्य यह विचार करे कि परमात्मा सब देशमें हैं तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'यततामपि सिद्धानाम्'*—यहाँ 'सिद्ध' शब्दसे उनको लेना चाहिये, जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है और जो केवल एक भगवान्‌में ही लग गये हैं। इन्हींको गीतामें महात्मा कहा गया है। यद्यपि 'सब कुछ परमात्मा ही है' ऐसा जाननेवाले तत्त्वज्ञ पुरुषको भी (७।१९ में) महात्मा कहा गया है, तथापि यहाँ तो वे ही महात्मा साधक लेने चाहिये, जो आसुरी-सम्पत्तिसे रहित होकर केवल दैवी-

---

यहाँ भी हैं, जब यहाँ हैं तो कहीं जानेकी जरूरत नहीं। परमात्मा सब समयमें हैं तो अभी भी हैं, जब अभी हैं तो भविष्य क्यों! परमात्मा सबमें हैं तो मेरेमें भी हैं, जब मेरेमें हैं तो दूसरे किसीमें खोजनेकी पराधीनता नहीं। परमात्मा सबके हैं तो मेरे भी हैं; जब मेरे हैं तो मेरेको अत्यन्त प्यारे होने ही चाहिये; क्योंकि अपनी चीज सबको प्यारी होती ही है। साथ-ही-साथ परमात्मा सर्वोत्कृष्ट हैं अर्थात् उनसे बढ़कर कोई है ही नहीं—ऐसा विश्वास होनेपर स्वतः ही मन खिंचेगा।

उपर्युक्त बातोंपर दृढ़ विश्वास हो जाय तो परमात्माकी आशा भविष्यका अवलम्बन करनेवाली नहीं होती; किन्तु उन्हें तत्काल प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा हो जाती है।

* यहाँ 'शाटी-सूत्र-न्याय'से साधकको ही 'सिद्ध' कहा गया है। जिस सूत्रसे साड़ी बनेगी, उसको शाटी-सूत्र अर्थात् साड़ीका सूत्र कहते हैं। ऐसे ही जो साधक सिद्ध बनेगा, उसको 'सिद्ध' कहते हैं। शाटी-सूत्र-न्यायसे वह सिद्ध हो ही जायगा, तत्त्वज्ञ हो ही जायगा। हाँ, सूतकी साड़ी न बना करके मनुष्य उसका दूसरा कुछ बना दे अथवा सूत जल जाय तो साड़ी नहीं बनेगी, पर भगवान्‌का आश्रय लेकर जो अनन्यभावसे केवल भगवत्प्राप्तिके लिये भगवान्‌का भजन करेगा, वह सिद्ध हो ही जायगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सम्पत्तिका आश्रय लेकर अनन्यभावसे भगवान्‌का भजन करते हैं*। इसका कारण यह है कि ये यत्न करते हैं—'**यतताम्**'। इस वास्ते यहाँ (७। १९ में वर्णित) तत्त्वज्ञ महात्माको नहीं लेना चाहिये।

यहाँ '**यतताम्**' पदका तात्पर्य मात्र बाह्य चेष्टाओंसे नहीं है। इसका तात्पर्य है—भीतरमें केवल परमात्मप्राप्तिकी उत्कट उत्कण्ठा लगना, स्वाभाविक ही लगन होना और स्वाभाविक ही आदरपूर्वक उन परमात्माका चिन्तन होना।

'**कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः**'—ऐसे यत्न करनेवालोंमें कोई एक ही मेरेको तत्त्वसे जानता है। यहाँ 'कोई एक ही जानता है' ऐसा कहनेका यह बिल्कुल तात्पर्य नहीं है कि यत्न करनेवाले सब नहीं जानेंगे, प्रत्युत यहाँ इसका तात्पर्य है कि प्रयत्नशील साधकोंमें वर्तमान समयमें कोई एक ही तत्त्वको जाननेवाला मिलता है। कारण कि कोई एक ही उस तत्त्वको जानता है और वैसे ही दूसरा कोई एक ही उस तत्त्वका विवेचन करता है—'**आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः**' (गीता २। २९)। यहाँ '**तथैव चान्यः**' (वैसे ही दूसरा कोई) कहनेका तात्पर्य न जाननेवाला नहीं है; क्योंकि जो नहीं जानता है, वह क्या कहेगा और कैसे कहेगा? अतः 'दूसरा कोई' कहनेका तात्पर्य है कि जाननेवालोंमेंसे कोई एक उसका विवेचन करनेवाला होता है। दूसरे जितने भी जानकार हैं, वे स्वयं

---

* महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥
(गीता ९। १३)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तो जानते हैं, पर विवेचन करनेमें, दूसरोंको समझानेमें वे सब-के-सब समर्थ नहीं होते।

प्रायः लोग इस (तीसरे) श्लोकको तत्त्वकी कठिनता बतानेवाला मानते हैं। परन्तु वास्तवमें यह श्लोक तत्त्वकी कठिनताके विषयमें नहीं है; क्योंकि परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति कठिन नहीं है, प्रत्युत तत्त्वप्राप्तिकी उत्कट अभिलाषा होना और अभिलाषाकी पूर्तिके लिये तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषोंका मिलना दुर्लभ है, कठिन है। यहाँ भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि 'मैं कहूँगा और तू जानेगा', तो अर्जुन-जैसा अपने श्रेयका प्रश्न करनेवाला* और भगवान्-जैसा सर्वज्ञ कहनेवाला मिलना दुर्लभ है। वास्तवमें देखा जाय तो केवल उत्कट अभिलाषा होना ही दुर्लभ है। कारण कि अभिलाषा होनेपर उसको जनानेकी जिम्मेवारी भगवान्पर आ जाती है।

यहाँ 'तत्त्वतः' कहनेका तात्पर्य है कि वह मेरे सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, विष्णु आदि रूपोंमें प्रकट होनेवाले और समय-समयपर तरह-तरहके अवतार लेनेवाले मुझको तत्त्वसे जान लेता है अर्थात् उसके जाननेमें किञ्चिन्मात्र भी

---

* यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥
(गीता २ । ७)

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥
(गीता ३ । २)

यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।
(गीता ५ । १)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सन्देह नहीं रहता और उसके अनुभवमें एक परमात्मतत्त्वके सिवाय संसारकी किञ्चिन्मात्र भी सत्ता नहीं रहती।

सम्बन्ध—

दूसरे श्लोकमें भगवान्‌ने ज्ञान-विज्ञान कहनेकी प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञाके अनुसार अब भगवान् ज्ञान-विज्ञान कहनेका उपक्रम करते हैं।

श्लोक—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥*
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

अर्थ—

हे महाबाहो ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पञ्च-महाभूत और मन, बुद्धि तथा अहंकार—इन आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी 'अपरा' प्रकृति है। इससे भिन्न मेरी जीवरूपा 'परा' प्रकृतिको जान, जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है।

---

* जो परिवर्तनशील है, कभी एकरूप नहीं रहता, उस जड़का ही भगवान्‌ने अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे 'क्षर' नामसे वर्णन किया है—'क्षरः सर्वाणि भूतानि' (१५ । १६), फिर 'भूमिरापोऽनलो वायुः ·······प्रकृति-रष्टधा' (७ । ४)—इस श्लोकमें उसीको आठ भेदोंवाली 'अपरा प्रकृति' के नामसे कहा है और फिर 'महाभूतान्यहंकारः········पञ्च चेन्द्रिय-गोचराः' (१३ । ५)—इस श्लोकमें उसीके विस्तारसे चौबीस भेद बताये हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

व्याख्या—

परमात्मा सबके कारण हैं ! वे प्रकृतिको लेकर सृष्टिकी रचना करते हैं*। जिस प्रकृतिको लेकर रचना करते हैं, उसका नाम 'अपरा प्रकृति' है और अपना अंश जो जीव है, उसको भगवान् 'परा प्रकृति' कहते हैं। अपरा प्रकृति निकृष्ट, जड़ और परिवर्तनशील है तथा परा प्रकृति श्रेष्ठ, चेतन और परिवर्तनरहित है।

अपरा प्रकृति कभी क्रियारहित नहीं होती, प्रत्युत निरन्तर क्रियाशील रहती है। इस अपरा प्रकृतिकी सक्रिय और अक्रिय—ऐसी दो अवस्थाएँ कही जाती हैं। सर्ग और महासर्गमें प्रकृतिकी सक्रिय-अवस्था कही जाती है तथा प्रलय और महाप्रलयमें प्रकृतिकी अक्रिय-अवस्था कही जाती है। परंतु इस विषयपर थोड़ा गहरा विचार करके देखा जाय तो प्रलय और महाप्रलयमें भी सूक्ष्म क्रिया होती ही रहती है। अगर प्रलय और महाप्रलयमें प्रकृतिको अक्रिय माना जाय तो प्रलय-महाप्रलयके आदि, मध्य और अन्त कैसे होंगे? ये तो प्रकृतिमें सूक्ष्म क्रिया होनेसे ही होंगे। इस वास्ते सर्ग-अवस्थाकी अपेक्षा प्रलय-अवस्थामें अपेक्षाकृत अक्रियता है, सर्वथा अक्रियता नहीं है।

प्रत्येक मनुष्यका भिन्न-भिन्न स्वभाव होता है। जैसे स्वभावको मनुष्यसे अलग सिद्ध नहीं कर सकते, ऐसे ही परमात्माकी

---

* कहीं तो प्रकृतिको लेकर भगवान् रचना करते हैं (गीता ९। ८) और कहीं भगवान्‌की अध्यक्षतामें प्रकृति रचना करती है (गीता ९। १०)—इन दोनों ही रीतियोंसे गीतामें संसारकी रचनाका वर्णन आता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्रकृतिको परमात्मासे अलग (स्वतन्त्र) सिद्ध नहीं कर सकते। यह प्रकृति प्रभुका ही एक स्वभाव है, इस वास्ते इसका नाम 'प्रकृति' है। इसी प्रकार परमात्माका अंश होनेसे जीवको परमात्मासे भिन्न सिद्ध नहीं कर सकते; क्योंकि यह परमात्माका स्वरूप है। परमात्माका स्वरूप होनेपर भी केवल अपरा प्रकृतिके साथ सम्बन्ध जोड़नेके कारण इस जीवात्माको प्रकृति कहा गया है। अपरा प्रकृतिके सम्बन्धसे अपनेमें कृति (करना) माननेके कारण ही यह जीव-रूप है। अगर यह अपनेमें कृति न माने तो यह परमात्मस्वरूप ही है, फिर इसकी जीव या प्रकृति संज्ञा नहीं रहती अर्थात् इसमें बन्धनकारक कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं रहता*।

यहाँ अपरा प्रकृतिमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—ये आठ शब्द लिये गये हैं। इनमेंसे अगर पाँच स्थूल भूतोंसे स्थूल सृष्टि मानी जाय तथा मन, बुद्धि और अहंकार—इन तीनोंसे सूक्ष्म सृष्टि मानी जाय तो इस वर्णनमें स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि तो आ जाती है, पर कारणरूप प्रकृति इसमें नहीं आती। कारणरूप प्रकृतिके बिना प्रकृतिका वर्णन अधूरा रह जाता है। इस वास्ते आदरणीय टीकाकारोंने पाँच स्थूल भूतोंसे सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) को ग्रहण किया है, जो कि पाँच स्थूल भूतोंकी कारण हैं। 'मन' शब्दसे अहंकार

---

* यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥
(गीता १८। १७)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लिया है, जो कि मनका कारण है। 'बुद्धि' शब्दसे महत्तत्त्व (समष्टि बुद्धि) और 'अहंकार' शब्दसे प्रकृति ली गयी है। इस प्रकार इन आठ शब्दोंका ऐसा अर्थ लेनेसे ही समष्टि अपरा प्रकृतिका पूरा वर्णन होता है, क्योंकि इसमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीनों समष्टि शरीर आ जाते हैं। शास्त्रोंमें इसी समष्टि प्रकृतिका 'प्रकृति-विकृति'के नामसे वर्णन किया गया है*। परन्तु यहाँ एक बात ध्यान देनेकी है कि भगवान्‌ने यहाँ अपरा और परा प्रकृतिका वर्णन 'प्रकृति-विकृति' की दृष्टिसे नहीं किया है। यदि भगवान् 'प्रकृति-विकृति' की दृष्टिसे वर्णन करते तो चेतनको प्रकृतिके नामसे कहते ही नहीं, क्योंकि चेतन न तो प्रकृति है और न विकृति है। इससे

---

* मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥
(सांख्यकारिका ३)

तात्पर्य है कि मूल प्रकृति तो किसीसे पैदा नहीं होती, इस वास्ते यह किसीकी भी विकृति (कार्य) नहीं है।

मूल प्रकृतिसे पैदा होनेके कारण महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्राएँ—ये सात पदार्थ 'विकृति' भी हैं और शब्दादि पाँच विषयों तथा दस इन्द्रियोंके कारण होनेसे 'प्रकृति' भी हैं अर्थात् ये सातों पदार्थ 'प्रकृति-विकृति' हैं।

शब्दादि पाँच विषय दस इन्द्रियाँ और मन—ये सोलह पदार्थ केवल 'विकृति' हैं; क्योंकि ये किसीकी भी प्रकृति (कारण) नहीं हैं अर्थात् इनसे कोई भी पदार्थ पैदा नहीं होता।

चेतन न प्रकृति है और न विकृति ही है अर्थात् यह न तो किसीका कारण है और न कार्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सिद्ध होता है कि भगवान्‌ने यहाँ जड़ और चेतनका विभाग बताने लिये ही अपरा प्रकृतिके नामसे जड़का और परा प्रकृतिके नामसे चेतन का वर्णन किया है।

भगवद्गीताका यह आशय मालूम देता है कि पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश—इन पाँच तत्त्वोंके स्थूलरूपसे स्थूल सृष्टि ली गयी है और इनका सूक्ष्मरूप जो पञ्चतन्मात्राएँ कही जाती हैं उनसे सूक्ष्म सृष्टि ली गयी है। सूक्ष्म सृष्टिके अङ्ग मन, बुद्धि और अहंकार हैं। इनमेंसे 'अहंकार' दो प्रकारका होता है—(१) 'अहं-अहं' करके अन्तःकरणकी वृत्तिका नाम भी अहंकार है, जो कि करणरूप है। यह हुई 'अपरा प्रकृति', जिसका वर्णन यहाँ चौथे श्लोकमें हुआ है और (२) 'अहम्'-रूपसे व्यक्तित्व, एकदेशीयता का नाम भी अहंकार है, जो कि कर्तारूप है अर्थात् अपनेको क्रियाओंका करनेवाला मानता है। यह हुई 'परा प्रकृति', जिसका वर्णन यहाँ पाँचवें श्लोकमें हुआ है। यह अहंकार कारणशरीरमें तादात्म्यरूपसे रहता है। इस तादात्म्यमें एक जड़-अंश है और एक चेतन-अंश है। इसमें जो जड़-अंश है, वह कारणशरीर है और उसमें जो अभिमान करता है, वह चेतन-अंश है। यह जड़-चेतनके तादात्म्यवाला कारणशरीरका 'अहम्' जबतक बोध नहीं होता, तबतक कर्तारूपसे निरन्तर बना रहता है। सुषुप्तिके समय यह सुप्तरूपसे रहता है अर्थात् प्रकट नहीं होता। नींदसे जगने-पर 'मैं सोया था, अब जाग्रत् हुआ हूँ' इस प्रकार 'अहं' की जागृति होती है। इसके बाद मन और बुद्धि जाग्रत् होते हैं;

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जैसे—मैं कहाँ हूँ, कैसे हूँ—यह मन हुआ और मैं इस देशमें, इस समयमें हूँ—ऐसा निश्चय होना बुद्धि हुई । इस अनुभवकी तरफ दृष्टि करनेसे पता चलता है कि यह परा प्रकृति है और वृत्तिरूप जो अहंकार है, वह अपरा प्रकृति है । इस अपरा प्रकृतिको प्रकाशित करनेवाला और आश्रय देनेवाला चेतन जब अपरा प्रकृतिको अपनी मान लेता है, तब वह जीवरूप परा प्रकृति होती है—'ययेदं धार्यते जगत्' ।

अगर यह परा प्रकृति अपरा प्रकृतिसे विमुख होकर परमात्माके ही सम्मुख हो जाय, परमात्माको ही अपना माने और अपरा प्रकृतिको कभी भी अपना न माने अर्थात् अपरा प्रकृतिसे सर्वथा सम्बन्धरहित होकर निर्लिप्तताका अनुभव कर ले तो इसको अपने स्वरूपका बोध हो जाता है । स्वरूपका बोध हो जानेपर परमात्माका प्रेम प्रकट हो जाता है*, जो कि पहले अपरा प्रकृतिसे सम्बन्ध रखनेसे आसक्ति और कामनाके रूपमें था । वह प्रेम अनन्त, अगाध, असीम, आनन्दरूप और प्रतिक्षण वर्धमान है । उसकी प्राप्ति होनेसे यह परा प्रकृति प्राप्त-प्राप्तव्य हो जाती है, अपने असङ्गरूपका अनुभव होनेसे ज्ञात-ज्ञातव्य हो जाती है और अपरा प्रकृतिको

* जिस साधकमें ज्ञानमार्गका विशेष महत्त्व होता है, वही प्रेम उसके अपने स्वरूपके आकर्षणके रूपमें प्रकट हो जायगा और जिस साधकमें भक्तिके संस्कार होते हैं,—उसमें प्रभु प्रेमके रूपमें प्रकट हो जायगा । यदि ज्ञानमार्गवाले साधकका आग्रह नहीं होगा तो उसमें भी प्रभु-प्रेम प्रकट हो ही जायगा । स्वरूप-बोध होनेपर ज्ञानमार्गका आग्रह नहीं रहता; अतः उसमें प्रभु-प्रेम प्रकट हो जाता है । इस दृष्टिसे अन्तमें दोनों (भक्तियोगी और ज्ञानयोगी) एक हो जाते हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

संसारमात्रकी सेवामें लगाकर संसारसे सर्वथा विमुख होनेसे कृतकृत्य हो जाती है। यही मानव-जीवनकी पूर्णता है, सफलता है।

'प्रकृतिरष्टधा अपरेयम्'—हमें ऐसा मालूम देता है कि यहाँ जो आठ प्रकारकी अपरा प्रकृति कही गयी है, वह 'व्यष्टि अपरा प्रकृति' है। इसका कारण यह है कि प्राणीको व्यष्टि प्रकृति—शरीरसे ही बन्धन होता है, समष्टि प्रकृतिसे नहीं। कारण कि प्राणी व्यष्टि शरीरके साथ अपनापन कर लेता है, जिससे बन्धन होता है। गीतामें भगवान्‌का उद्देश्य केवल शास्त्रोंकी प्रक्रियाओं-का बोध करानेका नहीं है, प्रत्युत जीवको बन्धनसे छुड़ाकर उसे मुक्त करानेका है।

व्यष्टि कोई अलग तत्त्व नहीं है, प्रत्युत समष्टिका ही एक क्षुद्र अंश है। समष्टिसे माना हुआ सम्बन्ध ही व्यष्टि कहलाता है अर्थात् समष्टिके अंश शरीरके साथ जीव अपना सम्बन्ध मान लेता है तो वह समष्टिका अंश शरीर ही 'व्यष्टि' कहलाता है। व्यष्टिसे सम्बन्ध जोड़ना ही बन्धन है। इस बन्धनसे छुड़ानेके लिये भगवान्‌ने आठ प्रकारकी अपरा प्रकृतिका वर्णन करके कहा है कि जीवरूप परा प्रकृतिने ही इस अपरा प्रकृतिको धारण कर रखा है। यदि धारण न करे तो बन्धनका प्रश्न ही नहीं है।

पंद्रहवें अध्यायके सातवें श्लोकमें भगवान्‌ने जीवात्माको अपना अंश कहा—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'**। परन्तु वह प्रकृतिमें स्थित रहनेवाले मन और पाँचों इन्द्रियोंको खींचता है

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थात् उनको अपनी मानता है—'मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति'। इसी तरह तेरहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें भगवान्ने क्षेत्ररूपसे समष्टिका वर्णन करके छठे श्लोकमें व्यष्टिके विकारोंका वर्णन किया*; क्योंकि ये विकार व्यष्टिके ही होते हैं, समष्टिके नहीं। इन सबसे यही सिद्ध हुआ कि व्यष्टिसे सम्बन्ध जोड़ना ही बाधक है। इस व्यष्टिसे सम्बन्ध तोड़नेके लिये ही यहाँ व्यष्टि अपरा प्रकृतिका वर्णन किया गया है, जो कि समष्टिका ही अङ्ग है। व्यष्टि प्रकृति अर्थात् शरीर समष्टि सृष्टिमात्रके साथ सर्वथा अभिन्न है, भिन्न कभी हो ही नहीं सकता।

वास्तवमें मूल प्रकृति कभी किसीके बाधक या साधक (सहायक) नहीं होती। जब साधक उससे अपना सम्बन्ध नहीं मानता, तब तो वह सहायक हो जाती है, पर जब वह उससे अपना सम्बन्ध मान लेता है, तब वह बाधक हो जाती है, क्योंकि प्रकृतिके साथ सम्बन्ध माननेसे व्यष्टि अहंता (मैं-पन) पैदा होती है। यह अहंता ही बन्धनका कारण होती है।

यहाँ 'इतीयं मे' पदोंसे भगवान् यह चेता रहे हैं कि यह अपरा प्रकृति मेरी है। इसके साथ भूलसे अपनापन कर लेना ही बार-बार जन्म-मरणका कारण है और जो भूल करता है, उसीपर

---

* महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥
(गीता १३। ५-६)

गी० रा० वि० ३-४—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भूलको मिटानेकी जिम्मेवारी होती है। इस वास्ते जीव इस अपराके साथ अपनापन न करे।

अहंतामें भोगेच्छा और जिज्ञासा—ये दोनों रहती हैं। इनमेंसे भोगेच्छाको कर्मयोगके द्वारा मिटाया जाता है और जिज्ञासाको ज्ञानयोगके द्वारा पूरा किया जाता है। कर्मयोग और ज्ञानयोग—इन दोनोंमेंसे एकके भी सम्यक्तया पूर्ण होनेपर एक-एकमें दोनों आ जाते हैं* अर्थात् भोगेच्छाकी निवृत्ति होनेपर जिज्ञासाकी भी पूर्ति हो जाती है और जिज्ञासाकी पूर्ति होनेपर भोगेच्छाकी भी निवृत्ति हो जाती है। कर्मयोगमें भोगेच्छा मिटनेपर तथा ज्ञानयोगमें जिज्ञासाकी पूर्ति होनेपर असङ्गता स्वतः आ जाती है। उस असङ्गताका भी उपभोग न करनेपर वास्तविक बोध हो जाता है और मनुष्यका जन्म सर्वथा सार्थक हो जाता है।

'जीवभूताम्'†—वास्तवमें यह जीवरूप नहीं है, प्रत्युत जीव बना हुआ है। यह तो स्वतः साक्षात् परमात्माका अंश है।

---

* सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता ५। ४-५)

† गीतामें भगवान्‌ने जीवको 'जीवभूताम्' कहकर स्त्रीलिङ्ग, 'जीवभूतः सनातनः' (१५। ७) कहकर पुंल्लिङ्ग और 'स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते' (८। ३) कहकर नपुंसकलिङ्ग बताया। इसका तात्पर्य यह है कि जीव न स्त्रीलिङ्ग है, न पुंल्लिङ्ग है, न नपुंसकलिङ्ग है। ये लिङ्ग तो शरीरकी दृष्टिसे ही कहे जाते हैं।

*

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

केवल स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीररूप प्रकृतिके साथ सम्बन्ध जोड़नेसे ही यह जीव बना है। यह सम्बन्ध जोड़ता है—अपने सुखके लिये। यही सुख इसके जन्म-मरणरूप महान् दुःखका खास कारण है।

'महाबाहो'—हे अर्जुन ! तुम बड़े शक्तिशाली हो, इस वास्ते तुम अपरा और परा प्रकृतिके भेदको समझनेमें समर्थ हो। अतः तुम इसको समझो—**'विद्धि'**।

'ययेदं धार्यते जगत्*'—वास्तवमें यह जगत् जगद्रूप नहीं है, प्रत्युत भगवान्का ही स्वरूप है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (७। १९), **'सदसच्चाहम्'** (९। १९)। केवल इस परा प्रकृति—जीवने इसको जगत्-रूपसे धारण कर रखा है अर्थात् जीव इस संसारकी स्वतन्त्र सत्ता मानकर अपने सुखके लिये इसका उपयोग करने लग गया। इसीसे जीवका बन्धन हुआ है। अगर जीव संसारकी स्वतन्त्र सत्ता न मानकर इसको केवल भगवत्स्वरूप ही माने तो उसका जन्म-मरणरूप बन्धन मिट जायगा।

भगवान्की परा प्रकृति होकर भी जीवात्माने इस दृश्यमान जगत्को, जो कि अपरा प्रकृति है, धारण कर रखा है अर्थात् इस परिवर्तनशील, विकारी जगत्को स्थायी, सुन्दर और सुखप्रद मानकर 'मैं' और 'मेरे'रूपसे धारण कर रखा है। जिसकी भोगों और

---

* गीतामें 'जगत्' शब्द कहीं 'परा' प्रकृतिका (७। १३), कहीं 'अपरा' प्रकृतिका (७। ५) और कहीं 'परा-अपरा' दोनों प्रकृतियोंका वाचक है (७। ६)।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पदार्थोंमें जितनी आसक्ति है, आकर्षण है, उसको उतना ही संसार और शरीर स्थायी, सुन्दर और सुखप्रद माळ्म देता है। पदार्थोंका संग्रह तथा उनका उपभोग करनेकी लालसा ही खास बाधक है। संग्रहसे अभिमानजन्य सुख होता है और भोगोंसे संयोगजन्य सुख होता है। इस सुखासक्तिसे ही जीवने जगत्को जगत्-रूपसे धारण कर रखा है। सुखासक्तिके कारण ही वह इस जगत्को भगवत्स्वरूपसे नहीं देख सकता। जैसे स्त्री वास्तवमें जनन-शक्ति है; परन्तु स्त्रीमें आसक्त पुरुष स्त्रीको मातृरूपसे नहीं देख सकता, ऐसे ही संसार वास्तवमें भगवत्स्वरूप है; परन्तु संसारको अपना भोग्य माननेवाला भोगासक्त पुरुष संसारको भगवत्स्वरूप नहीं देख सकता। यह भोगासक्ति ही जगत्को धारण कराती है अर्थात् जगत्को धारण करनेमें हेतु है।

दूसरी बात, प्राणिमात्रके शरीरोंकी उत्पत्ति रज-वीर्यसे ही होती है, जो कि स्वरूपसे स्वतः ही मलिन है। परन्तु भोगोंमें आसक्त पुरुषोंकी उन शरीरोंमें मलिन बुद्धि नहीं होती, प्रत्युत रमणीय बुद्धि होती है। यह रमणीय बुद्धि ही जगत्को धारण कराती है।

नदीके किनारे खड़े एक सन्तसे किसीने कहा कि 'देखिये महाराज! यह नदी बह रही है और उस पुलपर मनुष्य चले जा रहे हैं।' सन्तने उससे कहा कि 'देखो भाई! नदी ही नहीं, वह पुल भी बड़ी तेजीसे बह रहा है और यह पृथ्वी भी बड़ी तेजीसे बह रही है!' तात्पर्य यह हुआ कि वह पुल बड़ी तेजीसे नाशकी तरफ जा रहा है और यह पृथ्वी भी बड़ी तेजीसे प्रलयकी तरफ जा रही है। इस प्रकार भावरूपसे दीखनेवाला यह सारा जगत् प्रतिक्षण

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अभावमें जा रहा है; परन्तु जीवने इसको भाव-रूपसे अर्थात् 'है' रूपसे धारण कर रखा है, स्वीकार कर रखा है। परा प्रकृतिकी (स्वरूपसे) उत्पत्ति नहीं होती; पर अपरा प्रकृतिके साथ तादात्म्य करनेके कारण यह शरीरकी उत्पत्तिको अपनी उत्पत्ति मान लेता है और शरीरके नाशको अपना नाश मान लेता है, जिससे यह जन्मता-मरता रहता है। अगर यह अपराके साथ सम्बन्ध न जोड़े, इससे विमुख हो जाय अर्थात् भावरूपसे इसको सत्ता न दे तो यह जगत् सत्-रूपसे दीख ही नहीं सकता।

'इदम्' पदसे शरीर और संसार—दोनों लेने चाहिये; क्योंकि शरीर और संसार दो नहीं हैं। अलग-अलग नहीं हैं। तत्त्वतः (धातु चीज) एक ही है। शरीर और संसारका भेद केवल माना हुआ है, वास्तवमें अभेद ही है। इस वास्ते तेरहवें अध्यायमें भगवान्‌ने 'इदं शरीरम्' पदोंसे शरीरको क्षेत्र बताया (१३ । १); परन्तु जहाँ क्षेत्रका वर्णन किया है, वहाँ समष्टिका ही वर्णन हुआ है (१३ । ५) और इच्छा-द्वेषादि विकार व्यष्टिके माने गये हैं (१३ । ६); क्योंकि इच्छा आदि विकार व्यष्टि प्राणीके ही होते हैं। तात्पर्य है कि समष्टि और व्यष्टि तत्त्वतः एक ही हैं। एक होते हुए भी अपनेको शरीर माननेसे 'अहंता' और शरीरको अपना माननेसे 'ममता' पैदा होती है, जिससे बन्धन होता है। अगर शरीर और संसारकी अभिन्नताका अथवा अपनी और भगवान्‌की अभिन्नताका साक्षात् अनुभव हो जाय तो अहंता और ममता स्वतः मिट जाती हैं। ये अहंता और ममता कर्मयोग, ज्ञानयोग और

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भक्तियोग—तीनोंसे ही मिलती हैं। कर्मयोगसे—'निर्ममो निरहंकारः' (गीता २ । ७१), ज्ञानयोगसे—'अहंकारं······विमुच्य निर्ममः' (गीता १८ । ५३) और भक्तियोगसे—'निर्ममो निरहंकारः' (गीता १२ । १३) तात्पर्य है कि जड़ताके साथ सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिये, जो कि केवल माना हुआ है। अतः विवेकपूर्वक न माननेसे अर्थात् वास्तविकताका अनुभव करनेसे वह माना हुआ सम्बन्ध मिट जाता है।

सम्बन्ध—

पिछले श्लोकमें भगवान्ने कहा कि परा प्रकृतिने अपरा प्रकृतिको धारण कर रखा है। उसीका स्पष्टीकरण करनेके लिये अब अगला श्लोक कहते हैं।

श्लोक—

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

अर्थ—

अपरा और परा—इन दोनों प्रकृतियोंके संयोगसे ही सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं, ऐसा तुम समझो; और मैं सम्पूर्ण जगत्का प्रभव तथा प्रलय हूँ।

व्याख्या—

'एतद्योनीनि भूतानि'*—जितने भी देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जङ्गम और वृक्ष, लता, घास आदि स्थावर प्राणी

* 'एतद्योनीनि भूतानि' पदोंका अर्थ है—एते अपरा-परे योनी कारणे येषां तानि' अर्थात् 'अपरा और परा—ये दो प्रकृतियाँ जिनकी कारण हैं, ऐसे सम्पूर्ण प्राणी'।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हैं, वे सब-के-सब मेरी अपरा और परा प्रकृतिके सम्बन्धसे ही उत्पन्न होते हैं।

तेरहवें अध्यायमें भी भगवान्ने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके सम्बन्धसे सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम प्राणियोंकी उत्पत्ति बतायी है*। यही बात सामान्य रीतिसे चौदहवें अध्यायमें भी बतायी है कि स्थावर, जङ्गम योनियोंमें उत्पन्न होनेवाले जितने शरीर हैं, वे सब प्रकृतिके हैं; और उन शरीरोंमें जो बीज अर्थात् जीवात्मा है, वह मेरा अंश है†। उसी बीज यानी जीवात्माको भगवान्ने 'परा प्रकृति' (७ । ५) और 'अपना अंश' (१५ । ७) कहा है।

'सर्वाणीत्युपधारय'—स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताललोक आदि सम्पूर्ण लोकोंके जितने भी स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, वे सब-के-सब अपरा और परा प्रकृतिके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं‡। तात्पर्य है कि परा प्रकृतिने अपराको अपना मान लिया है,

---

* यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥
(१३ । २६)

† सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥
(१४ । ४)

‡ इसमें एक विचित्र बात है कि सम्बन्ध केवल क्षेत्रज्ञने माना है, क्षेत्रने नहीं। यदि यह अपना सम्बन्ध न माने तो इसका पुनर्जन्म हो ही नहीं सकता; क्योंकि पुनर्जन्मका कारण गुणोंका सङ्ग ही है—'कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥' (गीता १३ । २१)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उसका सङ्ग कर लिया है, इसीसे सब प्राणी पैदा होते हैं—इसको तुम धारण करो अर्थात् ठीक तरहसे समझ लो अथवा मान लो।

'अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा'—मात्र वस्तुको सत्ता-स्फूर्ति परमात्मासे ही मिलती है, इसलिये भगवान् कहते हैं कि मैं सम्पूर्ण जगत्‌का प्रभव (उत्पन्न करनेवाला) और प्रलय (लीन करनेवाला) हूँ।

'प्रभवः' का तात्पर्य है कि मैं ही इस जगत्‌का निमित्त कारण हूँ; क्योंकि मात्र सृष्टि मेरे संकल्पसे* पैदा हुई है—'सदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' (छान्दोग्य० ६ । २ । ३)।

जैसे घड़ा बनानेमें कुम्हार और सोनेके आभूषण बनानेमें सुनार ही निमित्त कारण है, ऐसे ही संसारमात्रकी उत्पत्तिमें भगवान् ही निमित्त कारण हैं।

'प्रलयः' कहनेका तात्पर्य है कि इस संसारका उपादान कारण भी मैं ही हूँ; क्योंकि कार्यमात्र उपादान कारणसे उत्पन्न होता है, उपादान कारण-रूपसे ही रहता है और अन्तमें उपादान कारणमें ही लीन हो जाता है।

---

* जीवोंके किये हुए अनादिकालके कर्म जीवोंके प्रलयकालमें लीन होनेपर जब परिपक्व होते हैं अर्थात् फल देनेके लिये उन्मुख होते हैं तो उससे (प्रलयका समय समाप्त होनेपर, सर्गके आदिमें) भगवान्‌का संकल्प होता है और उसी संकल्पसे शरीरोंकी उत्पत्ति होती है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जैसे घड़ा बनानेमें मिट्टी उपादान कारण है, ऐसे ही सृष्टिकी रचना करनेमें भगवान् ही उपादान कारण हैं। जैसे घड़ा मिट्टीसे ही पैदा होता है, मिट्टीरूप ही रहता है और अन्तमें टूट करके घिसते-घिसते मिट्टी ही बन जाता है; और जैसे सोनेके यावन्मात्र आभूषण सोनेसे ही उत्पन्न होते हैं, सोनारूप ही रहते हैं और अन्तमें सोना ही रह जाते हैं, ऐसे ही यह संसार भगवान्‌से ही उत्पन्न होता है, भगवान्‌में ही रहता है और अन्तमें भगवान्‌में ही लीन हो जाता है। ऐसा जानना ही 'ज्ञान' है। सब कुछ भगवत्स्वरूप है, भगवान्‌के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं—ऐसा अनुभव हो जाना 'विज्ञान' है।

'कृत्स्नस्य जगतः' पदोंमें भगवान्‌ने अपनेको जड़-चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत्‌का प्रभव और प्रलय बताया है। इसमें जड़ (अपरा प्रकृति) का प्रभव और प्रलय बताना तो ठीक है, पर चेतन (परा प्रकृति अर्थात् जीवात्मा) का उत्पत्ति और विनाश कैसे हुआ? क्योंकि वह तो नित्य तत्त्व है—**'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः'** (गीता २ । २४)। जो परिवर्तनशील है, उसको जगत् कहते हैं—**'गच्छतीति जगत्'**। पर यहाँ जगत् शब्द जड़-चेतनात्मक सम्पूर्ण संसारका वाचक है। इसमें जड़-अंश तो परिवर्तनशील है और चेतन-अंश सदा-सर्वथा परिवर्तनरहित तथा निर्विकार है। वह निर्विकार तत्त्व जब जड़के साथ अपना सम्बन्ध मानकर तादात्म्य कर लेता है तो वह जड़के उत्पत्ति-विनाशसे अपना उत्पत्ति-विनाश मान लेता है। इसीसे उसके जन्म-मरण कहे जाते

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हैं। इसी वास्ते भगवान्‌ने अपनेको सम्पूर्ण जगत् अर्थात् अपरा और परा प्रकृतिका प्रभव तथा प्रलय बताया है।

अगर यहाँ 'जगत्' शब्दसे केवल नाशवान्, परिवर्तनशील और विकारी संसार ही लिया जाय, चेतनको नहीं लिया जाय तो बड़ी बाधा लगेगी। भगवान्‌ने **'कृत्स्नस्य जगतः'** पदोंसे अपनेको सम्पूर्ण जगत्‌का कारण बताया है*। अतः सम्पूर्ण जगत्‌के अन्तर्गत स्थावर-जङ्गम, जड़-चेतन सभी लिये जायँगे। अगर केवल जड़को लिया जायगा तो चेतन-भाग छूट जायगा, जिससे 'मैं सम्पूर्ण जगत्‌का कारण हूँ' यह कहना नहीं बन सकेगा और आगे भी बड़ी बाधा लगेगी। इसी अध्यायके तेरहवें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है कि तीनों गुणोंसे मोहित जगत् मेरेको नहीं जानता, तो यहाँ जानना अथवा न जानना चेतनका ही हो सकता है, जड़का जानना अथवा न जानना होता ही नहीं। इस वास्ते 'जगत्' शब्दसे केवल जड़को ही नहीं, चेतनको भी लेना पड़ेगा।

ऐसे ही सोलहवें अध्यायके आठवें श्लोकमें भी आसुरी सम्पदावालोंकी मान्यताके अनुसार 'जगत्' शब्दसे जड़ और चेतन

---

* अपरा प्रकृति और भगवान्‌में तो कार्य-कारणका सम्बन्ध है; क्योंकि अपरा प्रकृति भगवान्‌का कार्य है। परन्तु परा प्रकृति और भगवान्‌में कार्य-कारणका सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि परा प्रकृति यानी जीव भगवान्‌का अंश है, कार्य नहीं। इसलिये अंश-अंशीकी दृष्टिसे ही भगवान् जीवके कारण कहे गये हैं, कार्य-कारणकी दृष्टिसे नहीं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

—दोनों ही लेने पड़ेंगे;* क्योंकि आसुरी सम्पदावाले व्यक्ति सम्पूर्ण शरीरधारी जीवोंको असत्य मानते हैं, केवल जड़को नहीं। इस वास्ते अगर वहाँ 'जगत्' शब्दसे केवल जड़ संसार ही लिया जाय तो जगत्को (जड़ संसारको) असत्य, मिथ्या और अप्रतिष्ठित कहनेवाले अद्वैत-सिद्धान्ती भी आसुरी सम्पदावालोंमें आ जायँगे, जो कि सर्वथा अनुचित है। ऐसे ही आठवें अध्यायके छब्बीसवें श्लोकमें आये 'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः' पदोंमें 'जगत्' शब्द केवल जड़का ही वाचक मानें तो जड़की शुक्ल और कृष्ण गतिका क्या तात्पर्य होगा। गति तो चेतनकी ही होती है। जड़से तादात्म्य करनेके कारण ही चेतनको 'जगत्' नामसे कहा गया है।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि जड़के साथ एकात्मता करनेसे जीव 'जगत्' कहा जाता है, परन्तु जब यह जड़से विमुख होकर चिन्मय-तत्त्वके साथ अपनी एकताका अनुभव कर लेता है तो वह 'योगी' कहा जाता है, जिसका वर्णन गीतामें जगह-जगह आया है।

विशेष बात

जैसे पिता-पुत्रका सम्बन्ध होता है और गुरु-शिष्यका सम्बन्ध होता है तो इनमें पिता पुत्रको अपना मानता है और पुत्र पिताको अपना मानता है, गुरु शिष्यको अपना शिष्य मानता है और

* असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
(गीता १६। ८)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

शिष्य गुरुको अपना गुरु मानता है। इस प्रकार पिता अलग है और पुत्र अलग है, गुरु अलग है और शिष्य अलग है अर्थात् दोनोंकी अलग-अलग सत्ता दीखती है, परन्तु उन दोनोंके सम्बन्धकी एक तीसरी ही सत्ता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे ही परमात्माका अंश जीव प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है तो उस सम्बन्धकी एक स्वतन्त्र सत्ता उत्पन्न हो जाती है, जिसे 'मैं'-पन कहते हैं। उस 'मैं'-पनको मिटानेके लिये प्रकृति और प्रकृतिके कार्यको न तो अपना स्वरूप समझे, न उससे कुछ मिलनेकी इच्छा रखे और न ही अपने लिये कुछ करे। जो कुछ करे, वह सब केवल संसारकी सेवाके लिये ही करता रहे। तात्पर्य है कि जो कुछ प्रकृतिजन्य पदार्थ हैं, उन सबकी संसारके साथ एकता है, अतः उनको केवल संसारकी मानकर संसारकी ही सेवामें लगाता रहे। इससे क्रिया और पदार्थोंका प्रवाह संसारकी तरफ हो जाता है और अपने स्वरूपका बोध हो जाता है। यह कर्मयोग हुआ। ज्ञानयोगमें विवेक-विचारपूर्वक प्रकृतिके कार्य पदार्थों और क्रियाओंसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद करनेपर स्वरूपका बोध हो जाता है। इस प्रकार, जड़के सम्बन्धसे जो अहंता ('मैं'-पन) पैदा हुई थी, उसकी निवृत्ति हो जाती है।

प्रेमका उद्देश्य करके 'मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् ही मेरे हैं तथा मैं शरीर-संसारका नहीं हूँ और शरीर-संसार मेरा नहीं है'—ऐसी धारणा करनेसे भगवत्प्रेम जाग्रत् हो जाता है। साधक संसारसे विमुख होकर केवल भगवत्परायण हो

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जाता है, जिससे संसारका सम्बन्ध स्वतः टूट जाता है और अहंताकी निवृत्ति हो जाती है।

इस प्रकार कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन तीनोंमें-से किसी एकका भी ठीक अनुष्ठान करनेपर जड़तासे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होकर परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है।

सम्बन्ध—

छठे श्लोकमें भगवान्‌ने अपनेको परा और अपरा प्रकृतिरूप सम्पूर्ण जगत्‌का मूल कारण बताया। अब भगवान्‌के सिवाय भी जगत्‌का कोई कारण होगा—इसका अगले श्लोकमें निषेध करते हैं।

श्लोक—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ७॥

अर्थ—

हे धनंजय! मेरेसे बढ़कर (इस जगत्‌का) दूसरा कोई किञ्चिन्मात्र भी कारण नहीं है। जैसे सूतकी मणियाँ सूतके धागेमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही सम्पूर्ण जगत् मेरेमें ही ओत-प्रोत है।

व्याख्या—

'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय'—हे अर्जुन! मेरे सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं है, मैं ही सब संसारका महाकारण हूँ। जैसे वायु आकाशसे ही उत्पन्न होता है, आकाशमें ही रहता है और आकाशमें ही लीन होता है अर्थात् आकाशके

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सिवाय वायुकी कोई पृथक् स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ऐसे ही संसार भगवान्‌से उत्पन्न होता है, भगवान्‌में स्थित रहता है और भगवान्‌में ही लीन हो जाता है अर्थात् भगवान्‌के सिवाय संसारकी कोई पृथक् स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

यहाँ 'परतरम्' कहकर एक-एकका कारण बताया गया है, पर मूल कारणके आगे कोई कारण नहीं है अर्थात् मूल कारणका कोई उत्पादक नहीं है। भगवान् ही मूल कारण हैं। यह संसार अर्थात् देश, काल, व्यक्ति, वस्तु, घटना, परिस्थिति आदि सभी परिवर्तनशील हैं। परन्तु जिसके होने-पनसे इन सबका होनापन दीखता है अर्थात् जिसकी सत्तासे ये सभी 'है' दीखते हैं, वह परमात्मा ही इन सबमें परिपूर्ण हैं। उनके अगाड़ी कुछ है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं और हो सकता भी नहीं।

भगवान्‌ने इसी अध्यायके दूसरे श्लोकमें कहा कि मैं विज्ञान-सहित ज्ञान कहूँगा, जिसको जाननेके बाद कुछ जानना बाकी नहीं रहेगा—'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते' और यहाँ कहते हैं कि मेरे सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं है—'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति'। दोनों ही जगह 'न अन्यत्' कहनेका तात्पर्य है कि जब मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं तो मेरेको जाननेके बाद जानना कैसे बाकी रहेगा? इस वास्ते भगवान्‌ने यहाँ 'मयि सर्व-मिदं प्रोतम्' और आगे 'वासुदेवः सर्वम्' (७। १९) तथा 'सदसच्चाहम्' (९। १९) कहा है।

जो कार्य होता है, वह कारणके सिवाय अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता। वास्तवमें कारण ही कार्यरूपसे

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

दीखता है। इस प्रकार जब कारणका ज्ञान हो जायगा तो कार्य कारणमें लीन हो जायगा अर्थात् कार्यकी अलग सत्ता प्रतीत नहीं होगी और एक परमात्माके सिवाय अन्य कोई कारण नहीं है—ऐसा अनुभव स्वतः हो जायगा।

'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव'—यह सारा संसार सूतमें सूतकी ही मणियोंकी तरह मेरेमें पिरोया हुआ है अर्थात् मैं ही सारे संसारमें अनुस्यूत (व्याप्त) हूँ। जैसे सूतसे बनी मणियोंमें और सूतमें सूतके सिवाय अन्य कुछ नहीं है; ऐसे ही संसारमें मेरे सिवाय अन्य कोई तत्त्व नहीं है। तात्पर्य है कि जैसे सूतमें सूतकी मणियाँ पिरोयी गयी हों तो दीखनेमें मणियाँ और सूत अलग-अलग दीखते हैं, पर वास्तवमें उनमें सूत एक ही होता है। ऐसे ही संसारमें जितने प्राणी हैं, वे सभी नाम, रूप, आकृति आदिसे अलग-अलग दीखते हैं, पर वास्तवमें उनमें व्याप्त रहनेवाला चेतन-तत्त्व एक ही है। वह चेतन-तत्त्व मैं ही हूँ—**'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत'** (गीता १३ । २) अर्थात् मणिरूप अपरा प्रकृति भी मेरा स्वरूप है और धागारूप परा प्रकृति भी मैं ही हूँ। दोनोंमें मैं ही परिपूर्ण हूँ। व्याप्त हूँ। साधक जब संसारको संसारबुद्धिसे देखता है तो उसको संसारमें परिपूर्णरूपसे व्याप्त परमात्मा नहीं दीखते। जब उसको परमात्मतत्त्वका वास्तविक बोध हो जाता है, तब व्याप्य-व्यापक भाव मिटकर एक परमात्मतत्त्व ही दीखता है। इस तत्त्वको बतानेके लिये ही भगवान्ने यहाँ कारण-रूपसे अपनी व्यापकताका वर्णन किया है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सम्बन्ध—

जो कुछ कार्य दीखता है, उस सबके मूलमें परमात्मा ही हैं—यह ज्ञान करानेके लिये अब भगवान् आठवेंसे बारहवें श्लोकतकका प्रकरण आरम्भ करते हैं ।

श्लोक—

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

अर्थ—

हे कुन्तीनन्दन ! जलोंमें रस मैं हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रभा (प्रकाश) मैं हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें प्रणव (ओंकार) मैं हूँ, आकाशमें शब्द और मनुष्योंमें पुरुषार्थ मैं हूँ ।

व्याख्या—

[जैसे साधारण दृष्टिसे लोगोंने रुपयोंको ही सर्व श्रेष्ठ मान रखा है तो रुपये पैदा करने और उनका संग्रह करनेमें लोभी आदमीकी स्वाभाविक रुचि हो जाती है । ऐसे ही देखने, सुनने, मानने और समझनेमें जो कुछ जगत् आता है, उसका कारण भगवान् हैं (७ । ६); भगवान्‌के सिवाय उसकी स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं—ऐसा माननेसे भगवान्‌में स्वाभाविक रुचि हो जाती है । फिर स्वाभाविक ही उनका भजन होता है । यही बात दसवें अध्यायके आठवें श्लोकमें कही है कि 'मैं सम्पूर्णका कारण हूँ, मेरेसे ही संसारकी उत्पत्ति होती है—ऐसा समझकर बुद्धिमान् मेरा भजन

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करते हैं*। ऐसे ही अठारहवें अध्यायके छियालीसवें श्लोकमें कहा है कि 'जिस परमात्मासे सम्पूर्ण जगत्‌की प्रवृत्ति होती है और जिससे सारा संसार व्याप्त है, उस परमात्माका अपने कर्मोंके द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त कर लेता है'†। इसी सिद्धान्तको बतानेके लिये यह प्रकरण आया है।]

'रसोऽहमप्सु कौन्तेय'—हे कुन्तीनन्दन! जलोंमें मैं 'रस' हूँ। जल रस-तन्मात्रासे पैदा होता है; रस-तन्मात्रामें रहता है और रस-तन्मात्रामें ही लीन होता है। जलमेंसे अगर 'रस' निकाल दिया जाय तो जलतत्त्व कुछ नहीं रहेगा। अतः रस ही जलरूपसे है। वह रस मैं हूँ।

'प्रभास्मि शशिसूर्ययोः'—चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश करनेकी जो एक विलक्षण शक्ति 'प्रभा' है‡, वह मेरा स्वरूप है। प्रभा रूप-तन्मात्रासे उत्पन्न होती है, रूप-तन्मात्रामें रहती है और

---

* अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥
(गीता १०। ८)

† यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(गीता १८। ४६)

‡ रूप-तन्मात्रामें दो शक्तियाँ होती हैं—एक 'प्रकाशिका' अर्थात् प्रकाश करनेवाली और एक 'दाहिका' अर्थात् जलानेवाली। प्रकाशिका शक्तिको 'प्रभा' कहते हैं और दाहिका शक्तिको 'तेज' कहते हैं। 'प्रकाशिका शक्ति' दाहिका शक्तिके बिना भी रह सकती है (जैसे—मणि, चन्द्र

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अन्तमें रूप-तन्मात्रामें ही लीन हो जाती है। अगर चन्द्रमा और सूर्यसे प्रभा निकाल दी जाय तो चन्द्रमा और सूर्य निस्तत्त्व हो जायँगे। तात्पर्य है कि केवल प्रभा ही चन्द्र और सूर्यरूपसे प्रकट हो रही है। भगवान् कहते हैं कि वह प्रभा भी मैं ही हूँ।

'प्रणवः सर्ववेदेषु'—सम्पूर्ण वेदोंमें प्रणव (ओंकार) मेरा स्वरूप है। कारण कि सबसे पहले प्रणव प्रकट हुआ। प्रणवसे त्रिपदा गायत्री और त्रिपदा गायत्रीसे वेदत्रयी प्रकट हुई है। इस वास्ते वेदोंमें सार 'प्रणव' ही रहा। अगर वेदोंमेंसे प्रणव निकाल दिया जाय तो वेद वेदरूपसे नहीं रहेंगे। प्रणव ही वेद और गायत्रीरूपसे प्रकट हो रहा है। वह प्रणव मैं ही हूँ।

'शब्दः खे'—सब जगह यह जो पोलाहट दीखती है, यह आकाश है। आकाश शब्द-तन्मात्रासे पैदा होता है, शब्द-तन्मात्रामें ही रहता है और अन्तमें शब्द-तन्मात्रामें ही लीन हो जाता है। इस वास्ते शब्द-तन्मात्रा ही आकाशरूपसे प्रकट हो रही है। शब्द-तन्मात्राके बिना आकाश कुछ नहीं है। वह शब्द मैं ही हूँ!

आदिमें), पर 'दाहिका शक्ति' प्रकाशिका शक्तिके बिना नहीं रह सकती। यहाँ 'प्रभास्मि शशिसूर्ययोः' पदोंमें चन्द्रमा और सूर्यकी 'प्रकाशिका शक्ति' की प्रधानताको लेकर 'प्रभा' शब्दका प्रयोग हुआ है और आगे इसी अध्यायके नवें श्लोकमें 'तेजश्चास्मि विभावसौ' पदोंमें अग्निकी 'दाहिका शक्ति' की प्रधानताको लेकर 'तेज' शब्दका प्रयोग हुआ है।

सूर्य और अग्निमें प्रकाशिका और दाहिका—दोनों शक्तियाँ हैं। चन्द्रमामें प्रकाशिका शक्ति तो है, पर उसमें दाहिका शक्ति तिरस्कृत होकर 'सौम्य शक्ति' प्रकट हो गयी है, जो कि शीतलता देनेवाली है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'पौरुषं नृषु'—मनुष्योंमें सार चीज जो पुरुषार्थ है, वह मेरा स्वरूप है। वास्तवमें नित्यप्राप्त परमात्मतत्त्वका अनुभव करना ही मनुष्योंमें असली पुरुषार्थ है। परन्तु मनुष्योंने अप्राप्तको प्राप्त करनेमें ही अपना पुरुषार्थ मान रखा हैं; जैसे—निर्धन आदमी धनकी प्राप्तिमें पुरुषार्थ मानता है, अपढ़ आदमी पढ़ लेनेमें पुरुषार्थ मानता है, अप्रसिद्ध आदमी अपना नाम विख्यात कर लेनेमें अपना पुरुषार्थ मानता है, इत्यादि। निष्कर्ष यह निकला कि जो अभी नहीं है, उसकी प्राप्तिमें ही मनुष्य अपना पुरुषार्थ मानना है। पर यह पुरुषार्थ वास्तवमें पुरुषार्थ नहीं है। कारण कि जो पहले नहीं थे, प्राप्तिके समय भी जिनका निरन्तर सम्बन्ध-विच्छेद हो रहा है और अन्तमें जो 'नहीं' में भरती हो जायँगे, ऐसे पदार्थोंको प्राप्त करना पुरुषार्थ नहीं है।। परमात्मा पहले भी मौजूद थे, अब भी मौजूद हैं और आगे भी सदा मौजूद रहेंगे; क्योंकि उनका कभी अभाव नहीं होता। इस वास्ते परमात्माको उत्साहपूर्वक प्राप्त करनेका जो प्रयत्न है, वही पुरुषार्थ है। उसकी प्राप्ति करनेमें ही मनुष्योंकी मनुष्यता है। उसके बिना मनुष्य कुछ नहीं है अर्थात् निरर्थक है।

श्लोक—

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

अर्थ—

पृथ्वीमें पवित्र गन्ध मैं हूँ, अग्निमें तेज मैं हूँ, सम्पूर्ण प्राणियोंमें जीवनी-शक्ति मैं हूँ और तपस्वियोंमें तपस्या मैं हूँ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

व्याख्या—

'पुण्यो गन्धः पृथिव्याम्'—गन्ध-तन्मात्रासे पृथ्वी उत्पन्न होती है, गन्धतन्मात्रारूपसे रहती है और गन्ध-तन्मात्रामें ही लीन होती है। तात्पर्य है कि गन्धके बिना पृथ्वी कुछ नहीं है। भगवान् कहते हैं पृथ्वीमें वह पवित्र गन्ध मैं हूँ।

यहाँ गन्धके साथ 'पुण्यः' विशेषण देनेका तात्पर्य है कि गन्धमात्र पृथ्वीमें रहती है। उसमें पुण्य अर्थात् पवित्र गन्ध तो पृथ्वीमें स्वाभाविक रहती है, पर दुर्गन्ध किसी विकृतिसे प्रकट होती है।

'तेजश्चास्मि विभावसौ'—तेज रूप-तन्मात्रासे प्रकट होता है, उसीमें रहता है और अन्तमें उसीमें लीन हो जाता है। अग्निमें तेज ही तत्त्व है। तेजके बिना अग्नि निस्तत्त्व है, कुछ नहीं है। वह तेज मैं ही हूँ।

'जीवनं सर्वभूतेषु'—सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक जीवनी-शक्ति है, प्राण-शक्ति है, जिससे सब जी रहे हैं। उस प्राणशक्तिके कारण गाढ़ नींदमें सोता हुआ आदमी भी मुर्दे-से विलक्षण दीखता है। प्राणशक्तिसे वे प्राणी कहलाते हैं। प्राणशक्तिके बिना उनमें प्राणिपना कुछ नहीं है। वह प्राणशक्ति मैं ही हूँ।

'तपश्चास्मि तपस्विषु'—द्वन्द्वसहिष्णुताको तप कहते हैं। परन्तु वास्तवमें परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये कितने ही कष्ट आयें, उनमें निर्विकार रहना ही असली तप है। यही तपस्वियोंमें तप है, इसीसे वे तपस्वी कहलाते हैं और इसी तपको भगवान् अपना स्वरूप

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Sarayu Trust. Funding IKS MoE-Gra

बताते हैं। अगर तपस्वियोंमेंसे ऐसा तप निकाल दिया जाय तो वे तपस्वी नहीं रहेंगे।

श्लोक—

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥ १०॥

अर्थ—

हे पृथानन्दन! सम्पूर्ण प्राणियोंका अनादि बीज मेरेको जान। बुद्धिमानोंमें बुद्धि और तेजस्वियोंमें तेज मैं हूँ।

व्याख्या—

'बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि* पार्थ सनातनम्'—हे पार्थ! सम्पूर्ण प्राणियोंका सनातन (अविनाशी) बीज मैं हूँ अर्थात् सबका कारण मैं ही हूँ। सम्पूर्ण प्राणी बीजरूप मेरेसे उत्पन्न होते हैं, बीजमें ही रहते हैं और अन्तमें बीजमें ही लीन होते हैं। इस बीजके बिना प्राणीकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

जितने बीज होते हैं, वे सब वृक्षसे उत्पन्न होते हैं और अगाड़ी वृक्ष पैदा करके नष्ट हो जाते हैं। परन्तु यहाँ जिस बीजका वर्णन है, वह बीज 'सनातन' है अर्थात् आदि-अन्तसे रहित (अनादि एवं अनन्त) है। इसीको नवें अध्यायके अठारहवें श्लोकमें 'अव्यय बीज' कहा गया है। यह चेतन-तत्त्व अव्यय अर्थात् अविनाशी है। यह

---

* इसी अध्यायके छठे श्लोकमें भगवान्‌ने 'उपधारय' कहा और यहाँ 'विद्धि' कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मात्र संसारमें सार-रूपसे मैं ही हूँ—इस बातको समझो और समझकर धारण करो। समझकर धारण करनेसे असली प्रेम जाग्रत् हो जाता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

स्वयं विकार-रहित रहते हुए ही सम्पूर्ण जगत्का उत्पादक, आश्रय और प्रकाशक है तथा जगत्का कारण है।

गीतामें 'बीज' शब्द कहीं भगवान् और कहीं जीवात्मा—दोनोंके लिये आया है। यहाँ जो 'बीज' शब्द आया है, वह भगवान्का वाचक है; क्योंकि यहाँ कारणरूपसे विभूतियोंका वर्णन है। दसवें अध्यायके उन्तालीसवें श्लोकमें विभूतिरूपसे आया 'बीज' शब्द भी भगवान्का ही वाचक है; क्योंकि वहाँ उनको सम्पूर्ण प्राणियोंका कारण कहा गया है। नवें अध्यायके अठारहवें श्लोकमें 'बीज' शब्द भगवान्के लिये आया है; क्योंकि उसी अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें 'सदसच्चाहमर्जुन' पदमें कहा गया है कि कार्य और कारण सब मैं ही हूँ। सब कुछ भगवान् ही होनेसे 'बीज' शब्द भगवान्का वाचक है। चौदहवें अध्यायके चौथे श्लोकमें 'अहं बीजप्रदः पिता' 'मैं बीज प्रदान करनेवाला पिता हूँ'—ऐसा होनेसे वहाँ 'बीज' शब्द जीवात्माका वाचक है। 'बीज' शब्द जीवात्माका वाचक तभी होता है, जब यह जड़के साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, नहीं तो भगवान्का स्वरूप ही है।

'बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि'—बुद्धिमानोंमें बुद्धि मैं हूँ। बुद्धिके कारण ही वे बुद्धिमान् कहलाते हैं। अगर उनमें बुद्धि न रहे तो उनकी बुद्धिमान् संज्ञा ही नहीं रहेगी।

'तेजस्तेजस्विनामहम्'—तेजस्वियोंमें तेज मैं हूँ। यह तेज दैवी-सम्पत्तिका एक गुण है। तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषोंमें एक विशेष तेज-शक्ति रहती है, जिसके प्रभावसे दुर्गुण-दुराचारी मनुष्य

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भी सद्गुण-सदाचारी बन जाते हैं। वह तेज भगवान्‌का ही स्वरूप है।

विशेष बात

भगवान् ही सम्पूर्ण संसारका कारण हैं, संसारके रहते हुए भी वे सबमें परिपूर्ण हैं और सब संसारके मिटनेपर भी वे रहते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि सब कुछ भगवान् ही हैं। इसके लिये उपनिषदोंमें सोना, मिट्टी और लोहेका दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे सोनेसे बने हुए सब गहने सोना ही हैं, मिट्टीसे बने हुए सब बर्तन मिट्टी ही हैं और लोहेसे बने हुए सब अस्त्र-शस्त्र लोहा ही हैं, ऐसे ही भगवान्‌से उत्पन्न हुआ सब संसार भगवान् ही है। परन्तु गीतामें भगवान्‌ने बीजका दृष्टान्त दिया है कि सम्पूर्ण संसार-का बीज मैं हूँ। बीज वृक्षसे पैदा होता है और वृक्षको पैदा करके स्वयं नष्ट हो जाता है अर्थात् बीजसे अंकुर निकल आता है, अंकुरसे वृक्ष हो जाता है और बीज स्वयं मिट जाता है। परन्तु भगवान्‌ने अपनेको संसारमात्रका बीज कहते हुए भी यह एक विलक्षण बात बतायी कि मैं अनादि बीज हूँ, पैदा हुआ बीज नहीं हूँ—'बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्' (७ । १०), और मैं अविनाशी बीज हूँ—'बीजं अव्ययम्' (९ । १८)। अविनाशी बीज कहनेका मतलब यह है कि संसार मेरेसे पैदा हो जाता है, पर मैं मिटता नहीं हूँ, जैसा-का-तैसा ही रहता हूँ।

सोना, मिट्टी और लोहेके दृष्टान्तमें गहनोंमें सोना दीखता है, बर्तनोंमें मिट्टी दीखती है और अस्त्र-शस्त्रोंमें लोहा दीखता है,

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पर संसारमें परमात्मा दीखते नहीं। अगर बीजका दृष्टान्त लें तो वृक्षमें बीज नहीं दीखता। जब वृक्षमें बीज आता है, तब पता लगता है कि इस वृक्षमें ऐसा बीज है, जिससे यह वृक्ष पैदा हुआ है। सम्पूर्ण वृक्ष बीजसे ही निकलता है और बीजमें ही समाप्त हो जाता है। वृक्षका आरम्भ बीजसे होता है और अन्त भी बीजमें ही होता है अर्थात् वह वृक्ष चाहे सौ वर्षतक रहे, पर उसकी अन्तिम परिणति बीजमें ही होगी, बीजके सिवाय और क्या होगा? ऐसे ही भगवान् संसारके बीज हैं अर्थात् भगवान्‌से ही संसार उत्पन्न होता है और भगवान्‌में ही लीन हो जाता है। अन्तमें एक भगवान् ही बाकी रहते हैं—**'शिष्यते शेषसंज्ञः'** (श्रीमद्भा० १० । ३ । २५)।

वृक्ष दीखते हुए भी 'यह बीज ही है'—ऐसा जो जानते हैं, वे वृक्षको ठीक-ठीक जानते हैं, और जो बीजको न देखकर केवल वृक्षको देखते हैं, वे वृक्षके तत्त्वको नहीं जानते। भगवान् यहाँ **'बीजं मां सर्वभूतानाम्'** कहकर सबको यह ज्ञान कराते हैं कि तुम्हारेको जितना यह संसार दीखता है, इसके पहले मैं ही था, मैं एक ही प्रजारूपसे बहुत रूपोंमें प्रकट हुआ हूँ—**'बहु स्यां प्रजायेयं'** (छान्दोग्य० ६ । २ । ३) और इनके समाप्त होनेपर मैं ही रह जाता हूँ। तात्पर्य है कि पहले मैं ही था और पीछे मैं ही रहता हूँ तो बीचमें भी मैं ही हूँ।

यह संसार पाञ्चभौतिक भी उन्हींको दीखता है, जो विचार करते है, नहीं तो यह पाञ्चभौतिक भी नहीं दीखता। जैसे कोई कह दे कि ये अपने शरीर सब-के-सब पार्थिव (पृथ्वीसे पैदा होनेवाले) हैं, इसलिये इनमें मिट्टीकी प्रधानता है तो दूसरा कहेगा कि ये मिट्टी

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कैसे हैं ? मिट्टीसे तो हाथ धोते हैं, मिट्टी तो रेता होती है, इस वास्ते ये शरीर मिट्टी नहीं हैं। इस तरह शरीर मिट्टी होता हुआ भी उसको मिट्टी नहीं दीखता। परन्तु यह जितना संसार दीखता है, इसको जलाकर राख कर दिया जाय तो अन्तमें एक मिट्टी ही हो जाता है।

विचार करें कि इन शरीरोंके मूलमें क्या है ? माँ-बापमें जो रज-वीर्यरूप अंश होता है, जिससे कि शरीर बनता है, वह अंश अन्नसे पैदा होता है। अन्न मिट्टीसे पैदा होता है। अतः ये शरीर मिट्टीसे ही पैदा होते हैं और अन्तमें मिट्टीमें ही लीन हो जाते हैं। अन्तमें शरीरकी तीन गतियाँ होती हैं—चाहे जमीनमें गाड़ दिया जाय, चाहे जला दिया जाय और चाहे पशु-पक्षी खा जायँ। तीनों ही उपायोंसे वह अन्तमें मिट्टी हो जाता है। इस तरह पहले और आखिरमें मिट्टी होनेसे बीचमें भी यह शरीर या संसार मिट्टी ही है। परन्तु बीचमें यह शरीर या संसार देखनेमें मिट्टी नहीं दीखता। विचार करनेसे ही मिट्टी दीखता है, आँखोंसे नहीं दीखता। इसी तरहसे यह संसार विचार करनेसे परमात्मस्वरूप दीखता है। विचार करें तो जब भगवान्ने यह संसार रचा तो कहींसे कोई सामान नहीं मँगवाया, जिससे संसारको बनाया हो और बनानेवाला भी दूसरा नहीं हुआ है। आप ही संसारको बनानेवाले हैं और आप ही संसार बन गये। शरीरोंकी रचना करके आप ही उनमें प्रविष्ट हो गये—'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'। इन शरीरोंमें जीवरूपसे वे ही परमात्मा हैं। यह संसार भी परमात्माका स्वरूप ही है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

श्लोक—

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

अर्थ—

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! बलवालोंमें काम और रागसे रहित बल मैं हूँ । प्राणियोंमें धर्मसे अविरुद्ध (धर्मयुक्त) काम मैं हूँ ।

व्याख्या—

'बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्'—कठिन-से-कठिन काम करते हुए भी भीतर एक सांसारिक कामना-आसक्तिरहित शुद्ध, निर्मल हिम्मत रहती है, काम करनेका उत्साह रहता है । काम पूरा होनेपर भी 'मेरा कार्य शास्त्र और धर्मके अनुकूल है तथा लोक-मर्यादाके अनुसार सन्तजनानुमोदित है'—ऐसे विचारसे मनमें जो उत्साह रहता है, उसका नाम 'बल' है । वह बल भगवान्‌का ही स्वरूप है । इस वास्ते यह बल ग्राह्य है ।

गीतामें भगवान्‌ने खुद ही बलकी व्याख्या कर दी है । सत्रहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें 'कामरागबलान्विताः' पदमें आया बल कामना और आसक्तिसे युक्त होनेसे दुराग्रह और हठका वाचक है । अतः यह बल भगवान्‌का स्वरूप नहीं है, प्रत्युत आसुरी-सम्पत्ति होनेसे त्याज्य है । ऐसे ही 'सिद्धोऽहं बलवान्सुखी' (१६ । १४) और 'अहंकारं बलं दर्पम्' (१६ । १८, १८ । ५३) पदोंमें आया बल भी त्याज्य है । छठे अध्यायके चौंतीसवें श्लोकमें 'बलवद्दृढम्' पदमें आया बल शब्द मनका विशेषण है । वह बल भी आसुरी-सम्पत्तिका ही है; क्योंकि उसमें कामना और आसक्ति है । परन्तु

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यहाँ (७ । ११ में) जो बल आया है, वह कामना और आसक्तिसे रहित है, इस वास्ते यह सात्त्विक उत्साहका वाचक है और ग्राह्य है। सत्रहवें अध्यायके आठवें श्लोकमें 'आयुःसत्त्वबलारोग्य' ' पदमें आया बल शब्द भी इसी सात्त्विक बलका वाचक है।

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ'—हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! धर्मसे अविरुद्ध अर्थात् धर्मयुक्त* 'काम'† मेरा स्वरूप है। कारण कि शास्त्र और लोक-मर्यादाके अनुसार शुभ-भावसे केवल सन्तान-उत्पत्तिके लिये जो काम होता है, वह काम प्राणीके अधीन होता है। परन्तु आसक्ति, कामना, सुखभोग आदिके लिये जो काम होता है, उस काममें प्राणी पराधीन हो जाता है और उसके वशमें होकर वह न करनेलायक शास्त्रविरुद्ध काममें प्रवृत्त हो जाता है। शास्त्रविरुद्ध काम पतनका तथा सम्पूर्ण पापों और दुःखोंका हेतु होता है।

श्लोक—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥ १२॥

---

* वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्॥
(मनुस्मृति २ । १२)

† तीसरे अध्यायके सैंतीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने जिस कामको सम्पूर्ण पापोंका हेतु बताया है, उस कामका वाचक यहाँ 'काम' शब्द नहीं है। यहाँ 'काम' शब्द गृहस्थधर्मका पालन करनेका वाचक है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ—

(और तो क्या कहें) जितने ही सात्त्विक, राजस और तामस भाव हैं, वे सब मेरेसे ही होते हैं—ऐसा समझो। पर मैं उनमें और वे मेरेमें नहीं हैं*।

व्याख्या—

'ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये'—ये जो सात्त्विक, राजस और तामस भाव (प्राकृत पदार्थ और क्रिया) होते हैं, वे भी मेरेसे ही उत्पन्न होते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सृष्टिमात्रमें जो कुछ हो रहा है, मूलमें सबका आश्रय, आधार और प्रकाशक परमात्मा ही हैं अर्थात् सब परमात्मासे ही सत्ता-स्फूर्ति पाते हैं।

सात्त्विक, राजस और तामस भाव भगवान्‌से ही होते हैं, इस वास्ते इनमें जो कुछ विलक्षणता दीखती है, वह सब भगवान्‌की ही है; अतः मनुष्यकी दृष्टि भगवान्‌की तरफ ही जानी चाहिये, सात्त्विक आदि भावोंकी तरफ नहीं। यदि उसकी दृष्टि भगवान्‌की तरफ जायगी तो वह मुक्त हो जायगा और यदि उसकी दृष्टि सात्त्विक आदि भावोंकी तरफ जायगी तो वह बँध जायगा।

सात्त्विक, राजस और तामस—इन भावोंके (प्राकृत पदार्थ और क्रियामात्रके) अतिरिक्त कोई भाव है ही नहीं। ये सभी भगवत्स्वरूप ही हैं। यहाँ शङ्का होती है कि अगर ये सभी भगवत्स्वरूप ही हैं तो

* विभूतियोंका वर्णन भगवान्‌ने गीतामें सातवें, नवें, दसवें और पन्द्रहवें—इन चार अध्यायोंमें किया है। यहाँ सातवें अध्यायमें भगवान्‌ने कारणरूपसे सत्रह विभूतियोंका वर्णन किया है, जिसमें कारणरूपसे

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हमलोग जो कुछ करें, वह सब भगवत्स्वरूप ही होगा, फिर ऐसा करना चाहिये और ऐसा नहीं करना चाहिये—यह विधि-निषेध कहाँ रहा ? इसका समाधान यह है कि मनुष्यमात्र सुख चाहता है, दुःख नहीं चाहता। सुखदायी परिस्थिति विहित-कर्मोंका फल है और दुःखदायी परिस्थिति निषिद्ध-कर्मोंका फल है। इसलिये कहा जाता है कि विहित-कर्म करो और निषिद्ध-कर्म मत करो। अगर निषिद्धको भगवत्स्वरूप मानकर करोगे तो भगवान् दुःखों और नरकोंके रूपमें प्रकट होंगे। भगवान्ने कहा है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (४। ११) अर्थात् जो मेरी जैसी उपासना करते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ। जो अशुभ-कर्मोंकी उपासना करता है, उसके सामने मैं अशुभरूपसे ही प्रकट होऊँगा; क्योंकि दुःख और नरक भी तो परमात्माके ही स्वरूप हैं।

अपनेको ही इस जगत्का प्रभव और प्रलय बताया है (७। ६)। नवें अध्यायमें भगवान्ने कार्य-कारणरूपसे पैंतीस विभूतियोंका वर्णन किया, जिसमें सत् और असत् अर्थात् कार्य और कारण अपनेको ही बताया है (९। १९)। दसवें अध्यायके चौथे-पाँचवें श्लोकोंमें भगवान्ने प्राणियोंके भाव-रूपमें अपनी बीस विभूतियोंका और छठे श्लोकमें व्यक्ति-रूपमें अपनी पचीस विभूतियोंका वर्णन किया। फिर अर्जुनके 'मैं आपका चिन्तन कहाँ-कहाँ करूँ ?' (१०। १७), इस प्रश्नके उत्तरमें भगवान्ने बीसवेंसे अड़तीसवें श्लोकतक मुख्य और अधिपतिरूपसे तथा उन्तालीसवेंसे चालीसवें श्लोकतक साररूपसे अपनी विभूतियोंका वर्णन किया। पन्द्रहवें अध्यायमें भगवान्ने प्रभावरूपसे तेरह विभूतियोंका वर्णन किया कि सभी विभूतियोंमें मेरा ही प्रभाव काम कर रहा है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जहाँ करने और न करनेकी बात होती है, वहीं विधि और निषेध लागू होता है। अतः वहाँ विहित ही करना चाहिये, निषिद्ध नहीं करना चाहिये। परन्तु जहाँ मानने और जाननेकी बात होती है, वहाँ परमात्माको ही 'मानना' चाहिये और अपनेको अथवा संसारको 'जानना' चाहिये।

जहाँ माननेकी बात है, वहाँ परमात्माको ही मानकर उनके मिलनेकी उत्कण्ठा बढ़ानी चाहिये। उनको प्राप्त और प्रसन्न करनेके लिये उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये तथा उनकी आज्ञा और सिद्धान्तोंके विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिये। भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध कार्य करेंगे तो उनको कैसे प्रसन्नता होगी? और विरुद्ध कार्य करनेवालेको कैसे उनकी प्राप्ति होगी? जैसे—किसी मनुष्यके मनके विरुद्ध काम करनेसे वह कैसे राजी होगा और कैसे प्रेमसे मिलेगा?

जहाँ जाननेकी बात है, वहाँ संसारको जानना चाहिये। जो उत्पत्ति-विनाशशील है, सदा साथ रहनेवाला नहीं है, वह अपना नहीं है और अपने लिये भी नहीं है—ऐसा जानकर उसका त्याग करता चला जाय। उसमें कामना, ममता, आसक्ति नहीं करनी चाहिये। उसका महत्त्व हृदयसे उठा देना चाहिये। इस तरहसे चलते-चलते सत्-तत्त्व प्रत्यक्ष हो जायगा और जानना पूर्ण हो जायगा। असत् (नाशवान्) वस्तु हमारे साथ रहनेवाली नहीं है—ऐसा समझनेपर भी समय-समयपर उसको महत्त्व देते रहेंगे तो वास्तविकता (सत्-वस्तु) की प्राप्ति नहीं होगी।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'मत्त एवेति तान्विद्धि'—उन सबको तू मेरेसे ही उत्पन्न होनेवाला समझ अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ। कार्य और कारण—ये दोनों भिन्न दीखते हुए भी कार्य कारणसे अपनी भिन्न एवं स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता। इस वास्ते कार्य कारणरूप ही होता है। जैसे, सोनेसे गहने पैदा होते हैं तो वे सोनेसे रहित नहीं रहते, अर्थात् वे सोना ही होते हैं। ऐसे ही परमात्मासे पैदा होनेवाली अनन्त सृष्टि परमात्मासे भिन्न स्वतन्त्र सत्ता नहीं रख सकती।

'मत्त एव' कहनेका तात्पर्य है कि अपरा और परा प्रकृति मेरा स्वभाव है, इस वास्ते कोई उनको मेरेसे भिन्न सिद्ध नहीं कर सकता। सातवें अध्यायके परिशिष्टरूप नवें अध्यायमें भगवान्‌ने कहा है कि 'कल्पके आदिमें प्रकृतिको वशमें करके मैं बार-बार सृष्टिकी रचना करता हूँ' (९।८) और आगे कहते हैं कि 'मेरी अध्यक्षतामें प्रकृति चराचर संसारको रचती है' (९।१०)— ये दोनों बातें एक ही हुईं। चाहे प्रकृतिको लेकर भगवान् रचना करें, चाहे भगवान्‌की अध्यक्षतामें प्रकृति रचना करे—इन दोनोंका तात्पर्य एक ही है। भगवान् रचना करते हैं तो प्रकृतिको लेकर ही करते हैं तो मुख्यता भगवान्‌की ही हुई और प्रकृति भगवान्‌की अध्यक्षतामें रचना करती है तो भी मुख्यता भगवान्‌की ही हुई। दोनों बातोंमें मुख्यता भगवान्‌की ही रही। इसी बातको यहाँ कहा है कि 'मैं सम्पूर्ण जगत्‌का प्रभव और प्रलय हूँ (७।६)।' और इसका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि 'सात्त्विक, राजस और तामस—ये भाव मेरेसे ही होते हैं।'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भगवान्‌ने विज्ञानसहित ज्ञान कहनेकी प्रतिज्ञा करके जाननेवाले-की दुर्लभता बताते हुए जो प्रकरण आरम्भ किया, उसमें अपरा और परा प्रकृतिका कथन किया। अपरा और परा प्रकृतियोंको सम्पूर्ण प्राणियोंका कारण बताया; क्योंकि इनके संयोगसे ही सम्पूर्ण प्राणी पैदा होते हैं। फिर अपनेको इन अपरा और पराका कारण बताया—'मत्तः परतरं नान्यत्' (७ । ७)। यही बात विभूतियोंके वर्णनका उपसंहार करते हुए यहाँ कही है कि सात्त्विक, राजस और तामस भावोंको मेरेसे ही होनेवाला जान।

'न त्वहं तेषु ते मयि'—मैं उनमें नहीं हूँ और वे मेरेमें नहीं हैं। तात्पर्य है कि उन गुणोंकी मेरे सिवाय कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है अर्थात् मैं-ही-मैं हूँ; मेरे सिवाय और कुछ है ही नहीं। वे सात्त्विक, राजस और तामस जितने भी प्राकृत पदार्थ और क्रियाएँ हैं, वे सब-के-सब उत्पन्न और नष्ट होते हैं। परन्तु मैं उत्पन्न भी नहीं होता और नष्ट भी नहीं होता। अगर मैं उनमें होता तो उनका नाश होनेपर मेरा भी नाश हो जाता; परन्तु मेरा कभी नाश नहीं होता। इस वास्ते मैं उनमें नहीं हूँ। अगर वे मेरेमें होते तो मैं जैसा अविनाशी हूँ, वैसे वे भी अविनाशी होते; परन्तु वे तो नष्ट होते हैं और मैं रहता हूँ, इस वास्ते वे मेरेमें नहीं हैं।

जैसे, आकाशसे ही बादल उत्पन्न होते हैं, आकाशमें ही रहते हैं और आकाशमें ही लीन होते हैं; परन्तु आकाश ज्यों-का-त्यों निर्विकार रहता है। न आकाशमें बादल रहते हैं और न बादलोंमें आकाश रहता है। ऐसे ही आठवें श्लोकसे लेकर यहाँतक

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जितनी (सत्रह) विभूतियाँ बतायी गयी हैं, वे सब मेरेसे ही उत्पन्न होती हैं, मेरेमें ही रहती हैं और मेरेमें ही लीन हो जाती हैं। परन्तु वे मेरेमें नहीं हैं और मैं उनमें नहीं हूँ। मेरे सिवाय उनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इस दृष्टिसे सब कुछ मैं ही हूँ। तात्पर्य यह हुआ कि भगवान्‌के सिवाय जितने सात्त्विक, राजस और तामस भाव अर्थात् प्राकृत पदार्थ और क्रियाएँ दिखायी देती हैं, उनकी सत्ता मानकर और उनको महत्ता देकर ये प्राणी उनमें फँस रहे हैं। उन प्राणियोंका लक्ष्य इधर कराते हैं कि इन सब पदार्थों और क्रियाओंमें सत्ता और महत्ता मेरी (भगवान्‌की) ही है।

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाले तरह-तरहके जितने भाव अर्थात् प्राकृत पदार्थ और क्रियाएँ हैं, वे सब-के-सब भगवान्‌की शक्ति प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु प्रकृति भगवान्‌से अभिन्न होनेके कारण इन गुणोंको भगवान्‌ने 'मत्त एव' 'मेरेसे ही होते हैं'—ऐसा कहा है। तात्पर्य यह कि प्रकृति भगवान्‌से अभिन्न होनेसे ये सभी भाव भगवान्‌से उत्पन्न होते हैं और भगवान्‌में ही लीन हो जाते हैं, पर परा प्रकृति (जीवात्मा) ने इनके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया अर्थात् इनको अपना और अपने लिये मान लिया—यही परा प्रकृति-द्वारा जगत्‌को धारण करना है। इसीसे वह जन्मता-मरता रहता है। अब उस बन्धनका निवारण करनेके लिये यहाँ कहते हैं कि सात्त्विक, राजस और तामस—ये सब भाव मेरेसे ही होते हैं। इसी रीतिसे दसवें अध्यायमें कहा है—'भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः' (१० । ५) अर्थात् भूतोंके ये अलग-अलग

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रकारवाले (बीस) भाव मेरेसे ही उत्पन्न होते हैं; और 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते' (१० । ८) अर्थात् सबका प्रभव मैं हूँ और सब मेरेसे प्रवृत्त होते हैं। पन्द्रहवें अध्यायमें, जो कि भक्ति-प्रधान मध्यम षट्कसे मिलता-जुलता है, यही कहा है कि स्मृति, ज्ञान आदि सब मेरेसे ही उत्पन्न होते हैं—'मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च' (१५ । १५)। जब सब कुछ परमात्मासे ही उत्पन्न होता है तो प्राणीके साथ उन गुणोंका कोई सम्बन्ध नहीं और अपने साथ सम्बन्ध न माननेसे यह प्राणी बँधता नहीं अर्थात् वे गुण उसके लिये जन्म-मरणके कारण नहीं बनते।

गीतामें जहाँ भक्तिका वर्णन है, वहाँ भगवान् कहते हैं कि सब कुछ मैं ही हूँ—'सदसच्चाहमर्जुन' (९ । १९) और अर्जुन भी भगवान्‌के लिये कहते हैं कि आप सत् और असत् भी हैं तथा उनसे पर भी हैं—'सदसत्तत्परं यत्' (११ । ३७)। ज्ञानी (प्रेमी) भक्तके लिये भी भगवान् कहते हैं कि उसकी दृष्टिमें सब कुछ वासुदेव ही है—'वासुदेवः सर्वम्' (७ । १९) कारण यह है कि भक्तिमें श्रद्धा और मान्यताकी मुख्यता होती है तथा भगवान्‌में दृढ़ अनन्यता होती है। भक्तिमें अन्यका अभाव होता है। जैसे उत्तम पतिव्रताको एक पतिके सिवाय संसारमें दूसरा कोई पुरुष दीखता ही नहीं, ऐसे ही भक्तको एक भगवान्‌के सिवाय और कोई दीखता ही नहीं, केवल भगवान् ही दीखते हैं।

गीतामें जहाँ ज्ञानका वर्णन है, वहाँ भगवान् बताते हैं कि सत् और असत्—दोनों अलग-अलग हैं—'नासतो विद्यते भावो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

नाभावो विद्यते सतः' (२ । १६)। ऐसे ही ज्ञानमार्गमें शरीर-शरीरी, देह-देही, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, प्रकृति-पुरुष—दोनोंको अलग-अलग जाननेकी बात बहुत बार आयी है; जैसे—'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' (१३ । १९); 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानम्' (१३ । २); 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्' (१३ । २६); 'क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नम्' (१३ । ३३); 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा' (१३ । ३४)। कारण यह है कि ज्ञानमार्गमें विवेककी प्रधानता होती है। इस वास्ते वहाँ नित्य-अनित्य, अविनाशी-विनाशी आदिका विचार होता है और फिर अपना स्वरूप बिल्कुल निर्लिप्त है—ऐसा बोध होता है।

साधकमें श्रद्धा और विवेक—दोनों ही रहने चाहिये। भक्ति-मार्गमें श्रद्धाकी मुख्यता होती है और ज्ञानमार्गमें विवेककी मुख्यता होती है। ऐसा होनेपर भी भक्तिमार्गमें विवेकका और ज्ञानमार्गमें श्रद्धाका अभाव नहीं है। भक्तिमार्गमें मानते हैं कि सात्त्विक, राजस और तामस भाव भगवान्से ही होते हैं (७ । १२) और ज्ञानमार्गमें मानते हैं कि सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिसे ही होते हैं—'सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः' (१४ । ५)। दोनों ही साधक अपनेमें निर्विकारता मानते हैं कि ये गुण अपने नहीं हैं; और दोनों ही जहाँ एक तत्त्वको प्राप्त होते हैं, वहाँ न द्वैत कह सकते हैं, न अद्वैत; न सत् कह सकते हैं, न असत्।

भक्तिमार्गवाले भगवान्के साथ अनन्य प्रेमसे अभिन्न होकर प्रकृतिसे सर्वथा रहित हो जाते हैं और ज्ञानमार्गवाले प्रकृति एवं

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पुरुषका विवेक करके प्रकृतिसे बिल्कुल असम्बद्ध अपने स्वरूपका साक्षात् अनुभव करके प्रकृतिसे सर्वथा सम्बन्धरहित हो जाते हैं।

सम्बन्ध—

भगवान्‌ने पहले बारहवें श्लोकमें यह कहा कि ये सात्त्विक, राजस और तामस भाव मेरेसे ही होते हैं, पर मैं उनमें और वे मेरेमें नहीं हैं। इस विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि भगवान् प्रकृति और प्रकृतिके कार्यसे सर्वथा निर्लिप्त हैं। ऐसे ही भगवान्‌का शुद्ध अंश यह जीव भी निर्लिप्त है। इसपर यह प्रश्न होता है कि यह जीव निर्लिप्त होता हुआ भी बँधता कैसे है? इसका विवेचन अगले श्लोकमें करते हैं।

श्लोक—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥ १३॥

अर्थ—

इन तीनों गुणरूप भावोंसे मोहित यह सब जगत् इन गुणोंसे पर अविनाशी मेरेको नहीं जानता।

व्याख्या—

'त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्'—सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंकी वृत्तियाँ उत्पन्न और लीन होती रहती हैं। उनके साथ तादात्म्य करके प्राणी अपनेको सात्त्विक, राजस और तामस मान लेते हैं अर्थात् उनका अपनेमें आरोप कर लेते हैं कि मैं सात्त्विक, राजस और तामस हो गया हूँ। इस प्रकार तीनों गुणोंसे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मोहित प्राणी ऐसा मानते ही नहीं कि मैं तो निरन्तर वही रहता हूँ अर्थात् मैं जो पहले था, वही अब हूँ और वृत्तियाँ (सात्त्विक, राजस और तामस भाव) उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं। मेरे सामने अवस्थाएँ आती हैं और जाती हैं, प्रत्येक अवस्था, दशा बदलती रहती है—ऐसा समझकर वे अपने स्वरूपकी तरफ ध्यान ही नहीं देते। वे बदलनेवाली दशाओंपर ही ख्याल रखते हैं और दशाओंमें ही तद्रूप होते हैं—यही उनका मोहित होना है। इस प्रकार मोहित होनेके कारण गुणोंसे निर्लिप्त, सदा एकरूप रहनेवाले परमात्माको नहीं समझ सकते।

यहाँ 'जगत्' शब्द जीवात्माका वाचक है। निरन्तर परिवर्तन-शील शरीरके साथ तादात्म्य होनेके कारण ही यह जीव 'जगत्' नामसे कहा जाता है। तात्पर्य है कि शरीरके जन्मनेमें अपना जन्मना, शरीरके मरनेमें अपना मरना, शरीरके बीमार होनेमें अपना बीमार होना और शरीरके स्वस्थ होनेमें अपना स्वस्थ होना मान लेता है, इसीसे यह 'जगत्' नामसे कहा जाता है।

'मोहितं नाभिजानाति'—गुणोंकी भगवान्‌के सिवाय अलग सत्ता माननेसे ही प्राणी मोहित होते हैं। अगर वे गुणोंको भगवत्स्वरूप मानें तो कभी मोहित हो ही नहीं सकते।

तीनों गुणोंका कार्य जो शरीर है, उस शरीरको चाहे अपना मान लें, चाहे अपनेको शरीर मान लें—दोनों ही मान्यताओंसे मोह पैदा होता है। शरीरको अपना मानना 'ममता' हुई और अपने-को शरीर मानना 'अहंता' हुई। शरीरके साथ अहंता-ममता करना ही

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मोहित होना है। मोहित हो जानेसे गुणोंसे सर्वथा अतीत जो भगवत्तत्त्व है, उसको नहीं जान सकता। यह उस भगवत्तत्त्वको तभी जान सकता है, जब त्रिगुणात्मक शरीरके साथ इसकी अहंता-ममता मिट जाती है। यह सिद्धान्त है कि मनुष्य संसारसे सर्वथा अलग होनेपर ही संसारको जान सकता है और परमात्मासे सर्वथा अभिन्न होनेपर ही परमात्माको जान सकता है। कारण इसका यह है कि त्रिगुणात्मक शरीरसे यह स्वयं सर्वथा भिन्न है और परमात्माके साथ यह स्वयं सर्वथा अभिन्न है।

अस्वाभाविकमें स्वाभाविक भाव होना ही मोहित होना है। जो प्रतिक्षण नष्ट होनेवाले तीनों गुणोंसे परे हैं, अत्यन्त निर्लिप्त हैं और नित्य-निरन्तर एकरूप रहनेवाले हैं, ऐसे परमात्मा 'स्वाभाविक' हैं। परमात्माकी यह स्वाभाविकता बनायी हुई नहीं है, कृत्रिम नहीं है, अभ्याससाध्य नहीं है, प्रत्युत स्वतः स्वाभाविक है। परन्तु शरीर तथा संसारमें अहंता-ममता अर्थात् 'मैं' और 'मेरा'—भाव उत्पन्न हुआ है एवं नष्ट होनेवाला है, यह केवल माना हुआ है, इस वास्ते यह 'अस्वाभाविक' है। इस अस्वाभाविकको स्वाभाविक मान लेना ही मोहित होना है, जिसके कारण मनुष्य स्वाभाविकताको समझ नहीं सकता।

जीव पहले परमात्मासे विमुख हुआ कि पहले संसारके सम्मुख (गुणोंसे मोहित) हुआ ? इसमें दार्शनिकोंका मत यह है कि परमात्मासे विमुख होना और संसारसे सम्बन्ध जोड़ना—ये दोनों अनादि हैं, इनका आदि नहीं है। इस वास्ते इनमें पहले या पीछेकी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बात नहीं कही जा सकती। परन्तु मनुष्य यदि मिली हुई स्वतन्त्रताका दुरुपयोग न करे, उसे केवल भगवान्‌में ही लगाना शुरू कर दे तो यह संसारसे ऊपर उठ जाता है अर्थात् इसका जन्म-मरण मिट जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह प्राणी प्रभुकी दी हुई स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करके ही बन्धनमें पड़ा है। अपनी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करके नष्ट होनेवाले पदार्थोंमें उलझ जानेसे वह परमात्मतत्त्वको जान नहीं सकता।

'मामेभ्यः परमव्ययम्'—भगवान् कहते हैं कि मैं इन गुणोंसे पर हूँ अर्थात् इन गुणोंसे सर्वथा रहित, असम्बद्ध, निर्लिप्त हूँ। मैं न कभी किसी गुणसे बँधा हुआ हूँ और न गुणोंके परिवर्तनसे मेरेमें कोई परिवर्तन हो होता है। ऐसे मेरे वास्तविक स्वरूपको गुणोंसे मोहित प्राणी नहीं जान सकते।

सम्बन्ध—

अब अगले श्लोकमें भगवान् अपनेको न जान सकनेमें हेतु बताते हैं।

श्लोक—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ १४॥

अर्थ—

क्योंकि यह गुणमयी दैवी माया बड़ी दुरत्यय है अर्थात् इससे पार पाना बड़ा कठिन है। जो केवल मेरे ही शरण होते हैं, वे इस मायाको तर जाते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

व्याख्या—

'दैवी ह्येषा गुणमयी* मम माया दुरत्यया'—सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंवाली दैवी (देव अर्थात् परमात्माकी) माया बड़ी ही दुरत्यय है। तीनों गुणोंसे बँधे हुए जीव इस मायासे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकते।

'दुरत्यय' कहनेका तात्पर्य है कि ये प्राणी कभी अपनेको सुखी और कभी दुःखी, कभी अपनेको समझदार और कभी बेसमझ, कभी अपनेको निर्बल और कभी बलवान् आदि मानकर इन भावोंमें तल्लीन रहते हैं। इस तरह आने-जानेवाले पदार्थोंमें ही तादात्म्य, ममता, कामना करके उनसे बँधे रहते हैं और अपनेको इनसे रहित अनुभव नहीं कर सकते। यही इस मायामें दुरत्ययपना है।

यह गुणमयी माया तभी दुरत्यय होती है; जब भगवान्‌के सिवाय गुणोंकी स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता मानी जाय। अगर मनुष्य भगवान्‌के

---

* भगवान् पहले बारहवें श्लोकमें यह कहकर आये हैं कि ये सात्त्विक, राजस और तामस भाव मेरेसे ही होते हैं। उसी बातको लेकर भगवान्‌ने यहाँ गुणमयी मायाको अपनी दैवी (अलौकिक) माया बताया है।

पिछले तेरहवें श्लोकमें जिन तीन गुणमय भावोंसे सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित बताया था, उनको ही यहाँ 'एषा' पदसे कहा है।

मायाको 'गुणमयी' कहनेका तात्पर्य है कि यह माया कार्यरूप है; क्योंकि गुण प्रकृतिके कार्य हैं और वे गुण ही जीवको बाँधते हैं, स्वयं प्रकृति नहीं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सिवाय गुणोंकी अलग सत्ता और महत्ता नहीं मानेगा, तो वह इस गुणमयी मायासे तर जायगा ।

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'—इन प्राणियोंमेंसे जो केवल मेरे ही शरण होते हैं, वे इस मायाको तर जाते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि केवल मेरी ही तरफ रहती है, तीनों गुणोंकी तरफ नहीं । जैसा कि पहले वर्णन किया है, सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण न मेरेमें हैं और न मैं उनमें हूँ । मैं तो निर्लिप्त रहकर सभी कार्य करता हूँ । इस प्रकार जो मेरे स्वरूपको जानते हैं, वे गुणोंमें नहीं फँसते, इस मायासे तर जाते हैं । वे गुणोंका कार्य मन-बुद्धिका किञ्चिन्मात्र भी सहारा नहीं लेते । क्यों नहीं लेते ? क्योंकि वे इस बातको जानते हैं कि प्रकृतिका कार्य होनेसे मन-बुद्धि भी तो प्रकृति हैं । प्रकृतिकी क्रियाशीलता प्रकृतिमें ही है । जैसे प्रकृति हरदम प्रलयकी तरफ जा रही है, ऐसे ही ये मन-बुद्धि भी तो प्रलयकी तरफ जा रहे हैं । अतः उनका सहारा लेना परतन्त्रता ही है । ऐसी परतन्त्रता बिल्कुल न रहे और परा प्रकृति (जो कि परमात्माका अंश है) केवल परमात्माकी तरफ आकृष्ट हो जाय तथा अपरासे सर्वथा विमुख हो जाय—यही भगवान्‌के सर्वथा शरण होनेका तात्पर्य है ।

यहाँ 'मामेव' कहनेका तात्पर्य है कि वे अनन्यभावसे केवल मेरे ही शरण होते हैं, क्योंकि मेरे सिवाय दूसरी कोई सत्ता है ही नहीं ।

कई साधक मेरे शरण तो हो जाते हैं; परन्तु 'केवल मेरे ही' शरण नहीं होते । इस वास्ते कहा कि जो 'मामेव'—केवल

a Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मेरी ही शरण लेते हैं, वे तर जाते हैं। मायाकी शरण न ले अर्थात् हमारे पास रुपये-पैसे, चीज-वस्तु आदि सब रहे, पर हम इनको अपना आधार न मानें, इनका आश्रय न लें, इनका भरोसा न करें, इनको महत्त्व न दें। इनका उपयोग करनेका हमें अधिकार है। इनपर कब्जा करनेका हमें अधिकार नहीं है। इनपर कब्जा कर लेना ही इनके आश्रित होना है। आश्रित होनेपर इनसे अलग होना कठिन मालूम देता है—यही वास्तवमें दुरत्ययपना है। इस दुरत्ययपनासे छूटनेके लिये ही उपाय बताते हैं—'मामेव ये प्रपद्यन्ते'।

शरीर, इन्द्रियाँ आदि सामग्रीको अपनी और अपने लिये न मानकर, भगवान्की और भगवान्के लिये ही मानकर भगवान्के भजनमें, उनके आज्ञापालनमें लगा देना है। अपनेको इनसे कुछ नहीं लेना है, इनको भगवान्में लगा देनेका फल भी अपनेको नहीं लेना है; क्योंकि जब भगवान्की वस्तु सर्वथा भगवान्के समर्पित कर दी अर्थात् उनमें भूलसे जो अपनापन कर लिया था, वह हटा लिया तो उस समर्पणका फल हमारा कैसे हो सकता है! यह सब सामग्री तो भगवान्की सेवाके लिये ही भगवान्से मिली है। इस वास्ते इसको उनकी सेवामें लगा देना हमारा कर्तव्य है, हमारी ईमानदारी है। इस ईमानदारीसे भगवान् बड़े प्रसन्न हो जाते हैं और उनकी कृपासे मनुष्य मायाको तर जाते हैं।

वास्तवमें हमने कुछ उद्योग किया नहीं, अपने पास अपनी कही जाने वाली कोई वस्तु है नहीं। भगवान्की दी हुई वस्तुओंको अपनी मानकर अपनेमें अभिमान किया था—यह गलती थी। भगवान्का तो बड़ा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ही उदार एवं प्रेमभरा स्वभाव है कि वे जिस किसीको कुछ देते हैं, उसको इस बातका पता ही नहीं लगने देते कि यह भगवान्‌की दी हुई है, प्रत्युत जिसको जो कुछ मिला है, उसको वह अपनी और अपने लिये ही मान लेता है। यह भगवान्‌का देनेका एक विलक्षण ढंग है। उनकी इस कृपाको केवल भक्तलोग ही जान सकते हैं। परन्तु जो लोग भगवान्‌से विमुख होते हैं, वे सोच ही नहीं सकते कि इन वस्तुओंको हम सदा पासमें रख सकते हैं क्या? अथवा वस्तुओंके पास हम सदा रह सकते हैं क्या? इन वस्तुओंपर हमारा आधिपत्य चल सकता है क्या? इस वास्ते वे अनन्यभावसे भगवान्‌के शरण नहीं हो सकते।

इस श्लोकका भाव यह हुआ कि जो केवल भगवान्‌के ही शरण होते हैं अर्थात् जो केवल दैवी-सम्पत्तिवाले होते हैं, वे भगवान्‌की गुणमयी मायाको तर जाते हैं। परन्तु जो भगवान्‌के शरण न होकर देवता आदिके शरण होते हैं अर्थात् जो केवल आसुरी-सम्पत्तिवाले (प्राण-पिण्ड-पोषण-परायण, सुखभोगपरायण) होते हैं, वे भगवान्‌की गुणमयी मायाको नहीं तर सकते। ऐसे आसुर-स्वभाववाले मनुष्य भले ही ब्रह्मलोकतक चले जायँ, तो भी उनको (ब्रह्मलोकतक गुणमयी माया होनेसे) वहाँसे लौटना ही पड़ता है, जन्मना-मरना ही पड़ता है।

सम्बन्ध—

पिछले श्लोकमें भगवान्‌ने यह बताया कि मेरे शरण होनेवाले सभी मायासे तर जाते हैं। अतः सब-के-सब प्राणी मेरे शरण क्यों नहीं होते—इसका कारण अगले श्लोकमें बताते हैं।

a Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

अर्थ—

मायाके द्वारा अपहृत ज्ञानवाले, असुर-भावका आश्रय लेनेवाले और मनुष्योंमें महान् नीच तथा पाप-कर्म करनेवाले मूढ़ पुरुष मेरे शरण नहीं होते ।

व्याख्या—

'न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः'—जो दुष्कृती और मूढ़ होते हैं, वे भगवान्‌के शरण नहीं होते । दुष्कृती वे ही होते हैं, जो नाशवान्, परिवर्तनशील प्राप्त पदार्थोंमें 'ममता' रखते हैं और अप्राप्त पदार्थोंकी 'कामना' रखते हैं । कामना पूरी होनेपर 'लोभ' और कामनाकी पूर्तिमें बाधा लगनेपर 'क्रोध' पैदा होता है । इस तरह जो 'कामना' में फँसकर व्यभिचार आदि शास्त्रनिषिद्ध विषयोंका सेवन करते हैं, 'लोभ' में फँसकर झूठ, कपट, विश्वासघात, बेईमानी आदि पाप करते हैं और 'क्रोध' के वशीभूत होकर द्वेष, वैर आदि दुर्भावपूर्वक हिंसा आदि पाप करते हैं, वे 'दुष्कृती' हैं ।

जब मनुष्य भगवान्‌के सिवाय दूसरी सत्ता मानकर उसको महत्त्व देते हैं, तभी कामना पैदा होती है । कामना पैदा होनेसे मनुष्य माया-से मोहित हो जाते हैं और 'हम जीते रहें तथा भोग भोगते रहें'—यह बात उनको जच जाती है । इस वास्ते वे भगवान्‌के शरण नहीं होते, प्रत्युत विनाशी वस्तु, पदार्थ आदिके शरण हो जाते हैं ।

तमोगुणकी अधिकता होनेसे सार-असार, नित्य-अनित्य, सत्-असत्, ग्राह्य-त्याज्य, कर्तव्य-अकर्तव्य आदिकी तरफ ध्यान न देनेवाले

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भगवद्विमुख पुरुष 'मूढ़' हैं। दुष्कृती और मूढ़ पुरुष परमात्माकी तरफ जानेका निश्चय ही नहीं कर सकते, फिर वे परमात्माकी शरण तो हो ही कैसे सकते हैं!

'नराधमाः' कहनेका मतलब है कि वे दुष्कृती और मूढ़ पुरुष पशुओंसे भी नीचे हैं। पशु तो फिर भी अपनी मर्यादामें रहते हैं, पर ये मनुष्य होकर भी अपनी मर्यादामें नहीं रहते हैं। पशु तो अपनी योनि भोगकर मनुष्ययोनिकी तरफ आ रहे हैं और ये मनुष्य होकर (जिनको कि परमात्माकी प्राप्ति करनेके लिये मनुष्यशरीर दिया) पाप, अन्याय आदि करके नरकों और पशुयोनियोंकी तरफ जा रहे हैं। ऐसे मूढ़तापूर्वक पाप करनेवाले प्राणी नरकोंके अधिकारी होते हैं। ऐसे प्राणियोंके लिये भगवान्‌ने (गीता १६ । १९-२०में) कहा है कि 'द्वेष रखनेवाले, मूढ़, क्रूर और संसारमें नराधम पुरुषोंको मैं बार-बार आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ। वे आसुरी योनियोंको प्राप्त होकर फिर घोर नरकोंमें जाते हैं*।'

'माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः'—भगवान्‌की जो तीनों गुणोंवाली माया है (७ । १४), उस मायासे विवेक ढके जानेके कारण जो आसुरभावको प्राप्त हो गये हैं यानी शरीर, इन्द्रियाँ,

---

* तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥
(गीता १६ । १९-२०)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अन्तःकरण और प्राणोंका पोषण करनेमें लगे हुए हैं, वे मेरेसे सर्वथा विमुख ही रहते हैं। इस वास्ते वे मेरे शरण नहीं होते।

दूसरा भाव यह है कि जिनका ज्ञान मायासे अपहृत है, उनकी वृत्ति पदार्थोंके आदि और अन्तकी तरफ जाती ही नहीं। उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंको प्रत्यक्ष नश्वर देखते हुए भी वे रुपये-पैसे, सम्पत्ति आदिके संग्रहमें और मान, योग्यता, प्रतिष्ठा, कीर्ति आदिमें ही आसक्त रहते हैं और उनकी प्राप्ति करनेमें ही अपनी बहादुरी और उद्योगकी सफलता, इतिश्री मानते हैं। इस कारण वे यह समझ ही नहीं सकते कि जो अभी नहीं है, उसकी प्राप्ति होनेपर भी अन्तमें वह 'नहीं' ही रहेगा और उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं रहेगा।

'असु' नाम प्राणोंका है। प्राणोंको प्रत्यक्ष ही आने-जानेवाले अर्थात् क्रियाशील और नाशवान् देखते हुए भी वे उन प्राणोंका पोषण करनेमें ही लगे रहते हैं। जीवन-निर्वाहमें काम आनेवाली सांसारिक वस्तुओंको ही वे महत्त्व देते हैं। उन वस्तुओंसे भी बढ़कर वे रुपये-पैसोंको महत्त्व देते हैं; जो कि स्वयं काममें नहीं आते, प्रत्युत वस्तुओंके द्वारा काममें आते हैं। वे केवल रुपयोंको ही आदर नहीं देते, प्रत्युत उनकी संख्याको बहुत आदर देते हैं। रुपयोंकी संख्या अभिमान बढ़ानेमें काम आती है। अभिमान सम्पूर्ण आसुरी-सम्पत्तिका आधार और सम्पूर्ण दुःखों एवं पापोंका कारण है*। ऐसे अभिमानको लेकर ही जो अपनेको मुख्य मानते हैं, वे आसुरभावको प्राप्त हैं।

* संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
(मानस ७। ७२। ३)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

विशेष बात

यहाँ भगवान्‌ने कहा है कि दुष्कृती पुरुष मेरे शरण नहीं हो सकते और नवें अध्यायके तीसवें श्लोकमें कहा है कि सुदुराचारी पुरुष भी अगर अनन्यभावसे मेरा भजन करता है तो वह बहुत जल्दी धर्मात्मा हो जाता है तथा निरन्तर रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है—यह कैसे ? इसका समाधान यह है कि वहाँ (९ । ३० में) 'अपि चेत्' पद आये हैं, जिनका अर्थ होता है—दुराचारीकी प्रवृत्ति परमात्माकी तरफ स्वाभाविक नहीं होती; परन्तु अगर वह भगवान्‌के शरण हो जाय तो उसके लिये भगवान्‌की तरफसे मना नहीं है। भगवान्‌की तरफसे किसी भी जीवके लिये किञ्चिन्मात्र भी बाधा नहीं है; क्योंकि भगवान् प्राणिमात्रके लिये सम हैं। उनका किसी भी प्राणीमें राग-द्वेष नहीं होता (गीता ९ । २९)। दुराचारी-से-दुराचारी पुरुष भी भगवान्‌के द्वेषका विषय नहीं है। सब प्राणियोंपर भगवान्‌का प्यार और कृपा समान ही है।

वास्तवमें दुराचारी अधिक दयाका पात्र है। कारण कि वह अपना ही महान् अहित कर रहा है, भगवान्‌का कुछ भी नहीं बिगाड़ रहा है। इस वास्ते किसी कारणवशात् कोई आफत आ जाय, बड़ा भारी संकट आ जाय और उसका कोई सहारा न रहे तो वह भगवान्‌को पुकार उठेगा। ऐसे ही किसी सन्तको उसने दुःख दिया और संतके हृदयमें कृपा आ जाय तो उस सन्तकी कृपासे वह भगवान्‌में लग जाय अथवा किसी ऐसे स्थानमें चला जाय, जहाँ अच्छे-अच्छे बड़े विलक्षण दयालु महात्मा रह चुके हैं और उनके प्रभावसे

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

उसका भाव बदल जाय अथवा किसी कारणवशात् उसका कोई पुराना विलक्षण पुण्य उदय हो जाय तो वह अचानक चेत सकता है और भगवान्‌के शरण हो सकता है। ऐसा पापी पुरुष अगर भगवान्‌में लगता है तो बड़ी दृढ़तासे लगता है। कारण कि उसके भीतर कोई अच्छाई नहीं होती, इस वास्ते उसको अच्छेपनका अभिमान नहीं होता।

तात्पर्य यह हुआ कि सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवान्‌की व्यापकता और कृपा समान है। सदाचार और दुराचार तो उन प्राणियोंके किये हुए कार्य हैं। मूलमें तो वे प्राणी सदा भगवान्‌के शुद्ध अंश हैं। केवल दुराचारके कारण उनकी भगवान्‌में रुचि नहीं होती। अगर किसी कारणवशात् रुचि हो जाय तो भगवान् उनके किये हुएको न देखकर उनको स्वीकार कर लेते हैं—रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥ (मानस १। २८। ३)। जैसे, माँका हृदय अपने सम्बन्धसे बालकोंपर समान ही रहता है। उनके सदाचार-दुराचारसे उनके प्रति माँका व्यवहार तो विषम होता है, पर हृदय विषम नहीं होता—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'। माँ तो एक जन्मको और एक शरीरको देनेवाली होती है; परन्तु प्रभु तो सदा रहनेवाली माँ है। प्रभुका हृदय तो प्राणिमात्रपर सदैव द्रवित रहता ही है। प्राणी निमित्तमात्र भी शरण हो जाय तो प्रभु विशेष द्रवित हो जाते हैं। भगवान् कहते हैं—

> जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
> तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
>
> (मानस ५। ४७। १-२)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इसका तात्पर्य है कि जो चराचर प्राणियोंके साथ द्वेष करनेवाला है, वह अगर कहीं भी आश्रय न मिलनेसे भयभीत होकर सर्वथा मेरा ही आश्रय लेकर मेरे शरण हो जाता है, तो मैं उसमें होनेवाले मद, मोह, कपट, नाना छल आदि दोषोंकी तरफ न देखकर, केवल उसके भावकी तरफ देखकर मैं उसको बहुत जल्दी साधु बना लेता हूँ।

धर्मका आश्रय रहनेसे धर्मात्मा पुरुषके भीतर अनन्यभाव होनेमें कठिनता रहती है। परन्तु दुरात्मा पुरुष जब किसी कारणसे भगवान्‌के सम्मुख होता है, तो उसके किसी प्रकारके शुभ-कर्म न होनेसे केवल भगवत्परायणताका ही बल रहता है। यह बल बहुत जल्दी पवित्र करता है। कारण कि यह बल खुदका होता है अर्थात् किसी तरहका आश्रय न रहनेसे उसकी खुदकी पुकार होती है। इस पुकारसे भगवान् बहुत जल्दी पिघल जाते हैं। ऐसी पुकार होनेमें पुण्यात्मा-पापात्मा, विद्वान्-मूर्ख, सुजाति-कुजाति आदिका होना कारण नहीं है, प्रत्युत संसारकी तरफसे सर्वथा निराश होना ही खास कारण है। यह निराशा हरेक प्राणीको हो सकती है।

दूसरी बात भगवान्‌के कथनका तात्पर्य है कि दुष्कृती पुरुष मेरे शरण नहीं होते; क्योंकि उनका स्वभाव मेरे विपरीत होता है। उनमेंसे अगर कोई मेरे शरण हो जाय तो मैं उससे प्यार करनेके लिये हरदम तैयार हूँ। भगवान्‌की कृपालुता इतनी विलक्षण है कि भगवान् भी अपनी कृपाके परवश होकर जीवका जल्दी कल्याण कर देते हैं। इस वास्ते यहाँके और वहाँके प्रसङ्गमें विरोध नहीं है, प्रत्युत इसमें भगवान्‌की कृपालुता ही प्रकट होती है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सुकृती और दुष्कृती* का होना उनकी क्रियाओंपर निर्भर नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌के सम्मुख और विमुख होनेपर निर्भर है। जो भगवान्‌के सम्मुख है, वह सुकृती है और जो भगवान्‌से विमुख है, वह दुष्कृती है। भगवान्‌के सम्मुख होनेका जैसा माहात्म्य है, वैसा माहात्म्य सकामभावपूर्वक किये गये यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत आदि शुभ कर्मोंका नहीं है। यद्यपि यज्ञ, दान, तप आदि क्रियाएँ भी पवित्र हैं, पर जो अपनेको सर्वथा अयोग्य समझकर और अपनेमें किसी तरहकी पवित्रता न देखकर आर्तभावसे परमात्माके सम्मुख रो पड़ता है, उसकी पवित्रता भगवत्कृपासे बहुत जल्दी होती है। भगवत्कृपासे होनेवाली पवित्रता अनेक जन्मोंमें किये हुए शुभ कर्मोंकी

---

* यहाँ (७ । १५ में) 'दुष्कृतिनः' कहकर बहुवचन दिया है और वहाँ (९ । ३० में) 'सुदुराचारः' कहकर एकवचन दिया है। इसका तात्पर्य है कि बहुवचन देना सामान्य शास्त्र (सामान्य बात) है और एकवचन देना विशेष शास्त्र (विशेष बात) है। जहाँ सामान्य और विशेष शास्त्रकी तुलना होती है, वहाँ सामान्य शास्त्रसे विशेष शास्त्र बलवान् हो जाता है—'सामान्यशास्त्रतो न्यूनं विशेषो बलवान् भवेत्'। इस वास्ते एकवचन बलवान् है।

दूसरी बात, जिसको अवकाश नहीं मिलता, वह विधि बलवान् होती है—'निरवकाशो विधिरपवादः'। इसका मतलब यह हुआ कि दुष्कृती भगवान्‌के शरण नहीं होते—यह उनका सामान्य स्वभाव बताया; परन्तु उनमेंसे कोई एक किसी कारणविशेषसे भगवान्‌के शरण हो जाय तो भगवान्‌की तरफसे कृपाका दरवाजा खुला है—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस ५ । ४३ । १)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अपेक्षा बहुत ही विलक्षण होती है। इसी तरहसे शुभ कर्म करनेवाले सुकृती भी शुभ कर्मोंका आश्रय छोड़कर भगवान्‌को पुकार उठते हैं, तो उनका भी शुभ कर्मोंका आश्रय न रहकर एक भगवान्‌का आश्रय हो जाता है। केवल भगवान्‌का ही आश्रय होनेके कारण वे भी भगवान्‌के प्यारे भक्त हो जाते हैं।

एक कृति होती है और एक भाव होता है। कृतिमें बाहरकी क्रिया होती है और भाव भीतरमें होता है। भावके पीछे उद्देश्य होता है और उद्देश्यके पीछे भगवान्‌की तरफ अनन्यता होती है। वह अनन्यता कृतियों और भावोंसे बहुत विलक्षण होती है; क्योंकि वह स्वयंकी होती है। उस अनन्यताके सामने कोई दुराचार टिक ही नहीं सकता। वह अनन्यता दुराचारी-से-दुराचारी पुरुषको भी बहुत जल्दी पवित्र कर देती है। वास्तवमें यह जीव परमात्माका अंश होनेसे पवित्र तो है ही। केवल दुर्भावों और दुराचारोंके कारण ही उसमें अपवित्रता आती है।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने कहा कि दुष्कृती पुरुष मेरे शरण नहीं होते। तो फिर शरण कौन होते हैं? इसको अगले श्लोकमें बताते हैं।

श्लोक—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ १६॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अर्थ—

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! पवित्र कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी—ये चार प्रकारके मनुष्य मेरा भजन करते हैं अर्थात् मेरे शरण होते हैं।

व्याख्या—

'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन'—सुकृती पवित्रात्मा पुरुष अर्थात् भगवत्सम्बन्धी काम करनेवाले मनुष्य चार प्रकारके होते हैं। ये चारों मनुष्य मेरा भजन करते हैं अर्थात् स्वयं मेरे शरण होते हैं।

पूर्वश्लोकमें **'दुष्कृतिनः'** पदसे भगवान्‌में न लगनेवाले पुरुषोंकी बात आयी थी। अब यहाँ **'सुकृतिनः'** पदसे भगवान्‌में लगनेवाले पुरुषोंकी बात कहते हैं। ये सुकृती पुरुष शास्त्रीय सकाम पुण्य-कर्म करनेवाले नहीं हैं, प्रत्युत भगवान्‌से अपना सम्बन्ध जोड़कर भगवत्सम्बन्धी कर्म करनेवाले हैं। सुकृती पुरुष दो प्रकारके होते हैं—एक तो यज्ञ, दान, तप आदि और वर्ण-आश्रमके शास्त्रीय कर्म भगवान्‌के लिये करते हैं अथवा उनको भगवान्‌के अर्पित करते हैं और दूसरे भगवन्नामका जप तथा कीर्तन करना, भगवान्‌की लीला सुनना तथा कहना आदि केवल भगवत्सम्बन्धी कर्म करते हैं।

जिनकी भगवान्‌की तरफ रुचि हो गयी है, वे ही भाग्यशाली हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं और वे ही मनुष्य कहलानेयोग्य हैं। वह रुचि चाहे किसी पूर्व पुण्यसे हो गयी हो, चाहे आफतके समय दूसरोंका सहारा छूट जानेसे हो गयी हो, चाहे किसी विश्वसनीय पुरुषके द्वारा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

समयपर धोखा देनेसे हो गयी हो, चाहे सत्सङ्ग, स्वाध्याय अथवा विचार आदिसे हो गयी हो, किसी भी कारणसे भगवान्‌में रुचि होनेसे वे सभी सुकृती पुरुष हैं।

जब भगवान्‌की तरफ रुचि हो जाय, वही पवित्र दिन है, वही निर्मल समय है और वही सम्पत्ति है। जब भगवान्‌की तरफ रुचि नहीं होती, वही काला दिन है, वही विपत्ति है—'कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥ (मानस ५। ३१। २)।

भगवान्‌ने कृपा करके भगवत्प्राप्तिरूप जिस उद्देश्यको लेकर जिन्हें मानव-शरीर दिया है, वे 'जनाः' (जन) कहलाते हैं। भगवान्‌का संकल्प मनुष्यमात्रके उद्धारके लिये बना है। इस वास्ते मनुष्यमात्र भगवान्‌की प्राप्तिका अधिकारी है। तात्पर्य है कि उस संकल्पमें भगवान्‌ने मनुष्यको अपने उद्धारकी स्वतन्त्रता दी है, जो कि अन्य प्राणियोंको नहीं मिलती; क्योंकि वे भोगयोनि हैं और यह मानव-शरीर कर्मयोनि है। वास्तवमें केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही होनेके कारण मानव-शरीरको साधनयोनि ही मानना चाहिये। इस वास्ते इस स्वतन्त्रताका सदुपयोग करके मनुष्य शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंको छोड़कर अगर भगवत्प्राप्तिके लिये ही लग जाय तो उसको भगवत्कृपासे अनायास ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है। परन्तु जो मिली हुई स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करके विपरीत मार्गपर चलते हैं, वे नरकों और चौरासी लाख योनियोंमें जाते हैं। इस तरह सबके उद्धारके भावको लेकर भगवान्‌ने कृपा करके जो मानव-शरीर दिया है, उस शरीरको

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पाकर भगवान्‌का भजन करनेवाले सुकृती पुरुष ही 'जनाः' अर्थात् मनुष्य कहलानेयोग्य हैं ।

'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ'—अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी—ये चार प्रकारके भक्त भगवान्‌का भजन करते हैं अर्थात् भगवान्‌के शरण होते हैं ।

(१) **अर्थार्थी भक्त**—जिनको अपने न्याययुक्त सुख-सुविधाकी इच्छा हो जाती है अर्थात् धन-सम्पत्ति, वैभव आदिकी इच्छा हो जाती है, परन्तु वे केवल भगवान्‌से ही चाहते हैं, दूसरोंसे नहीं, ऐसे भक्त अर्थार्थी भक्त कहलाते हैं ।

चार प्रकारके भक्तोंमें अर्थार्थी आरम्भिक भक्त होता है । पूर्व संस्कारोंसे उसकी धनकी इच्छा रहती है और वह धनके लिये चेष्टा भी करता है, पर वह समझता है कि भगवान्‌के समान धनकी इच्छा पूरी करनेवाला दूसरा कोई नहीं है । ऐसा समझकर वह धन-प्राप्तिके लिये तत्परतापूर्वक भगवन्नामका जप-कीर्तन, भगवत्स्वरूपका ध्यान आदि करता है, धन प्राप्त करनेके लिये उसका भगवान्‌पर ही विश्वास, निष्ठा होती है ।

जिसको धनकी इच्छा है, पर उसकी प्राप्तिके लिये वह सांसारिक उपायोंका सहारा लेता है और कभी धनके लिये भगवान्‌को भी याद कर लेता है, वह केवल अर्थार्थी अर्थात् अर्थका भक्त है, भगवान्‌का भक्त नहीं है । कारण कि उसमें धनकी इच्छा ही मुख्य है । परन्तु जिसमें भगवान्‌के सम्बन्धकी मुख्यता है, वह क्रमशः भगवान्‌की तरफ ही बढ़ता चला जाता है । भगवान्‌में लगे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

रहनेसे उसकी धनकी इच्छा बहुत कम हो जाती है और समय पाकर मिट भी जाती है। यही भगवान्‌का अर्थार्थी भक्त है। इसमें मुख्यतया ध्रुवजीका नाम लिया जाता है।

एक दिन बालक ध्रुवके मनमें राजाकी गोदमें बैठनेकी इच्छा हुई, पर छोटी माँने बैठने नहीं दिया। उसने ध्रुवसे कहा कि 'तूने भजन नहीं किया है, तू अभागा है और अभागिनके यहाँ ही तूने जन्म लिया है, अतः तू राजाकी गोदमें बैठनेका अधिकारी नहीं है।' ध्रुवने छोटी माँकी कही हुई सब बात अपनी माँसे कह दी। माँने कहा कि 'बेटा! तेरी छोटी माँने ठीक ही कहा है, क्योंकि न भजन तूने किया और न मैंने ही किया।' इसपर ध्रुवने माँसे कहा कि 'माँ! अब तो मैं भजन करूँगा।' ऐसा कहकर वे भगवद्भजन करनेके लिये घरसे निकल पड़े और माँने भी बड़ी हिम्मत करके ध्रुवको जंगलमें जानेके लिये आज्ञा दे दी। रास्तेमें जाते हुए नारदजी महाराज मिल गये। नारदजीने ध्रुवसे कहा कि 'अरे भोला! तू अकेले कहाँ जा रहा है? यों भगवान् जल्दी थोड़े ही मिलते हैं! तू जंगलमें कहाँ रहेगा? वहाँ बड़े-बड़े जंगली जानवर हैं। वे तेरेको खा जायँगे। वहाँ तेरी माँ थोड़े ही बैठी है! तू मेरे साथ चल। राजा मेरी बात मानते हैं। मैं तेरा और तेरी माँका प्रबन्ध करवा दूँगा।' नारदजीकी बातोंको सुनकर ध्रुवकी भगवद्भजनमें और दृढ़ता हो गयी कि देखो, भगवान्‌की तरफ चलनेसे नारदजी भी इतनी बात कहते हैं। अब ये मेरेको घर चलनेके लिये कहते हैं, पर पहले ये कहाँ

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

गये थे ! ध्रुवने नारदजीसे कहा कि 'महाराज ! मैं तो अब भगवान्‌का भजन ही करूँगा' । ध्रुवजीका ऐसा दृढ़ निश्चय देखकर नारदजीने उनको द्वादशाक्षर मन्त्र दिया और चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ध्यान बताकर मधुवनमें जाकर भजन करनेकी आज्ञा दी ।

ध्रुवजीने मधुवनमें जाकर ऐसी निष्ठासे भजन किया कि उनकी निष्ठाको देखकर छः महीनेकी अवधिके भीतर-ही-भीतर भगवान् ध्रुवके सामने प्रकट हो गये । भगवान्‌ने ध्रुवजीको राजगद्दी-का वरदान दिया, पर इस वरदानसे ध्रुवजी विशेष राजी नहीं हुए। भजनसे अन्तःकरण शुद्ध होनेके कारण उनको धन-(राज्य-) के लिये भगवान्‌की तरफ चलनेमें बड़ी लज्जा हुई कि मैंने गलती की ।

तात्पर्य यह हुआ कि ध्रुवजीकी तो पहले राजाकी गोदमें बैठनेकी इच्छा हुई, पर उन्होंने उस इच्छाकी पूर्तिका मुख्य उपाय भगवान्‌का भजन ही माना । भजन करनेसे उनको राज्य मिल गया और इच्छा मिट गयी। इस तरह अर्थार्थी भक्त केवल भगवान्‌की तरफ ही लगता है।

आजकल जो धन-प्राप्तिके लिये झूठ, कपट, बेईमानी आदि करते हैं, वे भी धनके लिये समय-समयपर भगवान्‌को पुकारते हैं । वे अर्थार्थी तो हैं, पर भगवान्‌के भक्त नहीं हैं । वे तो झूठ, कपट, बेईमानी आदिके भक्त हैं, क्योंकि उनका 'पापके बिना, झूठ-कपटके बिना काम नहीं चलता,' इस तरह झूठ-कपट आदिपर जितना विश्वास है, उतना विश्वास भगवान्‌पर नहीं है ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जो केवल भगवान्के ही परायण हैं और जो भगवान्के साथ अपनापन करके भगवान्का ही भजन करते हैं; परन्तु कभी-कभी पूर्व संस्कारोंसे अथवा किसी कारणसे जिनमें अपने शरीर आदिके लिये अनुकूल परिस्थितिकी इच्छा हो जाती है, वे भी अर्थार्थी भक्त कहलाते हैं। उनकी अनुकूलताकी इच्छा ही अर्थार्थीपन है।

(२) आर्त भक्त—प्राण-संकट आनेपर, आफत आनेपर, मनके प्रतिकूल घटना घटनेपर जो दुःखी होकर अपना दुःख दूर करनेके लिये भगवान्को पुकारते हैं और दुःखको दूर करना केवल भगवान्से ही चाहते हैं, दूसरे किसी उपायको काममें नहीं लेते, वे आर्त भक्त कहलाते हैं। आर्त भक्तोंमें उत्तराका दृष्टान्त लेना ठीक बैठता है* । कारण कि जब उसपर आफत आयी, तब उसने भगवान्के

* आर्त भक्तोंमें द्रौपदी और गजेन्द्रका दृष्टान्त ठीक नहीं बैठता; क्योंकि उन्होंने अपनी रक्षाके लिये अन्य उपायोंका भी सहारा लिया था, केवल भगवान्का ही नहीं। जबतक अपना दुःख दूर करनेके लिये अन्य उपायोंका सहारा रहता है, अन्य उपायोंकी तरफ वृत्ति रहती है, तबतक वे अनन्यभक्त नहीं हैं और तभीतक उनपर कष्ट आता है। जब यह अन्यकी तरफ वृत्ति मिट जाती है, तब वे भक्त कहलाते हैं और उनपर कष्ट नहीं आता। जैसे, चीर-हरणके समय जबतक द्रौपदीकी दूसरोंकी तरफ दृष्टि थी, दूसरोंका भरोसा था, अपने बलका सहारा था, तबतक वह कष्ट पाती रही। परन्तु जब दूसरोंकी तरफसे तो क्या, अपने हाथसे भी साड़ीको नहीं पकड़ा, अर्थात् अपने बलका भी सहारा नहीं लिया, तब उसका अनन्यभाव हो गया और उसको दुःख नहीं पाना पड़ा—

द्रुपद सुता निरबल भइ ता दिन, तजि आये निज धाम।
दुस्सासन की भुजा थकित भई बसन रूप भये स्याम॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सिवाय अन्य किसी उपायका सहारा नहीं लिया। अन्य उपायोंकी तरफ उसकी दृष्टि ही नहीं गयी। उसने केवल भगवान्‌का ही सहारा लिया*। तात्पर्य यह हुआ कि सकामभाव रहनेपर भी आर्त भक्त उसकी पूर्ति केवल भगवान्‌से ही चाहते हैं।

जो भगवान्‌के साथ अपनापन करके भगवान्‌के परायण हैं और अनुकूलताकी वैसी इच्छा नहीं करते; पर प्रतिकूल परिस्थिति आनेपर इच्छा हो जाती है कि भगवान्‌ने ऐसा क्यों किया? यह प्रतिकूलता मिट जाय तो बहुत अच्छा है। इस प्रकार प्रतिकूलता मिटानेका भाव पैदा होनेसे वे भी आर्त भक्त कहलाते हैं।

ऐसे ही गजेन्द्रने जबतक हाथियों और हथिनियोंका सहारा लिया, अपने बलका सहारा लिया, तबतक वह वर्षोंतक दुःख पाता रहा। जब सब सहारा छूट गया, केवल भगवान्‌का ही सहारा रहा, तब उसको दुःख नहीं पाना पड़ा—

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात् प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥
(श्रीमद्भा० ८। २। ३३)

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं सम्पश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम्॥
(श्रीमद्भा० ८। ३। ३३)

* पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्॥
अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो।
कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम्॥
(श्रीमद्भा० १। ८। ९-१०)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(३) **जिज्ञासु भक्त**—जिसमें अपने स्वरूपको, भगवत्तत्त्वको जाननेकी जोरदार इच्छा जाग्रत् हो जाती है कि वास्तवमें मेरा स्वरूप क्या है ? भगवत्तत्त्व क्या है ? इस प्रकार तत्त्वको जाननेके लिये शास्त्र, गुरु अथवा पुरुषार्थ (श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि उपायों) का भी आश्रय न रखते हुए केवल भगवान्‌के आश्रित होकर उस तत्त्वको केवल भगवान्‌से ही जानना चाहते हैं, वे जिज्ञासु भक्त कहलाते हैं।

जिज्ञासु भक्त वही होता है, जिसका जिज्ञास्य केवल भगवत्तत्त्व और उपाय केवल भगवद्भक्ति ही होती है अर्थात् उपेय और उपायमें अनन्यता होती है; जैसे—तेरहवें अध्यायके दसवें श्लोकमें **'मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी'** पदोंमें **'भक्तिरव्यभिचारिणी'** पदसे साध्यमें और **'अनन्ययोगेन'** पदसे साधनमें अनन्यता होनेकी बात बतायी है।

जिज्ञासु भक्तोंमें उद्धवजीका नाम लिया जाता है। भगवान्‌ने उद्धवजीको दिव्यज्ञानका उपदेश दिया था, जो 'उद्धवगीता' (श्रीमद्भागवत ११। ७–३०)के नामसे प्रसिद्ध है।

जो भगवान्‌में अपनापन करके भगवान्‌के भजनमें ही तल्लीन रहते हैं; परन्तु कभी-कभी सङ्गसे, संस्कारोंसे मनमें यह भाव पैदा हो जाता है कि वास्तवमें मेरा स्वरूप क्या है ? भगवत्तत्त्व क्या है ? वे भी जिज्ञासु कहलाते हैं।

(४) **ज्ञानी भक्त**—जिनमें न तो कभी किञ्चिन्मात्र भी अनुकूलताकी इच्छा होती है, न प्रतिकूलता आनेपर 'प्रतिकूलता

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

क्यों आयी!' यह जाननेकी इच्छा होती है और न स्वरूप-बोधकी इच्छा होती है, जो केवल भगवत्परायण होकर भगवत्प्रेममें ही तल्लीन रहते हैं और जिनको अपने सुख-दुःखका किञ्चिन्मात्र भी ख्याल नहीं होता, वे ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त कहलाते हैं। अर्थार्थी, आर्त और जिज्ञासु—तीनों भक्तोंसे ज्ञानी भक्तकी विलक्षणता बतानेके लिये यहाँ 'च' अव्यय आया है।

ज्ञानी भक्तको अनुकूल-से-अनुकूल और प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थिति, घटना, व्यक्ति, वस्तु आदि सब भगवत्स्वरूप ही दीखते हैं अर्थात् उसको अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति केवल भगवल्लीला ही दीखती है। जैसे भगवान्‌में अपने लिये अनुकूलता प्राप्त करने, प्रतिकूलता हटाने, बोध प्राप्त करने आदि किसी तरहकी कभी किञ्चिन्मात्र भी इच्छा होती ही नहीं, वे तो केवल भक्तोंके प्रेममें ही मस्त रहते हैं, ऐसे ही ज्ञानी (प्रेमी) भक्तोंमें किञ्चिन्मात्र भी कोई इच्छा नहीं होती, वे केवल भगवान्‌के प्रेममें ही मस्त रहते हैं।

ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्तोंमें गोपिकाओंका नाम प्रसिद्ध है। देवर्षि नारदजीने भी **'यथा व्रजगोपिकानाम्'** (भक्तिसूत्र २१) कहकर गोपियोंको प्रेमी भक्तोंका आदर्श माना है। कारण कि गोपियोंमें अपने सुखका सर्वथा त्याग था। प्रियतम भगवान्‌का सुख ही उनका सुख था।

यहाँ एक बात समझनेकी है कि धनकी इच्छा, दुःख दूर करनेकी इच्छा और जिज्ञासा-पूर्तिकी इच्छाको लेकर जो भगवान्‌की तरफ लगते हैं, उनमें तो भगवान्‌का प्रेम जाग्रत् हो जाता है और वे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भक्त कहलाते हैं। परन्तु जिनकी यह भावना रहती है कि अन्य उपायोंसे धन मिल सकता है, दुःख दूर हो सकता है, जिज्ञासापूर्ति हो सकती है, उनका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध न होनेसे उनमें प्रेम जाग्रत् नहीं होता और उनकी भक्त संज्ञा नहीं होती।

संतोंकी वाणीमें आता है कि प्रेम तो केवल भगवान् ही करते हैं, भक्त केवल भगवान्‌में अपनापन करता है। कारण कि प्रेम वही करता है, जिसे कभी किसीसे कुछ भी लेना नहीं है। भगवान्‌ने जीवमात्रके प्रति अपने-आपको सर्वथा अर्पित कर रखा है और जीवसे कभी कुछ भी प्राप्त करनेकी इच्छाकी कोई सम्भावना ही नहीं रखी है। इस वास्ते भगवान् ही वास्तवमें प्रेम करते हैं। जीवको भगवान्‌की आवश्यकता है, इस वास्ते जीव भगवान्‌से अपनापन ही करता है। जब अपने-आपको सर्वथा भगवान्‌के अर्पित करनेपर भक्तमें कभी कुछ भी पानेकी कोई अभिलाषा नहीं रहती, तब वह ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त कहा जाता है। अपने-आपको सर्वथा भगवान्‌के अर्पित कर देनेसे उस भक्तकी सत्ता भगवान्‌से किञ्चिन्मात्र भी अलग नहीं रहती और उसकी जगह केवल भगवान्‌की सत्ता ही रह जाती है।

विशेष बात—

(१)

चार लड़के खेल रहे थे। इतनेमें उनके पिताजी चार आम लेकर आये। उनको देखते ही एक लड़का आम माँगने लग गया और एक लड़का आम लेनेके लिये रो पड़ा। पिताजीने उन

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दोनोंको एक-एक आम दे दिया। तीसरा लड़का न तो रोता है और न माँगता है, केवल आमकी तरफ देखता है और चौथा लड़का आमकी तरफ न देखकर जैसे पहले खेल रहा था, वैसे ही मस्तीसे खेल रहा है। उन दोनोंको भी पिताजीने एक-एक आम दे दिया। इस प्रकार चारों ही लड़कोंको आम मिलता है। यहाँ आम माँगनेवाला लड़का अर्थार्थी है, रोनेवाला लड़का आर्त है, केवल आमकी तरफ देखनेवाला जिज्ञासु है और आमकी परवा न करके खेलमें लगे रहनेवाला लड़का ज्ञानी है। ऐसे ही अर्थार्थी भक्त भगवान्‌से अनुकूलता माँगता है, आर्त भक्त भगवान्‌से प्रतिकूलता दूर कराना चाहता है, जिज्ञासु भक्त भगवान्‌को जानना चाहता है और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त भगवान्‌से कुछ भी नहीं चाहता॥

अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चारों ही भक्त भगवन्निष्ठ हैं। इस वास्ते इनको योगभ्रष्ट पुरुषों* में नहीं लिया जा सकता। ऐसे ही अर्थार्थी और आर्त—ये दोनों सकाम पुरुषोंसे अलग हैं; क्योंकि इन दोनों भक्तोंमें भगवान्‌का आश्रय मुख्य है। सकाम पुरुष कामनापूर्तिमें ही लगे रहनेके कारण 'हृतज्ञानाः' हैं (गीता ७। २०), इस वास्ते इनको आसुरी-सम्पत्तिवाले पुरुषोंमें लिया गया है। यद्यपि अर्थार्थी आदि भक्तोंमें जो कुछ तारतम्यता है,

---

* प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
(गीता ६। ४१-४२)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वह कामनाके कारण ही है, परन्तु कामना होते हुए भी वे 'हृतज्ञानाः' नहीं हैं। उनको तो भगवान्‌ने 'सुकृतिनः' और 'उदाराः' (७।१८) कहा है।

जो भगवान्‌के शरण होते हैं, उनमें सकामभाव भी हो सकता है, परन्तु उनमें मुख्यता भगवन्निष्ठ होनेकी ही होती है। इस वास्ते उनकी भगवान्‌के साथ जितनी-जितनी घनिष्ठता होती जाती है, उतना-उतना ही उनमें सकामभाव मिटता जाता है और विलक्षणता आती जाती है। इस वास्ते उनको भगवान्‌ने 'उदाराः' कहा है और ज्ञानी भक्तको अपना स्वरूप बताया है—'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (७।१८)।

(२)

भगवान्‌के साथ अपनापन माननेके समान दूसरा कोई साधन नहीं है, कोई योग्यता नहीं है, कोई बल नहीं है, कोई अधिकारिता नहीं है। भगवान्‌का प्राणिमात्रपर अपनापन सदासे है और सदा ही रहेगा। उस अपनेपनको केवल प्राणी ही भूला है और उसने भूलसे संसारके साथ अपनापन मान लिया है। इस वास्ते इस भूलसे किये हुए अपनेपनको हटाना है और प्रभुके साथ जो स्वतःसिद्ध अपनापन है, उसको मानना है। प्रभुको अपना माननेमें मन, बुद्धि आदि किसीकी सहायता नहीं लेनी पड़ती, जबकि दूसरे साधनोंमें मन, बुद्धि आदिकी सहायता लेनी पड़ती है।

भगवान्‌के साथ अपनापन होनेपर अर्थात् 'मैं केवल भगवान्‌का ही हूँ और केवल भगवान् ही मेरे हैं'—ऐसा दृढ़तासे मान लेनेपर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

साधक भक्तको अपने कहलानेवाले अन्तःकरणमें भावोंकी, गुणोंकी कमी भी दीख सकती है, पर भगवान्‌के साथ अपनापन होनेसे वह टिकेगी नहीं। दूसरी बात, साधक भक्तमें कुछ गुणोंकी कमी रहनेपर भी भगवान्‌की दृष्टि केवल अपनेपनपर ही जाती है, गुणोंकी कमीपर नहीं। कारण कि भगवान्‌के साथ हमारा जो अपनापन है, वह वास्तविक है।

भगवान्‌का अपनापन तो दुष्ट-से-दुष्ट पुरुषपर भी वैसा ही है। इस वास्ते सोलहवें अध्यायमें आसुरी प्रकृतिवालोंका वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं कि 'क्रूर, द्वेष करनेवाले, नराधम दुष्टोंको मैं आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ'। इस प्रकार भगवान् उनको आसुरी योनियोंमें गिराकर शुद्ध करते हैं। जैसे माता अपने बच्चेको स्नान कराती है तो उसकी सम्मति नहीं लेती, ऐसे ही उनको शुद्ध करनेके लिये भगवान् उनकी सम्मति नहीं लेते; क्योंकि भगवान्‌का उनपर अपनापन है।

भगवान्‌के साथ अपनापनका सम्बन्ध पहलेसे ही है। फिर कोई कामना उत्पन्न हो जाती है तो भक्तका भगवान्‌के साथ अपनेपनका सम्बन्ध मुख्य होता है और कामना गौण होती है। इस दृष्टिसे ये भक्त पहली श्रेणीके हैं।

भगवान्‌का सम्बन्ध तो पहलेसे ही है, पर समय-समयपर कामना उत्पन्न हो जाती है, जिसकी पूर्ति दूसरोंसे चाहते हैं। जब दूसरोंसे कामनाकी पूर्ति नहीं होती तो अन्तमें भगवान्‌से चाहते हैं। इस तरह अनन्यताकी कमी होनेके कारण वे भक्त दूसरी श्रेणीके हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जहाँ केवल कामना-पूर्तिके लिये ही भगवान्‌के साथ अपनेपनका सम्बन्ध किया जाय, वहाँ कामना मुख्य होती है और भगवान्‌का सम्बन्ध गौण होता है। इस दृष्टिसे ये भक्त तीसरी श्रेणीके हैं।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें वर्णित चारों भक्तोंमेंसे ज्ञानी भक्तकी विशेषताका विशद वर्णन अगले श्लोकमें करते हैं।

श्लोक—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ १७॥

अर्थ—

उन चार भक्तोंमें मेरेमें निरन्तर लगा हुआ, अनन्यभक्तिवाला ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्ञानी भक्तको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह भी मेरेको अत्यन्त प्रिय है।

व्याख्या—

'तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः'—उन (अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी) भक्तोंमें ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त श्रेष्ठ है; क्योंकि वह नित्ययुक्त है अर्थात् वह सदा-सर्वदा केवल भगवान्‌में ही लगा रहता है। भगवान्‌के सिवाय दूसरे किसीमें वह किञ्चिन्मात्र भी नहीं लगता। जैसे गोपियाँ गाय दुहते, दूध बिलोते, धान कूटते आदि सभी लौकिक कार्य करते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णमें चित्तवाली रहती

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हैं*, ऐसे ही यह ज्ञानी भक्त लौकिक और पारमार्थिक सब क्रियाएँ करते समय सदा-सर्वदा भगवान्‌से जुड़ा रहता है। भगवान्‌से सम्बन्ध रखते हुए ही उसकी सब क्रियाएँ होती हैं।

'एकभक्तिर्विशिष्यते'—उस ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्तका आकर्षण केवल भगवान्‌में होता है। उसकी अपनी कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं रहती। इस वास्ते वह श्रेष्ठ है।

अर्थार्थी आदि भक्तोंमें पूर्वसंस्कारोंके कारण जबतक व्यक्तिगत इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, तबतक उनकी एकभक्ति नहीं होती अर्थात् केवल भगवान्‌में प्रेम नहीं होता। परन्तु उन भक्तोंमें इन इच्छाओंको नष्ट करनेका भाव भी होता रहता है और इच्छाओंके सर्वथा नष्ट होनेपर सभी भक्त भगवान्‌के प्रेमी और भगवान्‌के प्रेमास्पद हो जाते हैं। वहाँ भक्त और भगवान्‌में द्वैतका भाव न रहकर प्रेमाद्वैत (प्रेममें अद्वैत) हो जाता है।

ऐसे तो चारों भक्त भगवान्‌में नित्य-निरन्तर लगे रहते हैं, परन्तु तीन भक्तोंके भीतरमें कुछ-न-कुछ व्यक्तिगत इच्छा रहती है; जैसे—अर्थार्थी भक्त अनुकूलताकी इच्छा करते हैं, आर्त भक्त प्रतिकूलताकी इच्छा करते हैं और जिज्ञासु भक्त अपने स्वरूप

---

* या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खे-
ङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥
(श्रीमद्भा० १०। ४४। १५)

*

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जाननेकी इच्छा करते हैं*। ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्तमें अपनी कोई इच्छा नहीं रहती, इस वास्ते वह एकभक्ति है।

'प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः'—उस ज्ञानी (प्रेमी) भक्तको मैं अत्यन्त प्यारा हूँ। उसमें अपनी किञ्चिन्मात्र भी इच्छा नहीं है, केवल मेरेमें प्रेम है। इस वास्ते वह मेरेको अत्यन्त प्यारा है। मेरा यह नियम है कि जो भक्त मेरेको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)।

वास्तवमें तो भगवान्‌का अंश होनेसे सभी जीव स्वाभाविक ही भगवान्‌को प्यारे हैं। भगवान्‌के प्यारमें कोई निजी स्वार्थ नहीं है। जैसे माता अपने बच्चोंका पालन करती है, ऐसे ही भगवान् बिना किसी कारणके सबका पालन-पोषण और प्रबन्ध करते हैं। परन्तु जो मनुष्य किसी कारणसे भगवान्‌के सम्मुख हो जाते हैं, उनकी उस सम्मुखताके कारण भगवान्‌में उनके प्रति एक विशेष प्रियता हो जाती है।

जब भक्त सर्वथा निष्काम हो जाता है अर्थात् उसमें लौकिक-पारलौकिक किसी तरहकी भी इच्छा नहीं रहती, तब उसमें स्वतःसिद्ध प्रेम पूर्णरूपसे जाग्रत् हो जाता है। पूर्णरूपसे जाग्रत् होनेका अर्थ है कि प्रेममें कभी किञ्चिन्मात्र भी कमीका अनुभव नहीं होता। प्रेम कभी समाप्त भी नहीं होता; क्योंकि वह अनन्त और प्रतिक्षण वर्धमान है। प्रतिक्षण वर्धमानका तात्पर्य है कि प्रेममें प्रतिक्षण

* जिज्ञासुकी इच्छाको आवश्यकता भी कह सकते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अलौकिक विलक्षणताका अनुभव होता रहता है अर्थात् इधर पहले दृष्टि गयी ही नहीं, इधर हमारा ख्याल गया ही नहीं, अभी दृष्टि गयी—इस तरह प्रतिक्षण भाव और अनुभव होता ही रहता है। इस वास्ते प्रेमको अनन्त बताया गया है।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें भगवान्ने ज्ञानी भक्तको अपना अत्यन्त प्यारा बताया, तो इससे यह असर पड़ता है कि भगवान्ने दूसरे भक्तोंका आदर नहीं किया। इस वास्ते भगवान् अगले श्लोकमें कहते हैं—

श्लोक—

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ १८॥

अर्थ—

पहले कहे हुए सब-के-सब भक्त बड़े उदार अर्थात् श्रेष्ठ भाववाले हैं। परन्तु ज्ञानी अर्थात् प्रेमी तो मेरा स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है। कारण कि वह युक्तात्मा है और जिससे श्रेष्ठ दूसरी कोई गति नहीं है, ऐसे मेरेमें ही दृढ़ आस्थावाला है।

व्याख्या—

'उदाराः सर्व एवैते'—ये सब-के-सब भक्त उदार हैं, श्रेष्ठ भाववाले हैं। भगवान्ने यहाँ जो 'उदाराः' शब्दका प्रयोग किया है, उसमें कई विचित्र भाव हैं; जैसे—

(१) चौथे अध्यायके ग्यारहवें श्लोकमें भगवान्ने कहा है कि 'भक्त जिस प्रकार मेरे शरण होते हैं, उसी प्रकार मैं उनका भजन करता हूँ।' भक्त भगवान्को चाहते हैं और भगवान्

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भक्तको चाहते हैं। परन्तु इन दोनोंमें पहले भक्तने ही सम्बन्ध जोड़ा है और जो पहले सम्बन्ध जोड़ता है, वह उदार होता है। तात्पर्य यह है कि भगवान् सम्बन्ध जोड़ें या न जोड़ें, इसकी भक्त परवा नहीं करता। वह तो अपनी तरफसे पहले सम्बन्ध जोड़ता है और अपनेको समर्पित करता है। इस वास्ते वह उदार है।

(२) देवताओंके भक्त कामना करके विधिपूर्वक उनका भजन करते हैं तो देवताओंको उनकी कामना पूरी करनी ही पड़ती है; परन्तु भगवान्का यह नियम नहीं है। जैसे, कोई बालक पैसे देकर दूकानदारसे दियासलाई या चाकू माँगे तो दूकानदारको वह चीज देनी ही पड़ती है। अगर वह चीज न दे तो वह पैसे नहीं ले सकता। परन्तु बालक अगर पिताजीको पैसे देकर दियासलाई या चाकू माँगे तो पिताजी पैसे ले लेंगे और चीज नहीं देंगे; क्योंकि पिताजीका बालकपर अधिकार है और हितैषिता भी है। ऐसे ही देवताओंके भक्त सकामभावसे विधिपूर्वक यज्ञ, दान, तप आदि कर्म करते हैं तो देवताओंको उनके कर्मोंके अनुसार वह चीज देनी ही पड़ती है; क्योंकि देवतालोग उनका हित-अहित नहीं देखते। परन्तु भगवान्का भक्त अगर भगवान्से कोई चीज माँगता है तो भगवान् अगर उचित समझें तो वह चीज दे देते हैं अर्थात् देनेसे उसकी भक्ति बढ़ती हो तो दे देते हैं और भक्ति न बढ़ती हो, संसारमें फँसावट होती हो तो नहीं देते। कारण कि भगवान् परम पिता हैं और परम हितैषी हैं। तात्पर्य यह हुआ कि अपनी कामनाकी पूर्ति हो अथवा न हो, तो भी वे भगवान्का

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ही भजन करते हैं, भगवान्‌के भजनको नहीं छोड़ते —यह उनकी उदारता ही है ।

(३) संसारके भोग और रुपये-पैसे प्रत्यक्ष सुखदायी दीखते हैं और भगवान्‌के भजनमें प्रत्यक्ष जल्दी सुख नहीं दीखता, फिर भी संसारके प्रत्यक्ष सुखको छोड़कर अर्थात् भोग भोगने और संग्रह करनेकी लालसाको छोड़कर भगवान्‌का भजन करते हैं—यह उनकी उदारता ही है ।

(४) भगवान्‌के दरबारमें माँगनेवालोंको भी उदार कहा जाता है—'यहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई ॥' (विनय-पत्रिका १६५ । ५) अर्थात् कोई कुछ माँगता है, कोई धन चाहता है, कोई दुःख दूर करना चाहता है—ऐसे माँगनेवाले भक्तोंको भी भगवान् उदार कहते हैं, यह भगवान्‌की विशेष उदारता ही है ।

(५) भक्तोंका लौकिक-पारलौकिक कामनापूर्तिके लिये अन्यकी तरफ किञ्चिन्मात्र भी भाव नहीं जाता । वे केवल भगवान्‌से ही कामनापूर्ति चाहते हैं । भक्तोंका यह अनन्यभाव ही उनकी उदारता है ।

'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'—यहाँ 'तु' पदसे ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्तकी विलक्षणता बतायी है कि दूसरे भक्त तो उदार हैं ही, पर ज्ञानीको उदार क्या कहें, वह तो मेरा स्वरूप ही है । स्वरूपमें किसी निमित्तसे, किसी कारणविशेषसे प्रियता नहीं होती, प्रत्युत अपना स्वरूप होनेसे स्वतः-स्वाभाविक प्रियता होती है ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रेममें प्रेमी अपने-आपको प्रेमास्पदपर न्योछावर कर देता है अर्थात् प्रेमी अपनी सत्ता अलग नहीं मानता। ऐसे ही प्रेमास्पद भी स्वयं प्रेमीपर न्योछावर हो जाते हैं। उनको इस प्रेमाद्वैतकी विलक्षण अनुभूति होती है। ज्ञानमार्गका जो अद्वैतभाव है, वह नित्य-निरन्तर अखण्डरूपसे शान्त, सम रहता है। परन्तु प्रेमका जो अद्वैतभाव है, वह एक-एककी अभिन्नताका अनुभव करता हुआ प्रतिक्षण वर्धमान रहता है। प्रेमका अद्वैतभाव एक होते हुए भी दो है और दो होते हुए भी एक है। इस वास्ते प्रेम-तत्त्व अनिर्वचनीय है।

शरीरके साथ सर्वथा अभिन्नता (एकता) मानते हुए भी निरन्तर भिन्नता बनी रहती है और भिन्नताका अनुभव होनेपर भी भिन्नता बनी रहती है। इसी तरह प्रेमतत्त्वमें भिन्नता रहते हुए भी अभिन्नता बनी रहती है और अभिन्नताका अनुभव होनेपर भी अभिन्नता बनी रहती है।

जैसे, नदी समुद्रमें प्रविष्ट होती है तो प्रविष्ट होते ही नदी और समुद्रके जलकी एकता हो जाती है। एकता होनेपर भी दोनों तरफसे जलका एक प्रवाह चलता रहता है अर्थात् कभी नदीका समुद्रकी तरफ और कभी समुद्रका नदीकी तरफ एक विलक्षण प्रवाह चलता रहता है। ऐसे ही प्रेमीका प्रेमास्पदकी तरफ और प्रेमास्पदका प्रेमीकी तरफ एक प्रेमका प्रवाह चलता रहता है। उनका नित्ययोगमें वियोग और वियोगमें नित्ययोग— इस प्रकार प्रेमकी एक विलक्षण लीला अनन्तरूपसे अनन्तकालतक

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

चलती रहती है। उसमें कौन प्रेमास्पद है और कौन प्रेमी है—इसका ख्याल नहीं रहता। वहाँ दोनों ही प्रेमास्पद हैं और दोनों ही प्रेमी हैं। यही 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' पदोंका तात्पर्य है।

'आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्'—क्योंकि जिससे उत्तम गति कोई हो ही नहीं सकती, ऐसे सर्वोपरि मेरेमें ही उसकी श्रद्धा-विश्वासपूर्वक दृढ़ आस्था है। तात्पर्य है कि उसकी वृत्ति किसी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिको लेकर मेरेसे हटती नहीं, प्रत्युत एक मेरेमें ही लगी रहती है।

'केवल भगवान् ही मेरे हैं'—इस प्रकार मेरेमें उसका जो अपनापन है, उसमें अनुकूलता-प्रतिकूलताको लेकर किञ्चिन्मात्र भी फरक नहीं पड़ता, प्रत्युत वह अपनापन दृढ़ होता और बढ़ता ही चला जाता है।

वह युक्तात्मा है अर्थात् वह किसी भी अवस्थामें मेरेसे अलग नहीं होता, प्रत्युत सदा मेरेसे अभिन्न रहता है।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें कहे हुए ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्तकी वास्तविकता और उसके भजनका प्रकार अगले श्लोकमें बताते हैं।

श्लोक—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ १९॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ—

बहुत जन्मोंके अन्तमें अर्थात् मनुष्यजन्ममें 'सब कुछ परमात्मा ही है', ऐसा जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

व्याख्या—

'बहूनां जन्मनामन्ते'—मनुष्य-जन्म सम्पूर्ण जन्मोंका अन्तिम जन्म है। भगवान्ने जीवको मनुष्यशरीर देकर जन्म-मरणके प्रवाहसे अलग होकर अपनी प्राप्तिका पूरा अधिकार दिया है। परन्तु यह मनुष्य भगवान्को प्राप्त न करके रागके कारण फिर पुरानेमें अर्थात् जन्म-मरणके चक्करमें चला जाता है। इस वास्ते भगवान् कहते हैं—**'अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि'** (गीता ९ । ३) जहाँ भगवान् आसुरी योनियों और नरकोंके अधिकारियोंका वर्णन करते हैं, वहाँ दुर्गुण-दुराचारोंके कारण भगवत्प्राप्तिकी सम्भावना न दीखनेपर भी भगवान् कहते हैं—**'मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्'** (गीता १६ । २०)। मेरेको प्राप्त किये बिना ही ये प्राणी अधम गतिको चले गये अर्थात् वे मरनेके बाद भी मनुष्ययोनिमें चले जाते तो कम-से-कम मनुष्य तो रह जाते; पर वे अधम गतिमें चले गये ! तात्पर्य यह हुआ कि मेरी प्राप्तिका पूरा अधिकार प्राप्त करके भी अधम गतिको चले गये !

सन्तोंकी वाणीमें और शास्त्रोंमें आता है कि मनुष्यजन्म केवल अपना कल्याण करनेके लिये मिला है, विषयोंका सुख भोगनेके लिये

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

तथा स्वर्गकी प्राप्तिके लिये नहीं*। इस वास्ते गीताने स्वर्गकी प्राप्ति चाहनेवालोंको मूढ़ और तुच्छ बुद्धिवाले कहा है—'अविपश्चितः' (२ । ४२) और 'अल्पमेधसाम्' (७ । २३)।

यह मनुष्यजन्म सम्पूर्ण जन्मोंका आदि जन्म भी है और अन्तिम जन्म भी है। सम्पूर्ण जन्मोंका आरम्भ मनुष्यजन्मसे ही होता है अर्थात् मनुष्यजन्ममें किये हुए पाप चौरासी लाख योनियों और नरकोंमें भोगनेपर भी समाप्त नहीं होते, बाकी ही रहते हैं, इस वास्ते यह सम्पूर्ण जन्मोंका आदि जन्म है। मनुष्यजन्ममें सम्पूर्ण पापोंका नाश करके, सम्पूर्ण वासनाओंका नाश करके अपना कल्याण कर सकते हैं, भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं, इस वास्ते यह सम्पूर्ण जन्मोंका अन्तिम जन्म है।

भगवान्‌ने आठवें अध्यायके छठे श्लोकमें कहा है कि 'जो मनुष्य अन्त समयमें जिस-जिस भावका स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर जाता है, उस-उस भावको ही वह प्राप्त होता है।' इस तरह मनुष्यको जिस किसी भावका स्मरण करनेमें जो स्वतन्त्रता दी गयी है, इससे मालूम होता है कि भगवान्‌ने मनुष्यको पूरा अधिकार दिया है अर्थात् मनुष्यके उद्धारके लिये भगवान्‌ने अपनी तरफसे यह अन्तिम जन्म दिया है। अब इसके आगे यह नये

---

* एहि तन कर फल बिषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
(मानस ७ । ४३ । १)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जन्मकी तैयारी कर ले अथवा अपना उद्धार कर ले—इसमें यह सर्वथा स्वतन्त्र है*। इस बातको लेकर गीता मनुष्यमात्रको परमात्मप्राप्तिका अधिकारी मानती है और डंकेकी चोटके साथ, खुले शब्दोंमें कहती है कि वर्तमानका दुराचारी-से-दुराचारी, पूर्वजन्मके पापोंके कारण नीच योनिमें जन्मा हुआ पापयोनि और चारों वर्णवाले स्त्री-पुरुष—ये सभी भगवान्‌का आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो सकते हैं (गीता ९ । ३०–३३) । गीताने (९ । ३२ में) ऐसा विचित्र 'पापयोनि' शब्द कहा है, जिसमें शूद्रसे भी नीचे कहे और माने जानेवाले चाण्डाल, यवन आदि प्राणी तथा पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता आदि सभी लिये जा सकते हैं। हाँ, यह बात अलग है कि पशु-पक्षी आदि मनुष्येतर प्राणियोंमें परमात्मा-की तरफ चलनेकी योग्यता नहीं है; परन्तु परमात्माके अंश होनेसे उनके लिये परमात्माकी तरफसे मना नहीं है। उनमेंसे बहुत-से प्राणी भगवान् और संत-महापुरुषोंकी कृपासे तथा तीर्थ और भगवद्धामके प्रभावसे परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे ही देवता भोगयोनि हैं; वे भोगोंमें ही लगे रहते हैं, इस वास्ते उनको 'अपना उद्धार करना है' ऐसा विचार नहीं होता। परंतु वे किसी कारणसे भगवान्‌की तरफ लग जायँ तो उनका भी उद्धार हो जाता है। इन्द्रको भी ज्ञान प्राप्त हुआ था—ऐसा शास्त्रोंमें आता है।

---

* नर तन सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥
(मानस ७ । १२० । ५)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भगवान्‌की तरफसे मनुष्यमात्रका जन्म अन्तिम जन्म है। कारण कि भगवान्‌का यह संकल्प है कि मेरे दिये हुए इस शरीरसे यह अपना कल्याण कर ले। इस वास्ते यह अपना कोई संकल्प न रखकर केवल निमित्तमात्र बन जाय, तो भगवान्‌के संकल्पसे इसका कल्याण हो जाय। जैसे ग्यारहवें अध्यायके चौंतीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—मेरे द्वारा मारे हुएको ही तू मार दे—**'मया हतांस्त्वं जहि'**। तू चिन्ता मत कर—**'मा व्यथिष्ठाः'**। तू युद्ध कर, तेरी विजय होगी—**'युध्यस्व जेतासि'**। इसी तरहसे भगवान्‌ने कृपा करके मनुष्यशरीर दिया है। अगर मनुष्य भगवान्‌से विमुख होकर संसारके रागमें न फँसे, तो भगवान्‌के उस संकल्पसे अनायास ही मुक्त हो जाय।

भगवान्‌का संकल्प ऐसा नहीं है कि साधककी इच्छाके बिना उसका कल्याण हो जाय अर्थात् जैसे शाप या वरदान दिया जाता है, वैसा यह संकल्प नहीं है। तो फिर कैसा है यह संकल्प? भगवान्‌ने मनुष्यको अपना कल्याण करनेकी स्वतन्त्रता इस मनुष्यजन्ममें दी है। अगर यह प्राणी उस स्वतन्त्रताका दुरुपयोग न करे अर्थात् भगवान् और शास्त्रोंसे विपरीत न चले, कम-से-कम अपने विवेकके विरुद्ध न चले तो उससे भगवान् और शास्त्रोंके अनुकूल चलना स्वाभाविक होगा। कारण कि भगवान् और शास्त्रोंसे विपरीत न चलनेपर दो अवस्थाओंमेंसे एक अवस्था स्वाभाविक होगी—या तो वह शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसे कुछ नहीं करेगा या केवल भगवान् और शास्त्रके अनुकूल ही करेगा।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कुछ नहीं करनेकी अवस्थामें अर्थात् कुछ करनेकी रुचि न रहनेकी अवस्थामें मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदिके साथ सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। कारण कि कुछ-न-कुछ करनेकी इच्छासे ही कर्तृत्वाभिमान उत्पन्न होकर अन्तःकरण और इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध जुटता है और अपने लिये करनेसे फलके साथ सम्बन्ध जुटता है। कुछ भी न करनेसे न कर्तृत्व-अभिमान होगा और न फलेच्छा होगी, प्रत्युत स्वरूपमें स्वतः स्थिति होगी।

शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार निष्कामभावपूर्वक कर्म करनेकी अवस्थामें करनेका प्रवाह मिट जाता है और क्रिया तथा पदार्थसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। क्रिया और पदार्थसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेसे नयी कामना होगी नहीं और पुराना राग मिट जायगा तो स्वतः बोध हो जायगा—'तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति' (गीता ४। ३८)।

गीतामें आया है—निष्कामभावसे विधिपूर्वक अपने कर्तव्य-कर्मका पालन किया जाय तो अनादिकालसे बने हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं*। ज्ञानयोगसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे तर जाता है†।

* गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥
(४। २३)

† अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥
(४। ३६)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भगवान् भक्तको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त करा देते हैं*; जो भगवान्‌को अज-अनादि जानता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है†। इस प्रकार कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों योगोंसे पाप नष्ट हो जाते हैं। तात्पर्य यह निकला कि अन्तिम मनुष्यजन्म केवल कल्याणके लिये ही मिला है।

मनुष्यजन्ममें सत्सङ्ग मिल जाय, गीता-जैसे ग्रन्थसे परिचय हो जाय, भगवन्नामसे परिचय हो जाय तो साधकको यह समझना चाहिये कि भगवान्‌ने बहुत विशेषतासे कृपा कर दी है, इस वास्ते अब तो हमारा उद्धार होगा ही, अब आगे हमारा जन्म-मरण नहीं होगा। कारण कि अगर हमारा उद्धार नहीं होना होता तो ऐसा मौका नहीं मिलता। परन्तु 'भगवान्‌की कृपासे उद्धार होगा ही'—इसके भरोसे साधन नहीं छोड़ना चाहिये, प्रत्युत तत्परता और उत्साह-पूर्वक साधनमें लगे रहना चाहिये। समय सार्थक बने, कोई समय खाली न जाय—ऐसी सावधानी हरदम रखनी चाहिये। परन्तु अपने कल्याणकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अबतक जिसने इतना प्रबन्ध किया है, वही आगे भी करेगा। जैसे, किसीने भोजनके लिये निमन्त्रण दे दिया, आसन बिछा दिया, आसनपर बैठा दिया, पत्तल दे दी, लोटेमें जल भरकर पासमें रख दिया। अब कोई चिन्ता

* सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(१८।६६)

† यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१०।३)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करे कि यह व्यक्ति भोजन देगा कि नहीं देगा, तो यह बिल्कुल गलतीकी बात है। कारण कि अगर भोजन नहीं देना होता तो वह निमन्त्रण क्यों देता। भोजनकी तैयारी क्यों करता ? परंतु जब उसने निमन्त्रण दिया है, बुलाया है, तैयारी की है, तो उसको भोजन देना ही पड़ेगा। हम भोजनकी चिन्ता क्यों करें ? अब तो बस, ज्यों-ज्यों भोजनके पदार्थ आयें, त्यों-त्यों उनको पाते जायँ। ऐसे ही जब भगवान्‌ने हमको मनुष्यशरीर दिया है और उद्धारकी सब सामग्री (सत्संग, भगवन्नाम आदि) जुटा दी है, तो हमारा उद्धार होगा ही, अब तो हम संसार-समुद्रके किनारे आ गये हैं*— ऐसा दृढ़ विश्वास करके निमित्तमात्र बनकर साधन करें।

जिसके पूर्वजन्मोंके पुण्य होते हैं; वही भगवान्‌की तरफ चल सकता है—अगर ऐसा माना जाय तो पूर्वजन्मोंके पाप-पुण्योंका फल तो पशु-पक्षी-कीट-पतंग आदि योनिवाले प्राणी भोगते ही हैं, फिर मनुष्यमें और उन प्राणियोंमें क्या फरक रहेगा ? भगवान्‌का कृपा करके मनुष्यशरीर देना कहाँ सार्थक होगा ? तथा मनुष्यजन्मकी विलक्षणता, महिमा क्या हुई ? मनुष्यजन्मकी महिमा तो इसीमें है कि मनुष्य भगवान्‌का आश्रय लेकर अपने कल्याणके मार्गमें लग जाय†।

---

* भवसागरमें नौका नरतन आन लगी कड़खे।
सद्गुरु केवट पार उतारे डूबो मति पड़के॥

† लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्युयाव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥
(श्रीमद्भा० ११। ९। २९)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'वासुदेवः सर्वम्'*—महासर्गके आदिमें एक भगवान् ही अनेक रूपोंमें हो जाते हैं—'सदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' (छान्दोग्य० ६ । २ । ३) और अन्तमें अर्थात् महाप्रलयमें एक भगवान् ही शेष रह जाते हैं—'शिष्यते शेषसंज्ञः' (श्रीमद्भा०

'अनेक जन्मोंके बाद इस परमपुरुषार्थके साधनरूप मनुष्यशरीरको, जो अनित्य होनेपर भी अत्यन्त दुर्लभ है, पाकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शीघ्र-से-शीघ्र, मृत्यु आनेसे पहले ही अपने कल्याण-के लिये प्रयत्न कर ले। विषयभोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं, इसलिये उनके संग्रहमें इस अमूल्य जीवनको नहीं खोना चाहिये।'

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥
(श्रीमद्भा० ११ । २० । १७)

'यह मनुष्यशरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार-सागरसे पार होनेके लिये यह एक सुदृढ़ नौका है, जिसे गुरुरूप नाविक चलाता है और मैं (भगवान्) वायुरूप होकर इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ानेमें सहायता देता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो मनुष्य इस संसार-सागरसे पार नहीं होता, वह अपनी आत्माका हनन करनेवाला अर्थात् पतन करनेवाला है।'

*यहाँ 'वासुदेवः' शब्द पुँल्लिङ्गमें और 'सर्वम्' शब्द नपुंसकलिङ्ग-में आया है। यहाँ 'वासुदेवः सर्वः' भी कह सकते थे; परन्तु ऐसा न कहकर 'वासुदेवः सर्वम्' कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि 'सर्वम्' शब्दमें स्त्री-पुरुष, नपुंसक, स्थावर-जङ्गम आदि सबका समाहार हो जाता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

१०। ३। २५)। इस प्रकार जब आदि और अन्तमें एक भगवान् ही रहते हैं, तो बीचमें दूसरा कहाँसे आया ? क्योंकि संसारकी रचना करनेमें भगवान्के पास अपने सिवाय कोई सामग्री नहीं थी, वे तो स्वयं संसारके रूपसे हुए हैं। इस वास्ते यह सब वासुदेव ही है।

जो चीज आदि और अन्तमें होती है, मध्यमें भी वही चीज होती है। जैसे, सोनेके गहने आदिमें सोना थे और अन्तमें सोना रहेंगे, तो गहनोंमें दूसरी चीज कहाँसे आयेगी ? केवल सोना-ही-सोना है। मिट्टीसे बननेवाले बर्तन पहले मिट्टी थे और अन्तमें मिट्टी हो जायँगे, तो बीचमें मिट्टीके सिवाय क्या है ? केवल मिट्टी-ही-मिट्टी है। खाँड़से बने हुए खिलौने पहले खाँड थे और अन्तमें खाँड ही हो जायँगे, तो बीचमें खाँडके सिवाय क्या है ? केवल खाँड-ही-खाँड है। इसी तरहसे सृष्टिके पहले भगवान् थे और अन्तमें भगवान् ही रहेंगे, तो बीचमें भगवान्के सिवाय क्या है ?। केवल भगवान्-ही-भगवान् हैं। जैसे सोनेको चाहे गहनोंके रूपमें देखें, चाहे पासेके रूपमें देखें, चाहे वर्कके रूपमें देखें, है वह सोना ही। ऐसे ही संसारमें अनेक रूपोंमें, अनेक आकृतियोंमें एक भगवान् ही हैं।

ब्रह्मभूत पुरुष निर्वाण ब्रह्मको प्राप्त होता है (गीता ५।२४); ब्रह्मभूत योगीको उत्तम सुख मिलता है (६। २७)' ब्रह्मभूत भगवान्की पराभक्तिको प्राप्त होता है और उस भक्तिसे तत्त्वको जान-कर उसमें प्रवेश करता है (गीता १८। ५४-५५)—गीताकी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दृष्टिसे ये तीनों ही अवस्थाएँ हैं। अवस्थाओंमें परिवर्तन होता है। परन्तु 'वासुदेवः सर्वम्'—यह अवस्था नहीं है, प्रत्युत वास्तविक तत्त्व है। इसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।

यह जो कुछ संसार दीखता है, सब भगवान्का ही स्वरूप है। भगवान्के सिवाय इस संसारकी स्वतन्त्र सत्ता थी नहीं, है नहीं और कभी होगी भी नहीं। अतः देखने, सुनने और समझनेमें जो कुछ संसार आता है, वह सब-का-सब भगवत्स्वरूप ही है। भगवान्की आज्ञा है—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आपलोग विचारपूर्वक समझ लीजिये।'

इस आज्ञाके अनुसार ही उस ज्ञानी अर्थात् प्रेमीका जीवन हो जाता है। वह सब जगह भगवान्को ही देखता है—'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति' (गीता ६। ३०)। वह सब कुछ करता हुआ भी भगवान्में ही रहता है—'सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते' (गीता ६। ३१)।

किसीको एक जगह भी अपनी प्रिय वस्तु मिल जाती है, तो उसको बड़ी प्रसन्नता होती है, फिर जिसको सब जगह ही अपने

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्यारे इष्टदेवका अनुभव होता है,* उसकी प्रसन्नताका, आनन्दका क्या ठिकाना ! उस आनन्दमें विभोर होकर 'भगवान्‌का प्रेमी भक्त कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी नाचता है और कभी चुप होकर शान्त हो जाता है† । इस तरह उसका जीवन अलौकिक आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है । फिर उसके लिये कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहता । वह सर्वथा पूर्ण हो जाता है अर्थात् उसके लिये किसी

---

* जित देखौं तित स्याममई है ।
स्याम कुंज वन जमुना स्यामा, स्याम गगन घन घटा छई है ॥
सब रंगनमें स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है ।
हौं बौरी, कै लोगन ही की, स्याम पुतरिया बदल गई है ॥
चंद्रसार रविसार स्याम है, मृगमद सार काम विजई है ।
नीलकंठको कंठ स्याम है, मनहुँ स्यामता बेल बई है ॥
श्रुतिको अच्छर स्याम देखियत, दीप सिखा पर स्यामतई है ।
नर देवनकी कौन कथा है, अलख ब्रह्मछबि स्याममई है ॥

† वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । २४)

'जिसकी वाणी मेरे नाम, गुण और लीलाका वर्णन करती-करती गद्गद हो जाती है, जिसका चित्त मेरे रूप, गुण, प्रभाव और लीलाओंको याद करते-करते द्रवित हो जाता है, जो बारंबार रोता रहता है, कभी-कभी हँसने लग जाता है, कभी लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है, कभी नाचने लग जाता है, ऐसा मेरा भक्त सारे संसारको पवित्र कर देता है ।'

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भी अवस्थामें, किसी भी परिस्थितिमें कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रहता।

जो भक्तिमार्गमें चलता है, वह 'यह सत् है और यह असत् है' इस विवेकको लेकर नहीं चलता। उसमें विवेकज्ञानकी प्रधानता नहीं रहती। उसमें केवल भगवद्भावकी ही प्रधानता रहती है। केवल भगवद्भावकी प्रधानता रहनेके कारण उसके लिये यह सब संसार चिन्मय हो जाता है। उसकी दृष्टिमें जड़ता रहती ही नहीं। भगवान्‌में तल्लीनता होनेसे भक्तका शरीर भी जड़ नहीं रहता, प्रत्युत चिन्मय हो जाता है; जैसे—मीराबाईका शरीर (चिन्मय होनेसे) भगवान्‌के विग्रहमें लीन हो गया था।

ज्ञानमार्गमें जहाँ सत्-असत्‌का विवेक होता है, वहाँ असत्‌की कोई सत्ता नहीं रहती, केवल सत्-स्वरूप ही रह जाता है। परन्तु भक्तिमार्गमें सत्-असत् सब कुछ भगवत्स्वरूप ही हो जाता है। फिर भक्त भगवत्स्वरूप संसारकी सेवा करता है। सेवामें पहले तो सेवा, सेवक और सेव्य—ये तीन होते हैं। परन्तु जब भगवद्भावकी अत्यधिक गाढ़ता हो जाती है, तो सेवक-भावकी विस्मृति हो जाती है। फिर भक्त स्वयं सेवारूप होकर सेव्यमें लीन हो जाता है। केवल एक भगवत्तत्त्व ही शेष रह जाता है। इस तरह भगवद्भावमें तल्लीन हुए भगवान्‌के प्रेमी भक्त जहाँ-कहीं भी विचरते हैं तो उनके दर्शन, स्पर्श, भाषण आदिका प्राणियोंपर बड़ा असर पड़ता है।

जबतक मनुष्योंकी पदार्थोंमें भोगबुद्धि रहती है, तबतक उनको उन पदार्थोंका वास्तविक स्वरूप समझमें नहीं आता। परन्तु जब

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भोगबुद्धि सर्वथा हट जाती है, तब केवल भगवत्स्वरूप ही देखनेमें आ जाता है।

मार्मिक बात

'वासुदेवः सर्वम्'—इस तत्त्वको समझनेके दो प्रकार हैं—(१) संसारका अभाव करके परमात्माको रखना अर्थात् संसार नहीं है और परमात्मा है (२) सब कुछ भगवान्-ही-भगवान् हैं। इसमें जो परिवर्तन दीखता है, वह भी भगवान्का ही स्वरूप है, क्योंकि भगवान्के सिवाय उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

उपर्युक्त दोनों ही प्रकार साधकोंके लिये हैं ! जिस साधकका पदार्थोंको लेकर संसारमें आकर्षण (राग) है, उसको 'यह सब कुछ नहीं है, केवल परमात्मा ही है'—इस प्रणालीको अपनाना चाहिये। जिस साधकका पदार्थोंको लेकर संसारमें किञ्चिन्मात्र भी आकर्षण नहीं है और जो केवल भगवान्के स्मरण, चिन्तन, जप, कीर्तन आदिमें लगा रहता है, उसको 'संसाररूपसे सब कुछ भगवान् ही हैं'—इस प्रणालीको अपनाना चाहिये। वास्तवमें देखा जाय तो ये दोनों प्रणालियाँ तत्त्वसे एक ही हैं। इन दोनोंमें फरक इतना ही है कि जैसे सोनेमें गहने और गहनोंके नाम, रूप, आकृति आदि अलग-अलग होते हुए भी सब कुछ सोना-ही-सोना जानना। जहाँपर संसारका अभाव करके परमात्माको तत्त्वसे जानना है, वहाँ 'विवेक'-की प्रधानता है; और जहाँ संसारको भगवत्स्वरूप मानना है, वहाँ 'भाव' की प्रधानता है। निर्गुणके उपासकोंमें विवेककी प्रधानता होती है और सगुणके उपासकोंमें भावकी प्रधानता होती है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

संसारका अभाव करके परमात्मतत्त्वको जानना भी तत्त्वसे जानना है और संसारको भगवत्स्वरूप मानना भी तत्त्वसे जानना है; कारण कि वास्तवमें तत्त्व एक ही है। फरक इतना ही है कि ज्ञानमार्गमें जाननेकी प्रधानता रहती है और भक्तिमार्गमें माननेकी प्रधानता रहती है। इस वास्ते भगवान्‌ने ज्ञानमार्गमें माननेको भी जाननेके अर्थमें लिया है—'इति मत्वा न सज्जते'(३। २८), और भक्तिमार्गमें जाननेको भी माननेके अर्थमें लिया है (५। २९; ९। १३; १०। ३, ७, २४, २७,४१)। इसमें एक खास बात समझनेकी है कि परमात्माको जानना और मानना—दोनों ही ज्ञान हैं, तथा संसारकी सत्ता देकर संसारको जानना और मानना—दोनों ही अज्ञान हैं।

संसारको तत्त्वसे जाननेपर संसारकी स्वतन्त्र सत्ताका अभाव हो जाता है, और परमात्माको तत्त्वसे जाननेपर परमात्माका अनुभव हो जाता है। ऐसे ही संसार भगवत्स्वरूप है—ऐसा दृढ़तासे माननेपर संसारकी स्वतन्त्र सत्ताका अभाव हो जाता है और फिर संसार संसार-रूपसे न दीखकर भगवत्स्वरूप दीखने लग जाता है। तात्पर्य है कि परमात्म-तत्त्वका अनुभव होनेपर जानना और मानना—दोनों एक हो जाते हैं।

'इति ज्ञानवान् मां प्रपद्यते'—जो प्रतिक्षण बदलनेवाले संसारकी सत्ताको मानते हैं, वे अज्ञानी हैं, मूढ़ हैं; परन्तु जिनकी दृष्टि कभी न बदलनेवाले भगवत्तत्त्वकी तरफ रहती है, वे ज्ञानवान् हैं, असम्मूढ़ हैं। 'ज्ञानवान्' कहनेका तात्पर्य है कि वह तत्त्वसे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

समझता है कि सब जगह, सबमें और सबके रूपमें वस्तुतः एक भगवान् ही हैं। ज्ञानवान्‌की शरणागति अर्थार्थी, आर्त और जिज्ञासु भक्तोंकी तरह नहीं है। भगवान्‌ने ज्ञानीको अपनी आत्मा बताया है—'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (७। १८)। जब ज्ञानी भगवान्‌की आत्मा हुआ तो ज्ञानीकी आत्मा भगवान् हुए; अतः एक भगवत्तत्त्वके सिवाय दूसरी सत्ता ही नहीं रही। इस वास्ते ज्ञानी-की शरणागति उन तीनों भक्तोंसे विलक्षण होती है। उसके अनुभव-में एक भगवत्तत्त्वके सिवाय कोई दूसरी सत्ता होती ही नहीं—यही उसकी शरणागति है।

भगवान्‌की दृष्टिमें अपने सिवाय कोई अन्य तत्त्व है ही नहीं—'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' (७। ७)। जैसे सूतकी मालामें मणियोंकी जगह सूतकी गाँठ लगा दीं, तो माला-में सूतके सिवाय अन्य क्या रहा? केवल सूत ही रहा। हाँ, दीखनेमें गाँठें अलग दीखती हैं और धागा अलग दीखता है; परन्तु तत्त्वसे एक ही चीज (सूत) है। ऐसे ही संसारमें परमात्मा व्यापक दीखते हैं, परन्तु तत्त्वसे परमात्मा और संसार एक ही है। उनमें व्याप्य-व्यापकका भाव नहीं है। अतः सब कुछ एक वासुदेव ही है—ऐसा जिसको अनुभव होता है, वह भी भगवत्स्वरूप ही हुआ। भगवत्स्वरूप हो जाना ही उसकी शरणागति है

'स महात्मा सुदुर्लभः'—बहुत-से मनुष्य तो 'हमें परमात्मा-की प्राप्ति करनी है' इस तरफ दृष्टि ही नहीं डालते और ऐसा चाहते ही नहीं। जो इस तरफ दृष्टि डालते हैं, वे भी उत्कण्ठा-पूर्वक अनन्यभावसे अपने जीवनको सफल करनेमें नहीं लगते। जो

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अपना कल्याण करनेमें लगते हैं, वे मूर्खताके कारण परमात्मप्राप्तिसे निराश होकर अपने असली अवसरको खो देते हैं, जिससे वे परम लाभसे वञ्चित रह जाते हैं।

इसी अध्यायके तीसरे श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है कि मनुष्योंमें हजारों और हजारोंमें कोई एक मनुष्य वास्तविक सिद्धिके लिये यत्न करता है। यत्न करनेवाले उन सिद्धोंमें भी कोई एक मनुष्य 'सब कुछ वासुदेव ही है' ऐसा तत्त्वसे जानता है। ऐसा तत्त्वसे जाननेवाला महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि परमात्मा दुर्लभ हैं, प्रत्युत सच्चे हृदयसे परमात्मप्राप्तिके लिये लगनेवाले दुर्लभ हैं। सच्चे हृदयसे परमात्मप्राप्तिके लिये लगनेपर मनुष्यमात्रको परमात्मप्राप्ति हो सकती है, क्योंकि उसकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य शरीर मिला है।

संसारमें सब-के-सब मनुष्य धनी नहीं हो सकते। सांसारिक भोग-सामग्री सबको समान रीतिसे नहीं मिल सकती। परन्तु जो परमात्मतत्त्व भगवान् शंकरको प्राप्त है, सनकादिकोंको प्राप्त है, नारद, वसिष्ठ आदि देवर्षि-महर्षियोंको प्राप्त है, वही तत्त्व सब मनुष्योंको समानरूपसे अवश्य प्राप्त हो सकता है। इसलिये मनुष्यको ऐसा दुर्लभ अवसर कभी नहीं खोना चाहिये।

भगवान्‌की यह एक अलौकिक विलक्षणता है कि वे भूखेके लिये अन्नरूपसे, प्यासेके लिये जलरूपसे और विषयीके लिये शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-रूपसे बनकर आते हैं। वे ही मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ बनकर आते हैं। वे ही संकल्प-विकल्प बनकर आते

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हैं। ही मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ बनकर आते हैं। वे ही संकल्प-विकल्प बनकर आते हैं। वे ही व्यक्ति बनकर आते हैं। परन्तु साथ-ही-साथ दुःख-रूपसे आकर मनुष्यको चेताते हैं कि अगर तुम इन वस्तुओंको भोग्य मानकर इनके भोक्ता बनोगे, तो इसके फलस्वरूप तुमको दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ेगा। इस वास्ते मनुष्यको शर्म आनी चाहिये कि मैं भगवान्‌को भोग-सामग्री बनाता हूँ, मेरे सुखके लिये भगवान्‌को सुखकी सामग्री बनना पड़ता है। भगवान् कितने विचित्र दयालु हैं कि यह प्राणी जो चाहता है, भगवान् वैसे ही बन जाते हैं।

देखने, सुनने और समझनेमें जो कुछ आ रहा है, और जो मन-बुद्धि-इन्द्रियोंका विषय नहीं है, वह सब भगवान् ही हैं और भगवान्‌का ही है—ऐसा मान ले, वास्तविकतासे अनुभव कर ले तो मनुष्य विलक्षण हो जाता है, 'स महात्मा सुदुर्लभः' हो जाता है।

एक वैरागी बाबाजी थे। वे गणेशजीका पूजन किया करते थे। उनके पास सोनेकी बनी हुई एक गणेशजीकी और एक चूहे-की मूर्ति थी। वे दोनों मूर्तियाँ तौलमें बराबर थीं। एक बार बाबाजीने तीर्थोंमें जानेका विचार किया और वे उन मूर्तियों-की बिक्री करनेके लिये सुनारके पास गये। सुनारने उन दोनों मूर्तियोंको तौलकर दोनोंके बराबर दाम बता दिये तो बाबाजी सुनारपर बिगड़ गये कि तू क्या कह रहा है? गणेशजी तो देवता हैं और चूहा उनका वाहन है, पर तू दोनोंका बराबर मूल्य बता रहा है! यह कैसे हो सकता है? सुनार बोला कि बाबाजी! मैं

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

गणेश और चूहेको नहीं खरीदता हूँ, मैं तो सोना खरीदता हूँ। सोनेका जितना वजन होगा, उसके अनुसार ही उसका मूल्य होगा। अगर सुनार गणेश और चूहेको देखेगा तो उसको सोना नहीं दीखेगा और अगर सोनेको देखेगा तो उसको गणेश और चूहा नहीं दीखेगा। इस वास्ते सुनार न गणेशको देखता है, न चूहेको, वह तो केवल सोनेको ही देखता है। ऐसे ही भगवान्‌के साथ अभिन्न हुआ महात्मा संसारको नहीं देखता, वह तो केवल भगवान्‌को ही देखता है।

कोई एक सन्त रास्तेमें चलते-चलते किसी खेतमें लघुशङ्का करनेको बैठे। उस खेतके मालिकने उनको देखा तो मतीरा (तरबूज) चुरानेवाला यही आदमी है—ऐसा समझकर पीछेसे आकर उनके सिरपर लाठी मार दी। फिर देखा कि ये तो कोई बाबाजी हैं; अतः हाथ जोड़कर बोला—'महाराज! मैंने आपको जाना नहीं और चोर समझकर लाठी मार दी, इसलिये महाराज! मुझे माफ करो।' सन्तने कहा—'माफ क्या करना? तूने मेरेको तो मारा नहीं, तूने तो चोरको मारा है।' उसने कहा—'अब क्या करूँ महाराज!' सन्तने कहा—'तेरी जैसे राजी हो, वैसे कर, उसने सन्तको बैल-गाड़ीमें ले जाकर अस्पतालमें भरती कर दिया। वहाँ मलहम-पट्टी करनेके बाद कोई आदमी दूध लेकर आया और बोला—'महाराज! दूध पी लो।' सन्तने कहा—'तू बड़ा चालाक है, होशियार है! तेरे विचित्र-विचित्र रूप हैं। तू विचित्र-विचित्र लीलाएँ करता है। पहले तो तूने लाठीसे मारा और अब कहता है कि दूध पी लो!' वह आदमी डर गया और कहने लगा—'बाबाजी! मैंने नहीं मारा है।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सन्त बोले—'बिलकुल झूठी बात है। मैं पहचानता हूँ, तू ही था। तूने ही मारा है। तेरे सिवाय और कौन आये, कहाँसे आये और कैसे आये? पहले तो मारा लाठीसे और अब आया दूध पिलाने! मैं दूध पी लूँगा, पर था तू ही।' इस तरह बाबाजी तो अपनी 'वासुदेवः सर्वम्' वाली भाषामें बोल रहे थे और वह सोच रहा था कि बाबाजी कहीं फँसा न दें! तात्पर्य यह है कि सन्त केवल भगवान्‌को ही देखते हैं कि लाठी मारनेवाला, मलहम-पट्टी करनेवाला, दूध पिलानेवाला—सब तू ही है।

महात्माओंकी महिमा

जहाँ सन्त-महात्माओंका वर्णन आता है, वहाँ कहा गया है—

१—जो ऊँचे दर्जेके तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुष होते हैं, वे अभिन्नभाव और अखण्डरूपसे केवल अपने स्वरूपमें अथवा भगवत्तत्त्वमें स्थित रहते हैं। उनके जीवनसे, उनके दर्शनसे, उनके चिन्तनसे, उनके शरीरका स्पर्श की हुई वायुके स्पर्शसे जीवोंका कल्याण होता रहता है।

२—जो मनुष्य उन महापुरुषोंकी महिमाको नहीं जानते, उनके सामने वे महापुरुष अपने भावोंसे नीचे उतरते हैं तो कुछ कह देते हैं; जैसे—सन्त-महात्माओंने ऐसा किया है, उनके किये हुए आचरणों और कहे हुए वचनोंके अनुसार ही शास्त्र बनते हैं, आदि।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

३—जब वे इससे भी नीचे उतरते हैं तो कह देते हैं कि सन्त-महात्माओंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये।

४—जिनसे उपर्युक्त बातका पालन नहीं होता, उन साधकों के सामने वे स्वयं ऐसा विधान कर देते हैं कि ऐसा करना चाहिये, ऐसा नहीं करना चाहिये।

५—जब वे इससे भी नीचे उतरते हैं तो 'ऐसा करो और ऐसा मत करो'—ऐसी आज्ञा दे देते हैं।

[सन्तोंकी आज्ञामें जो सिद्धान्त भरा हुआ है, वह आज्ञापालन में उतर आता है। उनकी आज्ञापालनके बिना भी उनके सिद्धान्तका पालन करनेवालोंका कल्याण हो जाता है; परन्तु वे महात्मा आज्ञाके रूपमें जिसको जो कुछ कह देते हैं, उसमें एक विलक्षण शक्ति आ जाती है। आज्ञापालन करनेवालेको कोई परिश्रम नहीं पड़ता और उसके द्वारा स्वतः-स्वाभाविक वैसे आचरण होने लगते हैं।]

६—जो उनकी आज्ञाका पालन नहीं करते, ऐसे नीचे दर्जेके साधकोंको वे कहीं-कहीं, कभी-कभी शाप या वरदान दे देते हैं।

इस परम्परामें देखा जाय तो (१) जो कुछ नहीं करते, निरन्तर अपने स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं—यह उन सन्त-महापुरुषोंका ऊँचा दर्जा हो गया, (२) शास्त्रोंने ऐसा कहा, सन्त-महात्माओंने ऐसा किया—इस तरह संकेत करनेसे उन सन्तोंका दूसरा दर्जा हो गया, (३) सन्त-महात्माओंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये—यह उन सन्तोंका तीसरा दर्जा हो गया, (४) ऐसा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करना चाहिये और ऐसा नहीं करना चाहिये—इस तरहका विधान करनेसे उन सन्तोंका चौथा दर्जा हो गया, (५) तुम ऐसा करो और ऐसा मत करो—यह उन सन्तोंके पाँचवें दर्जेकी बात हो गयी, (६) शाप और वरदान देना उन संतोंके छठे दर्जेकी बात हो गयी। इन सब दर्जोंमें सन्त महापुरुषोंका जो नीचे उतरना है, उसमें उनकी क्रमशः अधिकाधिक दयालुता है। वे शाप और वरदान दे दें, ताड़ना कर दें, इसमें उन सन्तोंका दर्जा तो नीचे हुआ, पर इसमें उनका अत्यधिक त्याग है। कारण कि उन्होंने जीवोंके उद्धारके लिये ही नीचा दर्जा स्वीकार कर लिया। इसमें उनका लेशमात्र भी अपना स्वार्थ नही है।

ऐसे ही भगवान् भी अपने स्वरूपमें नित्य-निरन्तर स्थित रहते हैं, यह उनके ऊँचे दर्जेकी बात है; परन्तु वे ही भगवान् अत्यधिक कृपालुताके कारण, कृपाके परवश होकर जीवोंका उद्धार करनेके लिये अवतार लेकर लीला करते हैं। उनकी लीलाओंको देखने-सुननेसे लोगोंका उद्धार होता है। भगवान् और भी नीचे उतरते हैं तो कहकर बता देते हैं, आज्ञा दे देते हैं। उससे भी नीचे उतरते हैं तो शासन करके लोगोंको सही रास्तेपर लाते हैं। उससे भी नीचे उतरते हैं तो शाप और वरदान दे देते हैं अथवा उसके और संसारके हितके लिये उसका शरीरसे वियोग भी करा देते हैं।

सम्बन्ध—

जो भगवान्‌की महत्ताको समझकर भगवान्‌के शरण होते हैं, ऐसे भक्तोंका वर्णन सोलहवेंसे उन्नीसवें श्लोकतक करनेके बाद अब

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भगवान् अगले तीन श्लोकोंमें देवताओंके शरण होनेवाले पुरुषोंका वर्णन करते हैं।

श्लोक—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

अर्थ—

उन-उन कामनाओंसे जिनका ज्ञान अपहृत हो गया है, ऐसे वे प्राणी अपनी-अपनी प्रकृतिसे नियन्त्रित होकर (देवताओंके) उन-उन नियमोंको धारण करते हुए उन-उन देवताओंके शरण हो जाते हैं* ।

व्याख्या—

'कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः'—उन-उन अर्थात् इस लोकके और परलोकके भोगोंकी कामनाओंसे जिनका ज्ञान ढक गया है, आच्छादित हो गया है। तात्पर्य है कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये जो विवेकयुक्त मनुष्यशरीर मिला है, उस शरीरमें आकर परमात्माकी प्राप्ति न करके वे अपनी कामनाओंकी पूर्ति करनेमें ही लगे रहते हैं।

---

* इसी अध्यायके पन्द्रहवें श्लोकमें वर्णित पुरुषोंका ज्ञान तो मायासे ढका हुआ है और यहाँ वर्णित पुरुषोंका ज्ञान कामनासे ढका हुआ है। वहाँके पुरुष तो कामनापूर्तिके लिये जड़-पदार्थोंका आश्रय लेते हैं और यहाँके पुरुष कामनापूर्तिके लिये देवताओंका आश्रय लेते हैं। वहाँके पुरुष दुष्टताके कारण नरकोंमें जाते हैं और यहाँके पुरुष कामनाके कारण बार-बार जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

संयोगजन्य सुखकी इच्छाको कामना कहते हैं। कामना दो तरहकी होती है—यहाँके भोग भोगनेके लिये धन-संग्रहकी कामना और स्वर्गादि परलोकके भोग भोगनेके लिये धर्म-संग्रहकी कामना।

धन-संग्रहकी कामना दो तरहकी होती है—पहली, यहाँ चाहे जैसे भोग भोगें, चाहे जब, चाहे जहाँ और चाहे जितना धन खर्च करें, सुख-आरामसे दिन बीतें आदिके लिये अर्थात् संयोगजन्य सुखके लिये धन-संग्रहकी कामना होती है और दूसरी, मैं धनी हो जाऊँ, धनसे मैं बड़ा बन जाऊँ, आदिके लिये अर्थात् अभिमानजन्य सुखके लिये धन-संग्रहकी कामना होती है। ऐसे ही धर्म-संग्रहकी कामना भी दो तरहकी होती है—पहली, यहाँ मैं धर्मात्मा कहलाऊँ और दूसरी, परलोकमें मेरेको भोग मिलें। इन सभी कामनाओंसे सत्-असत्, नित्य-अनित्य, सार-असार, बन्ध-मोक्ष आदिका विवेक आच्छादित हो जाता है। विवेक आच्छादित होनेसे वे यह समझ ही नहीं पाते कि जिन पदार्थोंकी हम कामना कर रहे हैं, वे पदार्थ हमारे साथ कबतक रहेंगे और हम उन पदार्थोंके साथ कबतक रहेंगे।

'प्रकृत्या नियताः स्वया'*—कामनाओंके कारण विवेक ढका जानेसे वे अपनी प्रकृतिसे नियंत्रित रहते हैं अर्थात् अपने

---

* यहाँ जो 'प्रकृत्या नियताः स्वया' कहा है, इसीको सत्रहवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' कहा है।

'स्वया' कहनेका तात्पर्य है कि अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार सबकी कामनाएँ भी अलग-अलग होती हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

स्वभावके परवश रहते हैं । यहाँ 'प्रकृति' शब्द व्यक्तिगत स्वभाव-का वाचक है, व्यष्टि प्रकृतिका वाचक नहीं । यह व्यक्तिगत स्वभाव सबमें मुख्य होता है—**'स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते'** । इस वास्ते व्यक्ति-गत स्वभावको कोई छोड़ नहीं सकता—**'या यस्य प्रकृतिः स्वभाव-जनिता केनापि न त्यज्यते'** । परन्तु इस स्वभावमें जो दोष हैं, उनको तो मनुष्य छोड़ ही सकता है । अगर उन दोषोंको मनुष्य छोड़ नहीं सकता, तो फिर मनुष्यजन्मकी महिमा ही क्या हुई! मनुष्य अपने स्वभावको निर्दोष, शुद्ध बनानेमें सर्वथा स्वतन्त्र है। परन्तु जबतक मनुष्यके भीतरमें कामनापूर्तिका उद्‌देश्य रहता है, तबतक वह अपने स्वभावको सुधार नहीं सकता और तभीतक स्वभावकी प्रबलता और अपनेमें निर्बलता दीखती है । परन्तु जिसका उद्देश्य कामना मिटानेका हो जाता है, वह अपनी प्रकृति-(स्वभाव-) का सुधार कर सकता है अर्थात् उससे प्रकृतिकी परवशता नहीं रहती ।

'तं तं नियममास्थाय'—कामनाओंके कारण अपनी प्रकृतिके परवश होनेपर मनुष्य कामनापूर्तिके अनेक उपायोंको और विधियों-(नियमों-) को ढूँढ़ता रहता है । अमुक यज्ञ करनेसे कामना पूरी होगी कि अमुक तप करनेसे ? अमुक दान देनेसे कामना पूरी होगी कि अमुक मन्त्रका जप करनेसे ? आदि-आदि उपाय खोजता रहता है । उन उपायोंकी विधियाँ अर्थात् नियम अलग-अलग होते हैं। जैसे-अमुक कामनापूर्तिके लिये अमुक विधिसे यज्ञ आदि करना चाहिये और अमुक स्थानपर करना चाहिये आदि-आदि । इस तरह मनुष्य

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अपनी कामनापूर्तिके लिये अनेक उपायों और नियमोंको धारण करता है।

'प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः'—कामनापूर्तिके लिये अनेक उपायों और नियमोंको धारण करके मनुष्य अन्य देवताओंकी शरण लेते हैं, मेरी शरण नहीं लेते। यहाँ 'अन्यदेवताः' कहनेका तात्पर्य है कि वे देवताओंको भगवत्स्वरूप नहीं मानते हैं, प्रत्युत उनकी अलग सत्ता मानते हैं, इसीसे उनको अन्तवाला (नाशवान्) फल मिलता है—'अन्तवत्तु फलं तेषां' (गीता ७ । २३)। अगर वे देवताओंकी अलग सत्ता न मानकर उनको भगवत्स्वरूप ही मानें, तो फिर उनको अन्तवाला फल नहीं मिलेगा, प्रत्युत अविनाशी फल मिलेगा।

यहाँ देवताओंकी शरण लेनेमें दो कारण मुख्य हुए—एक कामना और एक अपने स्वभावकी परवशता।

श्लोक—

यो यो यां यां* तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥ २१॥

* जैसे यहाँ 'यो यो यां यां' आया है, वैसे ही आठवें अध्यायके छठे श्लोकमें 'यं यं वापि स्मरन्भावम्' आया है। दो बार 'यत्' शब्दका अर्थात् 'यो यो,' 'यां याम्' और 'यं यम्' शब्दोंका प्रयोग करनेका तात्पर्य है कि जैसे मनुष्य उपासना करनेमें स्वतन्त्र है अर्थात् देवताओं-की उपासना करे, चाहे मेरी उपासना करे—इसमें वह स्वतन्त्र है। ऐसे ही अन्तकालमें स्मरण करनेमें भी मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है अर्थात् मेरा स्मरण करे चाहे किसी औरका स्मरण करे—इसमें वह स्वतन्त्र है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अर्थ—

जो-जो भक्त जिस-जिस देवताका श्रद्धापूर्वक पूजन करना चाहता है, उस-उस देवताके प्रति मैं उसकी श्रद्धाको दृढ़ कर देता हूँ।

व्याख्या—

'यो यो यां यां तनुं भक्तः .... तामेव विदधाम्यहम्'—जो-जो मनुष्य जिस-जिस देवताका भक्त होकर श्रद्धापूर्वक यजन-पूजन करना चाहता है, उस-उस मनुष्यकी श्रद्धा उस-उस देवताके प्रति मैं अचल यानी दृढ़ कर देता हूँ। वे दूसरोंमें न लगकर मेरेमें ही लग जायँ—ऐसा मैं नहीं करता। यद्यपि उन-उन देवताओंमें लगनेसे कामनाके कारण उनका कल्याण नहीं होता। फिर भी मैं उनको उनमें लगा देता हूँ, तो जो मेरेमें श्रद्धा-प्रेम रखते हैं, अपना कल्याण करना चाहते हैं, उनकी श्रद्धाको मैं अपने प्रति दृढ़ कैसे नहीं करूँगा अर्थात् अवश्य करूँगा। कारण कि मैं प्राणिमात्रका सुहृद् हूँ—'सुहृदं सर्वभूतानाम्'(गीता ५। २९)।

इसपर यह शङ्का होती है कि आप सबकी श्रद्धा अपनेमें ही दृढ़ क्यों नहीं करते ? इसपर भगवान् मानो यह कहते हैं कि अगर मैं सबकी श्रद्धाको अपने प्रति दृढ़ करवाऊँ तो मनुष्यजन्मकी स्वतन्त्रता, सार्थकता ही कहाँ रही ? तथा मेरी स्वार्थपरताका त्याग कहाँ हुआ ? अगर लोगोंको अपनेमें ही लगानेका मेरा आग्रह रहे तो यह कोई बड़ी बात नहीं है; क्योंकि ऐसा बर्ताव तो दुनियामें सभी स्वार्थी जीवोंका स्वाभाविक होता है। इस वास्ते मैं इस स्वार्थपरताको मिटाकर ऐसा स्वभाव सिखाना चाहता हूँ कि कोई

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मनुष्य पक्षपात करके दूसरोंसे केवल अपनी पूजा-प्रतिष्ठा करवानेमें ही न लगा रहे और किसीको पराधीन न बनाये ।

अब दूसरी शङ्का यह होती है कि आप उनकी श्रद्धाको उन देवताओंके प्रति दृढ़ कर देते हैं, इससे आपकी साधुता तो सिद्ध हो गयी, पर उन जीवोंका तो आपसे विमुख होनेसे अहित ही हुआ ? इसका समाधान यह है कि अगर मैं उनकी श्रद्धाको दूसरोंसे हटाकर अपनेमें लगानेका भाव रखूँगा तो उनको मेरेमें अश्रद्धा पैदा होगी । परन्तु अगर मैं अपनेमें लगानेका भाव नहीं रखूँगा और उनको स्वतन्त्रता दूँगा, तो उस स्वतन्त्रताको पानेवालोंमें जो बुद्धिमान् होंगे, वे मेरे इस बर्तावको देखकर मेरी तरफ ही आकृष्ट होंगे । इस वास्ते उनके उद्धारका यही तरीका बढ़िया है ।

अब तीसरी शङ्का यह होती है कि जब आप स्वयं उनकी श्रद्धाको दूसरोंमें दृढ़ कर देते हैं, तो फिर उस श्रद्धाको कोई मिटा ही नहीं सकता । फिर तो उनका पतन ही होता चला जायगा ? इसका समाधान यह है कि मैं उनकी श्रद्धाको देवताओंके प्रति ही दृढ़ करता हूँ, दूसरोंके प्रति नहीं—ऐसी बात नहीं है । मैं तो उनकी इच्छाके अनुसार ही उनकी श्रद्धाको दृढ़ करता हूँ और अपनी इच्छाको बदलनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है, योग्य है । इच्छाको बदलनेमें वे परवश, निर्बल और अयोग्य नहीं हैं । अगर इच्छाको बदलनेमें वे परवश होते तो फिर मनुष्यजन्मकी महिमा ही कहाँ रही ? और इच्छा-(कामना-) का त्याग करनेकी आज्ञा भी भगवान् नहीं दे सकते थे—'जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्' (गीता ३ । ४३) ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ २२ ॥

अर्थ—

उस (मेरे द्वारा दृढ़ की हुई) श्रद्धासे युक्त होकर वह पुरुष (सकामभावपूर्वक) उस देवताकी उपासना करता है और उसकी वह कामना पूरी भी होती है; परन्तु वह कामना-पूर्ति मेरे द्वारा विहित की हुई ही होती है।

व्याख्या—

'स तया श्रद्धया युक्तः'……'मयैव विहितान्हि तान्'— मेरे द्वारा दृढ़ की हुई श्रद्धासे सम्पन्न हुआ वह पुरुष उस देवताकी आराधनाकी चेष्टा करता है और उस देवतासे जिस कामनापूर्तिकी आशा रखता है, उस कामनाकी पूर्ति होती है। यद्यपि वास्तवमें उस कामनाकी पूर्ति मेरे द्वारा ही की हुई होती है, परन्तु वह उसको देवतासे ही पूरी की हुई मानता है। वास्तवमें देवताओंमें मेरी ही शक्ति है और मेरे ही विधानसे वे उनकी कामनापूर्ति करते हैं।

जैसे सरकारी अफसरोंको एक सीमित अधिकार दिया जाता है कि तुमलोग अमुक विभागमें अमुक अवसरपर इतना खर्च कर सकते हो, इतना इनाम दे सकते हो। ऐसे ही देवताओंमें एक सीमातक ही देनेकी शक्ति होती है, इस वास्ते वे उतना ही दे सकते हैं, अधिक नहीं। देवताओंमें अधिक-से-अधिक इतनी शक्ति होती है कि वे अपने-अपने उपासकोंको अपने-अपने लोकोंमें ले जा सकते

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हैं। परन्तु अपनी उपासनाका फल भोगनेपर उनको वहाँसे लौटकर पुनः संसारमें आना पड़ता है (गीता ८ । १६) ।

यहाँ 'मयैव' कहनेका तात्पर्य है कि संसारमें स्वतः जो कुछ संचालन हो रहा है, वह सब मेरा ही किया हुआ है। इस वास्ते जिस किसीको जो कुछ मिलता है, वह सब मेरे द्वारा विधान किया हुआ ही मिलता है। कारण कि मेरे सिवाय विधान करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। अगर कोई मनुष्य इस रहस्यको समझ ले, तो फिर वह केवल मेरी तरफ ही खिंचेगा।

सम्बन्ध—

अब भगवान् उपासनाके अनुसार फलका वर्णन करते हैं।

श्लोक—

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३ ॥

अर्थ—

परन्तु उन अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंको उन देवताओंकी आराधनाका फल अन्तवाला (नाशवान्) ही मिलता है। देवताओंका पूजन करनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरेको ही प्राप्त होते हैं।

व्याख्या—

'अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्'—देवताओंकी उपासना करनेवाले अल्पबुद्धियुक्त पुरुषोंको अन्तवाला अर्थात् सीमित और नाशवान् फल मिलता है। यहाँ शङ्का होती है कि भगवान्के द्वारा विधान किया हुआ फल तो नित्य ही होना चाहिये, फिर उनको अनित्य फल क्यों मिलता है ? इसका समाधान यह है कि एक तो

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

उनमें नाशवान् पदार्थोंकी कामना है और दूसरी बात, वे देवताओंको भगवान्‌से अलग मानते हैं। इस वास्ते उनको नाशवान् फल मिलता है। परन्तु उनको दो उपायोंसे अविनाशी फल मिल सकता है—एक तो वे कामना न रखकर (निष्काम-भावसे) देवताओंकी उपासना करें तो उनको अविनाशी फल मिल जायगा और दूसरा वे देवताओंको भगवान्‌से भिन्न न समझकर अर्थात् भगवत्स्वरूप ही समझकर उनकी उपासना करें तो यदि कामना रह भी जायगी, तो भी समय पाकर उनको अविनाशी फल मिल सकता है अर्थात् भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

यहाँ 'तत्' कहनेका तात्पर्य है कि फल तो मेरा विधान किया हुआ ही मिलता है, पर कामना होनेसे वह नाशवान् हो जाता है।

यहाँ 'अल्पमेधसाम्' कहनेका तात्पर्य है कि उनको नियम तो अधिक धारण करने पड़ते हैं तथा विधियाँ भी अधिक करनी पड़ती हैं, पर फल मिलता है सीमित और अन्तवाला। परन्तु मेरी आराधना करनेमें इतने नियमोंकी जरूरत नहीं है तथा उतनी विधियोंकी भी आवश्यकता नहीं है, पर फल मिलता है असीम और अनन्त। इस तरह देवताओंकी उपासनामें नियम हों अधिक, फल हो थोड़ा और हो जाय जन्म-मरणरूप बन्धन और मेरी आराधनामें नियम हों कम, फल हो अधिक और हो जाय कल्याण—ऐसा होने-पर भी वे उन देवताओंकी उपासनामें लगते हैं और मेरी उपासनामें नहीं लगते। इस वास्ते उनकी बुद्धि अल्प है, तुच्छ है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि'—देवताओंका पूजन करनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करनेवाले मेरेको ही प्राप्त होते हैं। यहाँ 'अपि' पदसे यह सिद्ध होता है कि मेरी उपासना करनेवालोंकी कामनापूर्ति भी हो सकती है और मेरी प्राप्ति तो हो ही जाती है अर्थात् मेरे भक्त सकाम हों या निष्काम, वे सब-के-सब मेरेको ही प्राप्त होते हैं। परन्तु भगवान्‌की उपासना करनेवालोंकी सभी कामनाएँ पूरी हो जायँ, यह नियम नहीं है। भगवान् उचित समझें तो पूरी भी कर दें और न भी करें अर्थात् उनका हित होता हो तो पूरी कर देते हैं और अहित होता हो तो कितना ही पुकारनेपर तथा रोनेपर भी पूरी नहीं करते।

यह नियम है कि भगवान्‌का भजन करनेसे भगवान्‌के नित्य-सम्बन्धकी स्मृति हो जाती है; क्योंकि भगवान्‌का सम्बन्ध सदा रहनेवाला है। इस वास्ते भगवान्‌की प्राप्ति होनेपर फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते' (१५। ६)। परन्तु देवताओंका सम्बन्ध सदा रहनेवाला नहीं है, क्योंकि वह कर्मजनित है। इस वास्ते देवतालोककी प्राप्ति होनेपर संसारमें लौट कर आना ही पड़ता है—'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' (९। २१)।

मेरा भजन करनेवाले मेरेको ही प्राप्त होते हैं—इसी भावको लेकर भगवान्‌ने अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—इन चारों प्रकारके भक्तोंको सुकृती और उदार कहा है (७। १६, १८)।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यहाँ **'मद्भक्ता यान्ति मामपि'** का तात्पर्य है कि जीव, कैसे ही आचरणोंवाला क्यों न हो अर्थात् वह दुराचारी-से-दुराचारी ही क्यों न हो, आखिर है तो मेरा ही अंश । उसने केवल आसक्ति और आग्रहपूर्वक संसारके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया है । अगर संसारकी आसक्ति और आग्रह न हो तो उसे मेरी प्राप्ति हो ही जायगी ।

विशेष बात—

सब कुछ भगवत्स्वरूप ही है और भगवान्का विधान भी भगवत्स्वरूप है—ऐसा होते हुए भी भगवान्से भिन्न संसारकी सत्ता मानना और अपनी कामना रखना—ये दोनों ही पतनके कारण हैं । इनमेंसे यदि कामनाका सर्वथा नाश हो जाय तो संसार भगवत्स्वरूप दीखने लग जायगा और यदि संसार भगवत्स्वरूप दीखने लग जाय तो कामना मिट जायगी । फिर मात्र क्रियाओंके द्वारा भगवान्की सेवा होने लग जायगी । अगर संसारका भगवत्स्वरूप दीखना और कामनाका नाश होना—दोनों एक साथ हो जायँ तो फिर कहना ही क्या है !

सम्बन्ध—

यद्यपि देवताओंकी उपासनाका फल सीमित और अन्तवाला होता है, फिर भी मनुष्य उसमें क्यों उलझ जाते हैं, भगवान्में क्यों नहीं लगते ?—इसका उत्तर अगले श्लोकमें देते हैं ।

श्लोक—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ—

बुद्धिहीन मनुष्य मेरे सर्वश्रेष्ठ अविनाशी परमभावको न जानते हुए अव्यक्त अर्थात् मन-इन्द्रियोंसे पर मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको मनुष्यकी तरह ही शरीर धारण करनेवाला मानते हैं।

व्याख्या—

'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं.........ममाव्ययमनुत्तमम्'—जो निर्बुद्धि मनुष्य हैं और जिनकी मेरेमें श्रद्धा-भक्ति नहीं है, वे अल्पमेधाके कारण अर्थात् समझकी कमीके कारण मेरेको साधारण मनुष्यकी तरह अव्यक्तसे व्यक्त होनेवाला* अर्थात् जन्मने-मरनेवाला मानते हैं। मेरा जो अविनाशी अव्ययभाव है अर्थात् जिससे बढ़कर दूसरा कोई हो ही नहीं सकता और देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें परिपूर्ण रहता हुआ इन सबसे अतीत सदा एकरूप रहनेवाला, निर्मल और असम्बद्ध है—ऐसे मेरे अविनाशी भावको वे नहीं जानते और मेरा अवतार लेनेका जो तत्त्व है, उसको नहीं जानते। इस वास्ते वे मेरेको साधारण मनुष्य मानकर मेरी उपासना नहीं करते, प्रत्युत देवताओंकी उपासना करते हैं।

'अबुद्धयः' पदका यह अर्थ नहीं है कि उनमें बुद्धिका अभाव है, प्रत्युत बुद्धिमें विवेक रहते हुए भी अर्थात् संसारको उत्पत्ति-विनाशशील जानते हुए भी इसे मानते नहीं—यही उनमें बुद्धिरहितपना है, मूढ़ता है।

---

* अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥
(गीता २। २८)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दूसरा भाव यह है कि कामनाको कोई रख नहीं सकता, कामना रह नहीं सकती; क्योंकि कामना पहले नहीं थी और कामनापूर्तिके बाद भी कामना नहीं रहेगी। वास्तवमें कामनाकी सत्ता ही नहीं है, फिर भी उसका त्याग नहीं कर सकते—यही अबुद्धिपना है।

मेरे स्वरूपको न जाननेसे वे अन्य देवताओंकी उपासनामें लग गये और उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंकी कामनामें लग जानेसे बुद्धिहीन मनुष्य मेरेसे विमुख हो गये। यद्यपि वे मेरेसे अलग नहीं हो सकते तथा मैं भी उनसे अलग नहीं हो सकता, तथापि कामनाके कारण ज्ञान ढका जानेसे वे देवताओंकी तरफ खिंच जाते हैं। अगर वे मेरेको जान जाते, तो फिर केवल मेरा ही भजन करते।

(१) बुद्धिमान् पुरुष वे होते हैं, जो भगवान्‌के शरण होते हैं। वे भगवान्‌को ही सर्वोपरि मानते हैं। (२) अल्पमेधावी पुरुष वे होते हैं, जो देवताओंके शरण होते हैं। वे देवताओंको अपनेसे बड़ा मानते हैं, जिससे उनमें थोड़ी नम्रता, सरलता रहती है। (३) अबुद्धिवाले पुरुष वे होते हैं, जो भगवान्‌को देवता-जैसा भी नहीं मानते; किन्तु साधारण मनुष्य-जैसा ही मानते हैं। वे अपनेको ही सर्वोपरि, सबसे बड़ा मानते हैं (गीता १६। १४-१५)। यही तीनोंमें अन्तर है।

'परं भावमजानन्तः' का तात्पर्य है कि मैं अज रहता हुआ, अविनाशी होता हुआ और लोकोंका ईश्वर होता हुआ ही अपनी प्रकृतिको वशमें करके योगमायासे प्रकट होता हूँ—इस मेरे परमभाव-को बुद्धिहीन मनुष्य नहीं जानते।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'अनुत्तमम्' कहनेका तात्पर्य है कि पन्द्रहवें अध्यायमें जिसको क्षरसे अतीत और अक्षरसे उत्तम बताया है अर्थात् जिससे उत्तम दूसरा कोई है ही नहीं, ऐसे मेरे अनुत्तम भावको वे नहीं जानते।

विशेष बात

इस (चौबीसवें) श्लोकका अर्थ कोई ऐसा करते हैं कि '(ये) अव्यक्तं मां व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते (ते) अबुद्धयः' अर्थात् जो सदा निराकार रहनेवाले मेरेको केवल साकार मानते हैं, वे निर्बुद्धि हैं; क्योंकि वे मेरे अव्यक्त, निर्विकार और निराकार स्वरूपको नहीं जानते। दूसरे कोई ऐसा अर्थ करते हैं कि '(ये) व्यक्तिमापन्नं माम् अव्यक्तं मन्यन्ते (ते) अबुद्धयः' अर्थात् मैं अवतार लेकर तेरा सारथि बना हुआ हूँ—ऐसे मेरेको केवल निराकार मानते हैं, वे निर्बुद्धि हैं; क्योंकि वे मेरे सर्वश्रेष्ठ अविनाशी भावको नहीं जानते।

उपर्युक्त दोनों अर्थोंमेंसे कोई भी अर्थ ठीक नहीं है। कारण कि ऐसा अर्थ माननेपर केवल निराकारको माननेवाले साकाररूपकी और साकाररूपके उपासकोंकी निन्दा करेंगे, और केवल साकार माननेवाले निराकाररूपकी और निराकाररूपके उपासकोंकी निन्दा करेंगे। यह सब एकदेशीयपना ही है।

पृथ्वी, जल, तेज आदि जो महाभूत हैं, जो कि विनाशी और विकारी हैं, वे भी दो-दो तरहके होते हैं—स्थूल और सूक्ष्म। जैसे, स्थूलरूपसे पृथ्वी साकार है और परमाणुरूपसे निराकार है;

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जल वर्फ, बूँदें, बादल और भापरूपसे साकार है और परमाणु
निराकार है, तेज (अग्नितत्त्व) काठ और दियासलाईमें रहता
निराकार है और प्रज्वलित होनेसे साकार है इत्यादि । इस त
भौतिक सृष्टिके भी दोनों रूप होते हैं और दोनों होते हुए
वास्तवमें वह दो नहीं होती । साकार होनेपर निराकारमें कोई
नहीं लगती और निराकार होनेपर साकारमें कोई वाधा नहीं ल
फिर परमात्माके साकार और निराकार दोनों होनेमें क्या वाधा है
अर्थात् कोई बाधा नहीं । वे साकार भी हैं और निराकार भी
सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं ।

गीता साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण दोनोंको मानती है
नवें अध्यायके चौथे श्लोकमें भगवान्‌ने अपनेको 'अव्यक्तमूर्ति'
है । चौथे अध्यायके छठे श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है कि मैं अज
भी प्रकट होता हूँ, अविनाशी होता हुआ भी अन्तर्धान हो जाता
और सबका ईश्वर होता हुआ भी आज्ञापालक (पुत्र और शिष्य
बन जाता हूँ । अतः निराकार होते हुए साकार होनेमें और साकार
होते हुए निराकार होनेमें भगवान्‌में किञ्चिन्मात्र भी अन्तर न
आता । ऐसे भगवान्‌के स्वरूपको न जाननेके कारण लोग उ
विषयमें तरह-तरहकी कल्पनाएँ किया करते हैं ।

सम्बन्ध—

भगवान्‌को साधारण मनुष्य माननेमें क्या कारण है ? इस
अगला श्लोक कहते हैं ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

श्लोक—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

अर्थ—

जो मूढ़ मनुष्य मेरेको अज और अविनाशी ठीक तरहसे नहीं जानते (मानते), उन सबके सामने योगमायासे अच्छी तरहसे आवृत हुआ मैं प्रकट नहीं होता ।

व्याख्या—

'मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्'—मैं अज और अविनाशी हूँ अर्थात् जन्म-मरणसे रहित हूँ । ऐसा होनेपर भी मैं प्रकट और अन्तर्धान होनेकी लीला करता हूँ अर्थात् जब मैं अवतार लेता हूँ तो अज (अजन्मा) रहता हुआ ही अवतार लेता हूँ और अव्ययात्मा रहता हुआ ही अन्तर्धान हो जाता हूँ । जैसे सूर्य भगवान् उदय होते हैं तो हमारे सामने आ जाते हैं और अस्त होते हैं तो हमारे नेत्रोंसे ओझल हो जाते हैं, छिप जाते हैं, ऐसे ही मैं केवल प्रकट और अन्तर्धान होनेकी लीला करता हूँ । जो मेरेको इस प्रकार जन्म-मरणसे रहित मानते हैं, वे तो असम्मूढ हैं (गीता १० । ३, १५ । १९) । परन्तु जो मेरेको साधारण प्राणियोंकी तरह जन्मने-मरनेवाला मानते हैं, वे मूढ़ हैं (गीता ७ । १५, ९ । ११) ।

भगवान्‌को अज, अविनाशी न माननेमें कारण है कि इस प्राणीका भगवान्‌के साथ जो स्वतः अपनापन है, उसको भूलकर इसने शरीरको अपना मान लिया कि 'यह शरीर ही मैं हूँ और

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यह शरीर मेरा है'। इस वास्ते उसके सामने परदा आ ग
जिससे वह भगवान्‌को भी अपने समान ही जन्मने-मरने
मानने लगा।

मूढ़ मनुष्य मेरेको अज और अविनाशी नहीं जानते। उन
न जाननेमें दो कारण हैं—एक तो मेरा योगमायासे छिपा रहना और
एक उनकी मूढ़ता। जैसे, किसी शहरमें किसीका एक घर है और
अपने घरमें बन्द है तथा शहरके सब-के-सब घर शहरकी चारदी
(परकोटा) में बन्द हैं। अगर वह मनुष्य बाहर निकलना चाहे
अपने घरसे निकल सकता है, पर शहरकी चारदीवारीसे निक
उसके हाथकी बात नहीं है। हाँ, यदि उस शहरका राजा चाहे
वह चारदीवारीका दरवाजा भी खोल सकता है और उसके घ
दरवाजा भी खोल सकता है। अगर वह मनुष्य अपने घरका दर
नहीं खोल सकता तो राजा उस दरवाजेको तोड़ भी सकता है
ऐसे ही यह प्राणी अपनी मूढ़ताको दूर करके अपने नित्य स्वरू
जान सकता है। परन्तु सर्वथा भगवत्तत्त्वका बोध तो भगवान्‌
कृपासे ही हो सकता है। भगवान् जिसको जनाना चाहें, व
उनको जान सकता है—'सोइ जानइ जेहि देहु जना'
(मानस २। १२६। २)। परन्तु अगर मनुष्य सर्वथा भगवान्‌के
शरण हो जाय तो भगवान् उसके अज्ञानको भी दूर कर देते हैं और
अपनी मायाको भी दूर कर देते हैं।

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः'—उन सबके साम
अर्थात् उस मूढ़ समुदायके सामने मैं भगवद्रूपसे प्रकट नहीं होता

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कारण कि वे मेरेको अज-अविनाशी भगवद्रूपसे जानना अथवा मानना ही नहीं चाहते, प्रत्युत वे मेरेको साधारण मनुष्य मानकर मेरी अवहेलना करते हैं। अतः उनके सामने मैं अपने भगवत्स्वरूपसे कैसे प्रकट होऊँ? तात्पर्य है कि जो मेरेको अज-अविनाशी नहीं जानते, प्रत्युत मेरेको जन्मने-मरनेवाला मानते हैं, उनके सामने मैं अपनी योगमायासे छिपा रहता हूँ और सामान्य मनुष्य जैसा-ही रहता हूँ। परन्तु जो मेरेको अज, अविनाशी और सम्पूर्ण भूतोंका ईश्वर मानते हैं, मेरेमें श्रद्धा-विश्वास रखते हैं, उनके भावोंके अनुसार मैं उनके सामने प्रकट रहता हूँ।

भगवान्‌की योगमाया विचित्र, विलक्षण, अलौकिक है। उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। उन अनन्त शक्तियोंसे अनन्त लीलाएँ और सृष्टिके अनन्त कार्य होते रहते हैं। भक्तोंका भगवान्‌के प्रति जैसा भाव होता है, उसके अनुसार ही वे योगमाया-समावृत भगवान्‌को देखते हैं*।

---

* मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥
(श्रीमद्भा० १०।४३।१७)

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
(मानस १।२४०।२)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यहाँ भगवान्‌ने कहा है कि जो मेरेको अज-अविनाशी नहीं जानते, वे मूढ़ हैं और दसवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें कहा है कि देवता और महर्षि मेरे प्रभवको नहीं जानते* । यहाँ शङ्का होती है कि भगवान्‌को अज-अविनाशी नहीं जानना और उनके प्रभवको नहीं जानना—ये दोनों बातें तो एक ही हो गयीं, परन्तु यहाँ न जाननेवालोंको मूढ़ बताया है और वहाँ उनको मूढ़ नहीं बताया है, ऐसा क्यों ? इसका समाधान है कि भगवान्‌के प्रभवको अर्थात् प्रकट होनेको न जानना दोषी नहीं है; क्योंकि वहाँ भगवान्‌ने स्वयं कहा है कि मैं सब तरहसे देवताओं और महर्षियोंका आदि हूँ। जैसे बालक अपने पिताके जन्मको कैसे देख सकता है ? क्योंकि वह उस समय पैदा ही नहीं हुआ था। वह तो पितासे पैदा हुआ है। इस वास्ते उसका पिताके जन्मको न जानना दोषी नहीं है। ऐसे ही भगवान्‌के प्रकट होनेके हेतुओंको पूरा न जानना देवताओं और महर्षियोंके लिये कोई दोषी नहीं है। भगवान्‌के प्रकट होनेको कोई सर्वथा जान ही नहीं सकता। इस वास्ते वहाँ देवताओं और महर्षियोंको मूढ़ नहीं बताया है। मनुष्य भगवान्‌को अज-अविनाशी जान सकते हैं, मान सकते हैं। अगर वे भगवान्‌को अज-अविनाशी नहीं मानते तो यह उनका दोष है। इस वास्ते उनको यहाँ मूढ़ कहा है।

---

* न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥
(गीता १० । २)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सम्बन्ध—

जो भगवान्‌को अज-अविनाशी नहीं मानते, उनके ही सामने मायाका परदा रहता है, पर भगवान्‌के सामने वह परदा नहीं रहता—इसका वर्णन अगले श्लोकमें करते हैं।

श्लोक—

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ २६॥

अर्थ—

हे अर्जुन! जो प्राणी भूतकालमें हो चुके हैं, जो वर्तमानमें हैं और जो भविष्यमें होंगे, उन सब प्राणियोंको तो मैं जानता हूँ, परन्तु मेरेको कोई (मूढ़ मनुष्य) नहीं जानता।

व्याख्या—

'वेदाहं समतीतानि ....मां तु वेद न कश्चन'— यहाँ भगवान्‌ने प्राणियोंके लिये तो भूत, वर्तमान और भविष्य-कालके तीन विशेषण दिये हैं; परन्तु अपने लिये 'अहं वेद' पदोंसे केवल वर्तमानकालका ही प्रयोग किया है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण प्राणी कालके अन्तर्गत हैं और भगवान् कालसे अतीत हैं। देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदि बदलते रहते हैं और भगवान् हरदम वैसे-के-वैसे ही रहते हैं। कालके अन्तर्गत आये हुए प्राणियोंका ज्ञान सीमित होता है और भगवान्‌का ज्ञान असीम है। उन प्राणियोंमें भी कोई योगका अभ्यास करके ज्ञान बढ़ा लेंगे तो वे 'युञ्जान योगी' होंगे और जिस समय जिस वस्तुको जानना चाहेंगे, उस समय उसी वस्तुको वे जानेंगे। परन्तु मैं तो 'युक्त योगी' हूँ

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अर्थात् बिना योगका अभ्यास किये ही मैं मात्र जीवोंको और संसारको स्वतः जानता हूँ।

'मां तु वेद न कश्चन' का तात्पर्य है कि पूर्वश्लोकमें कहे मूढसमुदायमेंसे मेरेको कोई नहीं जानता अर्थात् जो मेरेको अज अविनाशी नहीं मानते, प्रत्युत मेरेको साधारण मनुष्य-जैसा जन्मने-मरनेवाला मानते हैं, उन मूढोंमेंसे मेरेको कोई भी नहीं जानता; मैं सबको जानता हूँ। जैसे बाँसकी चिक दरवाजेपर लटका देनेसे भीतरवाले तो बाहरवालोंको पूर्णतया देखते हैं, पर बाहरवाले दरवाजेपर टँगी हुई चिकको ही देखते हैं, भीतरवालोंको नहीं। ऐसे ही योगमायारूपी चिकसे अच्छी तरहसे आवृत होनेके कारण भगवान्को मूढ लोग नहीं देख पाते, पर भगवान् सबको देखते हैं।

इसपर एक शङ्का होती है कि भगवान् जब भविष्यमें होनेवाले सब प्राणियोंको जानते हैं, तो किसकी मुक्ति होगी और कौन बन्धनमें रहेगा—यह भी जानते ही हैं; क्योंकि भगवान्का ज्ञान नित्य है। इस वास्ते वे जिनकी मुक्ति जानते हैं, उनकी तो मुक्ति होगी और जिनको बन्धनमें जानते हैं, वे बन्धनमें ही रहेंगे। भगवान्की इस सर्वज्ञतासे तो मनुष्यकी मुक्ति परतन्त्र हो गयी, मनुष्यके प्रयत्न-साध्य नहीं रही।

इसका समाधान यह है कि इसी अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें भगवान् यह कह आये हैं कि बहुत जन्मोंके इस अन्तिम मनुष्यजन्ममें जो 'सब कुछ वासुदेव ही है' ऐसे मेरे शरण होता है, वह महात्मा दुर्लभ है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्यशरीरमें ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्राणियोंको यह स्वतन्त्रता है कि वे अपने अनन्त जन्मोंके सञ्चित कर्म-समुदायका नाश करके भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं, अपनी मुक्ति कर सकते हैं। अगर ऐसी बात न हो तो शास्त्रोंमें मनुष्यशरीर-की जो महिमा गायी है, वह सब व्यर्थ हो जाय और ऐसा करो, ऐसा मत करो—यह विधि-निषेध भी व्यर्थ हो जाय।

बिना कारण कृपा करनेवाले प्रभु जीवको मनुष्यशरीर देते हैं*, जिससे यह जीव मनुष्यशरीर पाकर स्वतन्त्रतासे अपना कल्याण कर ले। गीतामें ग्यारहवें अध्यायके तैंतीसवें श्लोकमें जैसे भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—**'मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'** अर्थात् मेरे द्वारा ये पहले ही मारे जा चुके हैं, तू केवल निमित्तमात्र बन जा। ऐसे ही मनुष्यमात्रको विवेक और उद्धार-की पूरी सामग्री देकर भगवान्‌ने कहा है कि तू अपना उद्धार कर ले अर्थात् अपने उद्धारमें तू केवल निमित्तमात्र बन जा, मेरी कृपा तेरे साथ है। इस मनुष्यशरीररूपी नौकाको पाकर मेरी कृपारूपी अनुकूल हवासे जो भवसागरको नहीं तरता अर्थात् अपना उद्धार नहीं करता, वह आत्महत्यारा है—**'मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा'** (श्रीमद्भा० ११। २०। १७)। गीतामें भी भगवान्‌ने कहा है कि जो परमात्माको सब जगह समान रीतिसे परिपूर्ण देखता है, वह अपनी हत्या नहीं करता, इस वास्ते

* कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
(मानस ७। ४३। ३)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

वह परमगतिको प्राप्त होता है* । इससे भी यह सिद्ध हुआ कि मनुष्यशरीर प्राप्त होनेपर अपना उद्धार करनेका अधिकार, साम समझ आदि पूरी सामग्री मिलती है । ऐसा अमूल्य अवसर पा भी जो अपना उद्धार नहीं करता, वह अपनी हत्या करता है इसीसे वह जन्म-मरणमें जाता है । अगर यह जीव मनुष्यशरीर पा शास्त्र और भगवान्‌से विरुद्ध न चले तथा अपनी सामग्रीका ठीक उपयोग करे, तो इसकी मुक्ति स्वतःसिद्ध है । इसमें कोई बाधा ही नहीं सकती ।

मनुष्यके लिये यह खास बात है कि भगवान्‌ने कृपा करके सामर्थ्य, समझ आदि सामग्री दी है, उसका मैं दुरुपयोग न करूँगा । भगवान्‌के सिद्धान्तके विरुद्ध नहीं चलूँगा—ऐसा वह निश्चय कर ले और उस निश्चयपर डटा रहे । अगर अपनी असाम से कभी दुरुपयोग भी हो जाय तो मनमें उसकी जलन पैदा जाय और भगवान्‌से कह दे कि 'हे नाथ ! मेरेसे गलती हो गयी अब ऐसी गलती कभी नहीं करूँगा । हे नाथ ! ऐसा बल दो, जिससे कभी आपके सिद्धान्तसे विपरीत न चलूँ' तो उसका प्रायश्चित्त हो जाता है और भगवान्‌से मदद मिलती है ।

मनुष्यकी असामर्थ्य दो तरहसे होती है—एक असामर्थ्य होती है कि वह कर ही नहीं सकता; जैसे—किसी नौकरसे कोई

---

* समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥
(१३ । २८)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मालिक यह कह दे कि तुम इस इमारतको उठाकर एक मीलतक ले जाकर रख दो तो वह यह काम कर ही नहीं सकता । दूसरी असामर्थ्य यह होती है कि वह कर तो सकता है और करना चाहता भी है, फिर भी समयपर प्रमादवश नहीं करता । यह असामर्थ्य साधकमें आती रहती है । इसको दूर करनेके लिये साधक भगवान्‌से कह दे कि 'हे नाथ ! मैं ऐसा प्रमाद फिर कभी न करूँ, ऐसी मेरेको शक्ति दो ।'

भगवान्‌की ही दी हुई स्वतन्त्रताके कारण भगवान् ऐसा संकल्प कभी कर ही नहीं सकते कि इस जीवके इतने जन्म होंगे । इतना ही नहीं, चर-अचर अनन्त जीवोंके लिये भी भगवान् ऐसा संकल्प नहीं करते कि उनके अनेक जन्म होंगे । हाँ, यह बात जरूर है कि मनुष्यके सिवाय दूसरे प्राणियोंके पीछे परम्परासे कर्म-फलोंका ताँता लगा हुआ है, जिससे वे बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं । ऐसी परम्परामें पड़े हुए जीवोंमेंसे कोई जीव किसी कारणसे मनुष्यशरीरमें अथवा किसी अन्य योनिमें भी प्रभुके चरणोंकी शरण हो जाता है, तो भगवान् उसके अनन्त जन्मोंके पापोंको नष्ट कर देते हैं—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
(मानस ५ । ४३ । १)

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने यह कहा कि मुझे कोई भी नहीं जानता, तो भगवान्‌को न जाननेमें मुख्य कारण क्या है ? इसका उत्तर अगले श्लोकमें देते हैं ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥ २७॥

अर्थ—

हे भारत ! इच्छा (राग) और द्वेषसे उत्पन्न होनेवाले द्वन्द्व मोहसे मोहित सम्पूर्ण प्राणी संसारमें मूढ़ताको अर्थात् जन्म-मरणको प्राप्त हो रहे हैं।

व्याख्या—

'इच्छाद्वेषसमुत्थेन .... सर्गे यान्ति परंतप'—इच्छा और द्वेषसे द्वन्द्वमोह पैदा होता है, जिससे मोहित होकर प्राणी भगवान्से बिल्कुल विमुख हो जाते हैं और विमुख होनेसे बार-बार संसारमें जन्म लेते हैं।

मनुष्यको संसारसे विमुख होकर केवल भगवान्में लगनेकी आवश्यकता है। भगवान्में न लगनेमें बड़ी बाधा क्या है ? मनुष्यशरीर विवेक-प्रधान है, इस वास्ते मनुष्य की प्रवृत्ति और निवृत्ति पशु-पक्षियोंकी तरह न होकर अपने विवेकके अनुसार होनी चाहिये, परन्तु मनुष्य अपने विवेकको महत्त्व न देकर राग और द्वेषको लेकर ही प्रवृत्ति और निवृत्ति करता है, जिससे उसका पतन होता है।

मनुष्यकी दो मनोवृत्तियाँ हैं—एक तरफसे हटाना और एक तरफ लगाना। इन दोनों वृत्तियोंको जब मनुष्य संसारमें ही लगा देता है अर्थात् अनुकूल पदार्थ, व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति आदि मिलते रहें और प्रतिकूल पदार्थ, व्यक्ति आदि न मिलें—इस प्रकार

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

दोनों बातें संसारमें ही हो जाती हैं, तो मनुष्य भगवान्‌से सर्वथा विमुख हो जाता है। तात्पर्य है कि वृत्तियोंको हटाने और लगानेकी बात जब केवल संसारमें ही हो जाती है, तो वह अनुकूलता और प्रतिकूलतामें उलझ जाता है। फिर भगवान्‌की तरफ चलनेका अवसर ही नहीं मिलता। कभी-कभी वह सत्संग-की बात भी सुनता है, शास्त्र भी पढ़ता है, अच्छी बातपर विचार भी करता है, मनमें अच्छी बात पैदा हो जाती है तो उसको ठीक भी समझता है। फिर भी उसके मनमें रागके कारण यह बात गहरी बैठी रहती है कि मुझे तो सांसारिक अनुकूलताको प्राप्त करना है और प्रतिकूलताको हटाना है, यह मेरा खास काम है; क्योंकि इसके बिना मेरा जीवन-निर्वाह नहीं होगा। इस प्रकार वह हृदयमें दृढ़तासे राग-द्वेषको पकड़कर रखता है, जिससे सुनने, पढ़ने और विचार करनेपर भी उसकी वृत्ति राग-द्वेषरूप द्वन्द्वको नहीं छोड़ती। इसीसे वह परमात्माकी तरफ चल नहीं सकता।

द्वन्द्वोंमें भी अगर उसका राग मुख्यरूपसे एक ही विषयमें हो जाय, तो भी ठीक है। जैसे, भक्त बिल्वमंगलकी वृत्ति चिन्तामणि नामक वेश्यामें लग गयी, तो उनकी वृत्ति संसारसे तो हट ही गयी। जब वेश्याने यह ताड़ना की—'ऐसे हाड़-मांसके शरीरमें तू आकृष्ट हो गया, अगर भगवान्‌में इतना आकृष्ट हो जाता तो तू निहाल हो जाता।' इससे उनकी वृत्ति वेश्यासे हटकर भगवान्‌में लग गयी और उनका उद्धार हो गया। इसी तरहसे गोपियोंका भगवान्‌में राग हो गया, तो वह राग भी कल्याण करनेवाला हो गया। शिशुपालका

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भगवान्‌के साथ वैर (द्वेष) रहा तो वैरपूर्वक भगवान्‌का चिन्तन करनेसे भी उसका कल्याण हो गया। कंसको भगवान्‌से भय हुआ, तो भयवृत्तिसे भगवान्‌का चिन्तन करनेसे उसका भी कल्याण हो गया। हाँ, यह बात जरूर है कि वैर और भयसे भगवान्‌का चिन्तन करनेसे शिशुपाल और कंस भक्तिके आनन्दको नहीं ले सके। तात्पर्य यह है कि किसी भी तरहसे भगवान्‌की तरफ आकर्षण हो जाय तो मनुष्यका उद्धार हो जाता है*। परन्तु संसारमें राग-द्वेष, काम, क्रोध, ठीक-बेठीक, अनुकूल-प्रतिकूल आदि द्वन्द्व रहनेसे मूढ़ता दृढ़ होती है और मनुष्यका पतन हो जाता है।

दूसरी रीतिसे यों समझें कि संसारका सम्बन्ध द्वन्द्वसे दृढ़ होता है। जब कामनाको लेकर मनोवृत्तिका प्रवाह संसारकी तरफ हो जाता है, तो सांसारिक अनुकूलता और प्रतिकूलताको लेकर राग-द्वेष हो जाते हैं अर्थात् एक ही पदार्थ कभी ठीक लगता है, कभी बेठीक लगता है; कभी उसमें राग होता है, कभी द्वेष होता है, जिनसे संसारका सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है। इस वास्ते भगवान्‌ने दूसरे अध्यायमें 'निर्द्वन्द्वः' (२ । ४५) पदसे द्वन्द्वरहित होनेकी आज्ञा दी है। निर्द्वन्द्व पुरुष सुखपूर्वक मुक्त होता है—'निर्द्वन्द्वो हि

---

* कामाद् द्वेषाद् भयात् स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः॥
(श्रीमद्भा० ७ । १ । २९)

'एक नहीं, अनेक मनुष्य कामसे, द्वेषसे, भयसे और स्नेहसे अपने मनको भगवान्‌में लगाकर एवं अपने सारे पाप धोकर वैसे ही भगवान्‌को प्राप्त हुए हैं, जैसे भक्त भक्तिसे।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते'(५ । ३)। सुख-दुःख सबमें द्वन्द्वोंसे रहित होकर ज्ञानीजन अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं— 'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्' (१५ । ५) । भगवान्ने पाप होनेमें खास हेतु द्वन्द्वको ही बताया है (३ । ३७), और खास शत्रु भी इनको ही बताया है (३ । ३४) । जो द्वन्द्वमोहसे रहित होते हैं, वे दृढ़व्रती होकर भगवान्का भजन करते हैं (७ । २८) इत्यादि रूपसे गीतामें द्वन्द्वरहित होनेकी बात बहुत बार आयी है ।

जन्म-मरणमें जानेका कारण क्या है ? शास्त्रोंकी दृष्टिसे तो जन्म-मरणका कारण अज्ञान है; परन्तु सन्तवाणीको देखा जाय तो जन्म-मरणका खास कारण रागके कारण प्राप्त परिस्थितिका दुरुपयोग है । फलेच्छापूर्वक शास्त्रविहित कर्म करनेसे और प्राप्त परिस्थितिका दुरुपयोग करनेसे अर्थात् भगवदाज्ञा-विरुद्ध कर्म करनेसे सत्-असत् योनियोंकी प्राप्ति होती है अर्थात् देवताओंकी योनि, चौरासी लाख योनि और नरक प्राप्त होते हैं ।

प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करनेसे सम्मोह अर्थात् जन्म-मरण मिट जाता है । उसका सदुपयोग कैसे करें ? हमारेको जो अवस्था, परिस्थिति मिली है, उसका दुरुपयोग न करनेका निर्णय किया जाय कि 'हम दुरुपयोग नहीं करेंगे अर्थात् शास्त्र और लोक-मर्यादाके विरुद्ध काम नहीं करेंगे ।' इस प्रकार रागरहित होकर दुरुपयोग न करनेका निर्णय होनेपर सदुपयोग अपने-आप होने लगेगा अर्थात् शास्त्र और लोक-मर्यादाके अनुकूल काम होने लगेगा ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जब सदुपयोग होने लगेगा तो उसका हमें अभिमान नहीं होगा। कारण कि हमने तो दुरुपयोग न करनेका विचार किया है, सदुपयोग करनेका विचार तो हमने किया ही नहीं, फिर करनेका अभिमान कैसे? इससे तो कर्तृत्व-अभिमानका त्याग हो जायगा। जब हमने सदुपयोग किया ही नहीं तो उसका फल भी हम कैसे चाहेंगे! क्योंकि सदुपयोग तो हुआ है, किया नहीं। अतः इससे फलेच्छाका त्याग हो जायगा। कर्तृत्व-अभिमान और फलेच्छाका त्याग होनेसे अर्थात् बन्धनका अभाव होनेसे मुक्ति स्वतःसिद्ध है।

प्रायः साधकोंमें यह बात गहराईसे बैठी हुई है कि साधन-भजन, जप-ध्यान आदि करनेका विभाग अलग है और सांसारिक काम-धंधा करनेका विभाग अलग है। इन दो विभागोंके कारण साधक भजन-ध्यान आदिको तो बढ़ा देते हैं, पर सांसारिक काम-धंधा करते हुए राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिकी तरफ ध्यान नहीं देते, प्रत्युत ऐसी दृढ़ भावना बना लेते हैं कि काम-धंधा करते हुए तो राग-द्वेष होते ही हैं, ये मिटनेवाले थोड़े ही हैं। इस भावनासे बड़ा भारी अनर्थ यह होता है कि साधकके राग-द्वेष बने रहते हैं, जिससे उसके साधनमें जल्दी उन्नति नहीं होती। वास्तवमें साधक चाहे पारमार्थिक कार्य करे, चाहे सांसारिक कार्य करे, उसके अन्तःकरणमें राग-द्वेष नहीं रहने चाहिये।

पारमार्थिक और सांसारिक क्रियाओंमें भेद होनेपर भी साधकके भावमें भेद नहीं होना चाहिये अर्थात् पारमार्थिक और सांसारिक-दोनों क्रियाएँ करते समय साधकका भाव एक ही रहना चाहिये कि मैं

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

साधक हूँ और मुझे भगवत्प्राप्ति करनी है।' इस प्रकार क्रियाभेद तो रहेगा ही और रहना भी चाहिये, पर भावभेद नहीं रहेगा। भावभेद न रहनेसे अर्थात् एक भगवत्प्राप्तिका ही भाव (उद्देश्य) रहनेसे पारमार्थिक और सांसारिक—दोनों ही क्रियाएँ साधन बन जायँगी।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें भगवान्ने द्वन्द्वमोहसे मोहित होनेवालोंकी बात बतायी, अब अगले श्लोकमें द्वन्द्वमोहसे रहित होनेवालोंकी बात कहते हैं।

श्लोक—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

अर्थ—

परन्तु जिन पुण्यकर्मा मनुष्योंके पाप नष्ट हो गये हैं, वे द्वन्द्व-मोहसे रहित हुए दृढ़व्रती होकर मेरा भजन करते हैं।

व्याख्या—

'येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्'—द्वन्द्वमोहसे मोहित पुरुष तो भजन नहीं करते और जो द्वन्द्वमोहसे मोहित नहीं हैं, वे भजन करते हैं, तो भजन न करनेवालोंकी अपेक्षा भजन करनेवालों-की विलक्षणता बतानेके लिये यहाँ 'तु' पद आया है।

जिन पुरुषोंने 'अपनेको तो परमात्मप्राप्ति ही करना है'—इस उद्देश्यको पहचान लिया है अर्थात् जिनको उद्देश्यकी यह स्मृति आ गयी है कि यह मनुष्यशरीर भोग भोगनेके

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

लिये नहीं है, यह शरीर तो भगवान्‌की कृपासे केवल उनकी प्राप्तिके लिये ही मिला है—ऐसा जिनका दृढ़ निश्चय हो गया है, वे पुरुष ही 'पुण्यकर्मा' हैं। तात्पर्य यह हुआ कि अपने एक निश्चयसे जो शुद्धि होती है, पवित्रता आती है, वह यज्ञ, दान, तप आदि क्रियाओं-से नहीं आती। कारण कि 'हमें तो एक परमात्माकी तरफ ही चलना है, यह निश्चय स्वयंमें होता है और यज्ञ, दान आदि क्रियाएँ बाहरसे होती हैं।

'अन्तगतं पापम्' कहनेका भाव यह है कि जब यह निश्चय हो गया कि 'मेरेको तो केवल परमात्माकी तरफ ही चलना है' तो इस निश्चयसे भगवान्‌की सम्मुखता होनेसे विमुखता चली गयी, जिससे पापोंकी जड़ ही कट गयी; क्योंकि भगवान्‌से विमुखता ही पापोंका खास कारण है। सन्तोंने कहा है कि डेढ़ ही पाप है और डेढ़ ही पुण्य हैं। भगवान्‌से विमुख होना पूरा पाप है और दुर्गुण-दुराचारों-में लगना आधा पाप है। ऐसे ही भगवान्‌के सम्मुख होना पूरा पुण्य है और सद्गुण-सदाचारोंमें लगना आधा पुण्य है। तात्पर्य यह हुआ कि जब प्राणी भगवान्‌के सर्वथा शरण हो जाता है, तो उसके पापों-का अन्त हो जाता है।

दूसरा भाव यह है कि पापोंका मूल कारण कामना है (गीता ३। ३७); क्योंकि कामनासे ही मनुष्य पाप करता है। अगर कामना न हो तो पाप लगता ही नहीं (गीता १८। १७)। भगवान्‌ने भी चौथे अध्यायके चौदहवें श्लोकमें अपने लिये कहा है कि मेरी कर्मोंमें स्पृहा अर्थात् कामना नहीं है, इस वास्ते मेरेको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कर्म लिप्त नहीं करते। तात्पर्य यह हुआ कि जब कामना मिट जाती है, तो पापोंका अन्त हो जाता है।

तीसरा भाव यह है कि जिनका लक्ष्य केवल भगवान् हैं, वे पुण्यकर्मा हैं; क्योंकि भगवान्का लक्ष्य होनेपर सब पाप नष्ट हो जाते हैं। भगवान्का लक्ष्य होनेपर पुराने किसी संस्कारसे पाप हो भी जायगा, तो भी वह रहेगा नहीं; क्योंकि हृदयमें विराजमान भगवान् उस पापको नष्ट कर देते हैं—**'विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः'** (श्रीमद्भा० ११ । ५ । ४२)

चौथा भाव यह है कि मनुष्य सच्चे हृदयसे यह दृढ़ निश्चय कर ले कि 'अब आगे मैं कभी पाप नहीं करूँगा' तो उसके पाप नहीं रहते।

'ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः'—पुण्यकर्मा लोग द्वन्द्वरूप मोहसे रहित होकर और दृढ़व्रती होकर भगवान्का भजन करते हैं। द्वन्द्व कई तरहका होता है; जैसे—

१—भगवान्में लगें या संसारमें लगें ? क्योंकि परलोकके लिये भगवान्का भजन आवश्यक है और इहलोकके लिये संसारका काम आवश्यक है।

२—वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत और सौर—इन सम्प्रदायोंमेंसे किस सम्प्रदायमें चलें और किस सम्प्रदायमें न चलें ?

३—परमात्माके स्वरूपके विषयमें द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद आदि कई तरहके सिद्धान्त हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

इनमेंसे किस सिद्धान्तको स्वीकार करें और किस सिद्धान्तको स्वीकार न करें ?

४—परमात्माकी प्राप्तिके भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, ध्यानयोग, हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग, आदि कई मार्ग हैं। उनमेंसे किस मार्गपर चलें और किस मार्गपर न चलें ?

५—संसारमें होनेवाले अनुकूल-प्रतिकूल, हर्ष-शोक, ठीक-बेठीक, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि सभी द्वन्द्व हैं।

उपर्युक्त सभी पारमार्थिक और सांसारिक द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त हुए पुरुष दृढ़व्रती होकर भगवान्‌का भजन करते हैं।

मनुष्यका एक ही पारमार्थिक उद्देश्य हो जाय, तो पारमार्थिक और सांसारिक सभी द्वन्द्व मिट जाते हैं। पारमार्थिक उद्देश्यवाले साधक अपनी-अपनी रुचि, योग्यता और श्रद्धा-विश्वासके अनुसार अपने-अपने इष्टको सगुण मानें, साकार मानें, निर्गुण मानें, निराकार मानें, द्विभुज मानें, चतुर्भुज मानें अथवा सहस्रभुज आदि कैसे ही मानें, पर संसारकी विमुखतामें और परमात्माकी सम्मुखतामें वे सभी एक हैं। उपासनाकी पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न होनेपर भी लक्ष्य सबका एक होनेसे कोई भी पद्धति छोटी-बड़ी नहीं है। जिस साधकका जिस पद्धतिमें श्रद्धा-विश्वास होता है, उसके लिये वही पद्धति श्रेष्ठ है और उसको उसी पद्धतिका ही अनुसरण करना चाहिये। परंतु दूसरोंकी पद्धति या निष्ठाकी निन्दा करना, उसको दो नम्बरका मानना दोष है। जबतक यह साधनविषयक द्वन्द्व रहता है और साधक-में अपने पक्षका आग्रह और दूसरोंका निरादर रहता है, तबतक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

साधकको भगवान्के समग्ररूपका अनुभव नहीं होता । इस वास्ते आदर तो सब पद्धतियों और निष्ठाओंका करे, पर अनुसरण अपनी पद्धति और निष्ठाका ही करे; तो इससे साधनविषयक द्वन्द्व मिट जाता है ।

मनुष्यमात्रकी यह प्रकृति होती है, ऐसा एक स्वभाव होता है कि जब वह पारमार्थिक बातें सुनता है, तो वह यह समझता है कि साधन करके अपना कल्याण करना है; क्योंकि मनुष्यजन्मकी सफलता इसीमें है । परंतु जब वह व्यवहारमें आता है, तो वह ऐसा सोचता है कि 'साधन-भजनसे क्या होगा ? सांसारिक काम तो करना पड़ेगा; क्योंकि संसारमें बैठे हैं; चीज-वस्तुकी आवश्यकता पड़ती है, उसके बिना काम कैसे चलेगा ? इस वास्ते संसारका काम मुख्य रहेगा ही और भजन-स्मरणका नित्य-नियम तो वक्तपर कर लेना है; क्योंकि सांसारिक कामकी जितनी आवश्यकता है, उतनी भजन-स्मरण, नित्य-नियमकी नहीं ।' ऐसी धारणा रखकर भगवान्में लगे हुए मनुष्य बहुत हैं ।

भगवान्की तरफ चलनेवालोंमें भी जिन्होंने एक निश्चय कर लिया है कि 'मेरेको तो अपना कल्याण करना है, सांसारिक लाभ-हानि कुछ भी हो जाय, इसकी कोई परवा नहीं । कारण कि सांसारिक जितनी भी सिद्धि है, वह आँख मीचते ही कुछ नहीं है— 'सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति' ।' और इन सांसारिक वस्तुओंको प्राप्त करनेसे कितने दिनतक हमारा काम चलेगा ? ऐसा विचार करके वे एक भगवान्की तरफ ही लग जाते हैं और सांसारिक

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आदर-निरादर आदिकी तरफ ध्यान नहीं देते, ऐसे मनुष्य ही द्वन्द्व-मोहसे छूटे हुए हैं ।

'दृढव्रताः' कहनेका तात्पर्य है कि हमें तो केवल परमात्माकी तरफ ही चलना है, हमारा और कोई लक्ष्य है ही नहीं । वह परमात्मा द्वैत है कि अद्वैत है, शुद्धाद्वैत है कि विशिष्टाद्वैत है, सगुण है कि निर्गुण, द्विभुज है कि चतुर्भुज है—इससे हमें कोई मतलब नहीं है* । वह हमारे लिये कैसी भी परिस्थिति भेजे; हमें कहीं भी रखे और कैसे भी रखे—इससे भी हमें कोई मतलब नहीं है । बस, हमें तो केवल परमात्माकी तरफ चलना है—ऐसे निश्चयसे वे दृढ़व्रती हो जाते हैं ।

परमात्माकी तरफ चलनेवालोंके सामने तीन बातें आती हैं—परमात्मा कैसे हैं ? जीव कैसा है ? और जगत् कैसा है ? तो उनके हृदयमें इनका सीधा उत्तर यह होता है कि 'परमात्मा हैं ।' वे कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं आदिसे हमें कोई मतलब नहीं, हमें तो परमात्मासे मतलब है । जीव क्या है, उसका कैसा स्वरूप है, वह कहाँ रहता है, इससे हमें कोई मतलब नहीं । हमें तो इतना ही काफी है कि 'मैं हूँ ।' जगत् कैसा है, ठीक है कि बेठीक है, हमें इससे कोई मतलब नहीं । हमें तो इतना ही समझना काफी है कि

* जैसे कि गजेन्द्रने कहा था—

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात् प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥
(श्रीमद्भा० ८ । २ । ३३)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'जगत् त्याज्य है' और हमें इसका त्याग करना है। तात्पर्य यह हुआ कि परमात्माकी तरफ चलना है, संसारको छोड़ना है और मेरेको चलना है अर्थात् 'मेरेको संसारसे विमुख होकर परमात्माके सम्मुख होना है'—यही सम्पूर्ण दर्शनोंका सार है और यही दृढ़व्रती होना है। दृढ़व्रती होनेसे उनके द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि एक निश्चय न होनेसे ही द्वन्द्व रहते हैं।

दूसरा भाव यह है कि उनको न निर्गुणका ज्ञान है और न उनको सगुणके दर्शन हुए हैं, किन्तु उनकी मान्यतामें संसार निरन्तर नष्ट हो रहा है, निरन्तर अभावमें जा रहा है और सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें भावरूपसे एक परमात्मा ही हैं—ऐसा मानकर वे दृढ़व्रती होकर भजन करते हैं। जैसे पतिव्रता स्त्री पतिके परायण रहती है, ऐसे ही भगवान्के परायण रहना ही उनका भजन है।

विशेष बात

शास्त्रोंमें, संतवाणीमें और गीतामें भी यह बात आती है कि पापी पुरुष भगवान्में प्रायः नहीं लग पाते; पर यह एक स्वाभाविक सामान्य नियम है। वास्तवमें कितने ही पाप क्यों न हों, वे भगवान्से विमुख नहीं कर सकते, क्योंकि जीव साक्षात् भगवान्का अंश है, इस वास्ते उसकी शुद्धि पापोंसे आच्छादित भले ही हो जाय, पर मिट नहीं सकती। इसलिये दुराचारी भी दुराचार छोड़कर भगवान्के भजनमें लग जाय, तो वह बहुत जल्दी धर्मात्मा (भक्त) हो जाता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

है—'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा' (गीता ९ । ३१)* अतः मनुष्य को कभी भी ऐसा नहीं मानना चाहिये कि पुराने पापोंके कारण मेरेसे भजन नहीं हो रहा है, क्योंकि पुराने पाप केवल प्रतिकूल परिस्थितिरूप फल देनेके लिये होते हैं, भजनमें बाधा देनेके लिये नहीं। प्रतिकूल परिस्थिति देकर वे पाप नष्ट हो जाते हैं। अगर ऐसा मान लिया जाय कि पापोंके कारण ही भजन नहीं होता, तो 'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्' (गीता ९ । ३०) 'दुराचारी-से-दुराचारी पुरुष अनन्यभावसे मेरा भजन करता है'—यह कहना बन ही नहीं सकता। पापोंके कारण अगर भजन-ध्यानमें बाधा लग जाय, तो बड़ी मुश्किल हो जायगी, क्योंकि बिना पापके कोई प्राणी है ही नहीं, पाप-पुण्यसे ही मनुष्यशरीर मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि पुराने पाप भजनमें बाधक नहीं हो सकते। इसके वास्ते जो दृढ़व्रती पुरुष भगवान्‌के शरणमें होकर वर्तमानमें भगवान्‌के भजनमें लग जाते हैं, तो उनके पुराने पापोंका अन्त हो जाता है। मनुष्यशरीर भजन करनेके लिये ही मिला है, अतः जो परिस्थिति

*अन्य योनियोंमें पाप नष्ट होनेपर भी स्वभाव सुधर जाय—यह नियम नहीं है; जैसे—चौरासी लाख योनि और नरक भोगते हुए पाप तो नष्ट हो जाते हैं, पर स्वभाव नहीं सुधरता। परन्तु मनुष्ययोनिमें पाप रहने पर भी साधकका स्वभाव सुधर जाता है, जैसे—पापोंके रहनेसे उनके फलरूपमें प्रतिकूल परिस्थिति (बीमारी आदि) आती है, पर सत्संगसे, साधनपरायणतासे, अहंता-परिवर्तनसे पारमार्थिक साधकका स्वभाव सुधर जाता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

शरीरतक रहनेवाली हैं, वे भजनमें बाधा पहुँचायें—ऐसा कभी सम्भव ही नहीं है।

सकाम पुण्यकर्मोंकी मुख्यता होनेसे जीव स्वर्गमें जाते हैं और पापकर्मोंकी मुख्यता होनेसे नरकोंमें जाते हैं। परन्तु भगवान् विशेष कृपा करके बीचमें ही अर्थात् पापों और पुण्योंका पूरा फलभोग न होनेपर भी जीवको मनुष्यशरीर दे देते हैं। मनुष्यशरीरमें भगवद्भजन-का अवसर विशेषतासे प्राप्त होता है। इस वास्ते मनुष्यशरीर प्राप्त होनेपर भगवत्प्राप्तिकी तरफसे कभी निराश नहीं होना चाहिये; क्योंकि भगवत्प्राप्तिके लिये ही मनुष्यशरीर मिलता है।

यह मनुष्यशरीर भोगयोनि नहीं है। इसको सामान्यतः कर्मयोनि कहते हैं। परन्तु सन्तोंकी वाणी और सिद्धान्तोंके अनुसार मनुष्यशरीर केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही है। इसमें पुराने पुण्योंके अनुसार जो अनुकूल परिस्थिति आती है और पुराने पापोंके अनुसार जो प्रतिकूल परिस्थिति आती है—ये दोनों ही केवल साधन-सामग्री हैं। इन दोनोंमेंसे अनुकूल परिस्थिति आनेपर दुनियाकी सेवा करना और प्रतिकूल परिस्थिति आनेपर अनुकूलताकी इच्छाका त्याग करना—यह साधकका काम है। ऐसा करनेसे ये दोनों ही परिस्थितियाँ साधन-सामग्री हो जायँगी। इनमें भी देखा जाय तो अनुकूल परिस्थितिमें पुराने पुण्योंका नाश होता है और वर्तमानमें भोगोंमें फँसनेकी सम्भावना भी रहती है। परन्तु प्रतिकूल परिस्थितिमें पुराने पापोंका नाश होता है और वर्तमानमें अधिक सजगता,

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सावधानी रहती है, जिससे साधन सुगमतासे बनता है। इस दृष्टिसे सन्तजन सांसारिक प्रतिकूल परिस्थितिका आदर करते आये हैं*।

सम्बन्ध—

सातवें अध्यायके आरम्भमें भगवान्‌ने साधकके लिये तीन बातें कही थीं—'मय्यासक्तमनाः'—मेरेमें प्रेम करके और 'मदाश्रयः'—मेरा आश्रय लेकर 'योगं युञ्जन्'—योगका अनुष्ठान करता है, वह मेरे समग्ररूपको जान जाता है। उन्हीं तीन बातोंका उपसंहार अब अगले दो श्लोकोंमें करते हैं।

श्लोक—

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्† ॥ २९ ॥

---

* माता कुन्ती भगवान् श्रीकृष्णसे कहती हैं—

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥
(श्रीमद्भा० १। ८। २५)

'हे जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें, जिससे हमें पुनः संसारकी प्राप्ति न करानेवाले आपके दुर्लभ दर्शन मिलते रहें।'

† इन उन्तीसवें-तीसवें श्लोकोंमें 'मामाश्रित्य' पदमें 'मदाश्रयः'का, 'यतन्ति' पदमें 'योगं युञ्जन्'का और 'युक्तचेतसः' पदमें 'मय्यासक्तमनाः'का उपसंहार किया गया है। इसी अध्यायके आरम्भमें जो 'समग्रम्' पद आया था, उसको यहाँ ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ कहा गया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अर्थ—

जरा और मरणसे मोक्ष पानेके लिये जो मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको भी जान जाते हैं।

व्याख्या—

'जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये'—यहाँ जरा (वृद्धावस्था) और मरणसे मुक्ति पानेका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मका ज्ञान होनेपर वृद्धावस्था नहीं होगी, शरीरकी मृत्यु नहीं होगी। इसका तात्पर्य यह है कि बोध होनेके बाद शरीरमें आनेवाली वृद्धावस्था और मृत्यु तो आयेंगी ही, पर ये दोनों अवस्थाएँ उसको दुःखी नहीं कर सकेंगी। जैसे तेरहवें अध्यायके चौंतीसवें श्लोकमें 'भूतप्रकृतिमोक्षम्' कहनेका तात्पर्य भूत और प्रकृति अर्थात् कार्य और कारणसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेमें है, ऐसे ही यहाँ 'जरामरणमोक्षाय' कहनेका तात्पर्य जरा, मृत्यु आदि शरीरके विकारोंसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेमें है।

जैसे कोई युवा पुरुष है, तो उसकी अभी न वृद्धावस्था है और न मृत्यु है, अतः वह जरा-मरणसे अभी मुक्त है। परन्तु वास्तवमें वह जरा-मरणसे मुक्त नहीं है, क्योंकि जरा-मरणके कारण शरीरके साथ जबतक सम्बन्ध है, तबतक जरा-मरणसे रहित होते हुए भी वह इनसे मुक्त नहीं है। परन्तु जो जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, उनके शरीरमें जरा और मरण होनेपर भी वे इनसे मुक्त हैं। अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जरा-मरणसे मुक्त होनेका तात्पर्य है—जिसमें जरा और मरण होते हैं, ऐसे प्रकृतिके कार्य शरीरके साथ सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होना। जब मनुष्य शरीरके साथ तादात्म्य ('मैं यही हूँ') कर लेता है, तो शरीरके वृद्ध होनेपर 'मैं वृद्ध हो गया' और शरीरके मरनेको लेकर 'मैं मर जाऊँगा'—ऐसा मानता है। यह मान्यता 'शरीर मैं हूँ और शरीर मेरा है' इसीपर टिकी हुई है। इस वास्ते तेरहवें अध्यायके आठवें श्लोकमें आया है—'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्' अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिमें दुःख और दोषको देखना—इसका तात्पर्य है कि शरीरके साथ 'मैं' और 'मेरा-पन' का सम्बन्ध न रहे। जब मनुष्य 'मैं' और 'मेरापन'से मुक्त हो जायगा तो वह जरा, मरण आदिसे भी मुक्त हो जायगा; क्योंकि शरीरके साथ माना हुआ सम्बन्ध ही वास्तवमें जन्मका कारण है—'कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु' (गीता १३ । २१)। वास्तवमें इसका शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं है, तभी सम्बन्ध मिटता है। मिटता वही है, जो वास्तवमें नहीं होता।

यहाँ 'मामाश्रित्य यतन्ति ये' पदोंमें आश्रय लेना और यत्न करना—इन दो बातोंको कहनेका तात्पर्य है कि मनुष्य अगर स्वयं यत्न करता है, तो अभिमान आता है कि 'मैंने ऐसा कर लिया, जिससे ऐसा हो गया' और अगर स्वयं यत्न न करके 'भगवान्‌के आश्रयसे हो जायगा' ऐसा मानता है, तो वह आलस्य और प्रमादमें तथा संग्रह और भोगमें लग जाता है। इस वास्ते यहाँ दो बात बतायी कि शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार स्वयं तत्परतासे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उद्योग करे और उस उद्योगके होनेमें तथा उद्योगकी सफलतामें कारण भगवान्‌को माने ।

जो नित्य-निरन्तर वियुक्त हो रहा है, ऐसे शरीर-संसारको मनुष्य प्राप्त और स्थायी मान लेता है । जबतक वह शरीर और संसारको स्थायी मानकर उसे महत्ता देता रहता है, तबतक साधन करनेपर भी उसको भगवत्प्राप्ति नहीं होती । अगर वह शरीर-संसारको स्थायी न माने और उसको महत्त्व न दे, तो भगवत्प्राप्तिमें देरी नहीं लगेगी । अतः इन दोनों बाधाओंको अर्थात् शरीर-संसारकी स्वतन्त्र सत्ताको और महत्ताको विचारपूर्वक हटाना ही यत्न करना है । परन्तु जो भगवान्‌का आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं । उनका तो यही भाव रहता है कि उस प्रभुकी कृपासे ही साधन-भजन हो रहा है । भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेनेसे और अपने बलका अभिमान न करनेसे वे भगवान्‌के समग्ररूपको जान लेते हैं ।

जो भगवान्‌का आश्रय न लेकर अपना कल्याण चाहते हुए उद्योग करते हैं, उनको अपने-अपने साधनके अनुसार भगवत्स्वरूपका बोध तो हो जाता है, पर भगवान्‌के समग्ररूपका बोध उनको नहीं होता । जैसे, कोई प्राणायाम आदिके द्वारा योगका अभ्यास करता है, तो उसको अणिमा, महिमा आदि सिद्धियाँ मिलती हैं और उनसे ऊँचा उठनेपर परमात्माके निराकार-स्वरूपका बोध होता है अथवा अपने स्वरूपमें स्थिति होती है । ऐसे ही बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायोंमें चलनेवाले जितने मनुष्य हैं, जो कि ईश्वरको नहीं मानते, वे भी

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अपने-अपने सम्प्रदायके सिद्धान्तोंके अनुसार साधन करके अस
जड़रूप संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करके मुक्त हो जाते हैं। प
जो संसारसे विमुख होकर भगवान्‌का आश्रय लेकर यत्न करते
उनको भगवान्‌के समग्ररूपका बोध होकर भगवत्प्रेमकी प्राप्ति
जाती है—यह विलक्षणता बतानेके लिये ही भगवान्‌ने य
'मामाश्रित्य यतन्ति ये' कहा है।

'ते ब्रह्म तत् (विदुः)'—इस तरहसे यत्न (साधन
करनेपर वे मेरे स्वरूपको* अर्थात् जो निर्गुण-निराकार है,
मन-बुद्धि-इन्द्रियों आदिका विषय नहीं है, जो सामने नहीं है, श
जिसका परोक्षरूपसे वर्णन करते हैं, उस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म
जान जाते हैं।†

'ब्रह्म' के साथ 'तत्' शब्द देनेका तात्पर्य यह है कि प्रा
सभी 'तत्' शब्दसे कहे जानेवाले जिस परमात्माको परोक्षरूपसे
देखते हैं, ऐसे परमात्माका भी वे साक्षात् अपरोक्षरूपसे अनु
कर लेते हैं।

---

* यहाँ अट्ठाईसवें, उन्तीसवें और तीसवें श्लोकमें भगवा
अस्मत् शब्द 'माम्' का प्रयोग किया है, इस वास्ते यहाँ व्याख्
'मेरा स्वरूप' ऐसा अर्थ लिया है।

† मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
(गीता १४। २६)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उस परमात्माकी सत्तामात्र प्राणीमें स्वतःसिद्ध है। कारण कि वह परमात्मा किसी देशमें न हो, किसी समयमें न हो, किसी वस्तुमें न हो और किसी व्यक्तिमें न हो—ऐसा नहीं है, प्रत्युत वह सब देशमें है, सब समयमें है, सब वस्तुओंमें है और सब व्यक्तियोंमें है। ऐसा होनेपर भी वह अप्राप्त क्यों दीखता है? जो पहले नहीं था, बादमें नहीं रहेगा, अभी मौजूद रहते हुए भी प्रतिक्षण वियुक्त हो रहा है, अभावमें जा रहा है—ऐसे शरीर-संसारकी सत्ता और महत्ता स्वीकार कर ली, इसीसे नित्यप्राप्त परमात्मतत्त्व अप्राप्त दीख रहा है।

'कृत्स्नमध्यात्मम् (विदुः)'—वे सम्पूर्ण अध्यात्मको जान जाते हैं अर्थात् सम्पूर्ण जीव तत्त्वसे क्या हैं, इस बातको वे जान जाते हैं। पन्द्रहवें अध्यायके दसवें श्लोकमें कहा है कि 'जीवके द्वारा एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त करनेको विमूढ़ पुरुष नहीं जानते और ज्ञानचक्षुवाले जानते हैं।' इसको जाननेका तात्पर्य यह नहीं है कि 'जीव कितने हैं, वे क्या-क्या करते हैं और उनकी क्या-क्या गति हो रही है'—इसको जान जाते हैं, प्रत्युत आत्मा शरीरसे अलग है—इसको तत्त्वसे जान जाते हैं अर्थात् अनुभव कर लेते हैं।

भगवान्‌के आश्रयसे साधकका जब क्रियाओं और पदार्थोंसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है, तो वह अध्यात्मतत्त्वको—अपने स्वरूप-को जान जाता है। केवल अपने स्वरूपको ही नहीं, प्रत्युत तीनों लोकों और चौदह भुवनोंमें जितने भी स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, उन

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सबका स्वरूप शुद्ध है, निर्मल है, प्रकृतिसे असम्बद्ध है। अनन्त जन्मोंतक अनन्त क्रियाओं और शरीरोंके साथ एकता करनेपर भी उनकी कभी एकता हो ही नहीं सकती और अनन्त जन्मोंतक अपने स्वरूपका बोध न होनेपर भी वे अपने स्वरूपसे कभी अलग हो ही नहीं सकते—ऐसा जानना सम्पूर्ण अध्यात्मतत्त्वको जानना है।

'कर्म चाखिलं विदुः'—वे सम्पूर्ण कर्मोंके वास्तविक तत्त्वको जान जाते हैं अर्थात् सृष्टिकी रचना क्यों होती है, कैसे होती है और भगवान् कैसे करते हैं—इसको भी वे जान जाते हैं।

जैसे, भगवान्‌ने चारों वर्णोंकी रचना की। उस रचनामें जीवोंके जो गुण और कर्म हैं अर्थात् उनके जैसे भाव हैं और उन्होंने जैसे कर्म किये हैं, उनके अनुसार ही शरीरोंकी रचना की गयी है। उन वर्णोंमें जन्म होनेमें स्वयं भगवान्‌की तरफसे कोई सम्बन्ध नहीं है, इस वास्ते भगवान्‌में कर्तृत्व नहीं है और फलेच्छा भी नहीं है (गीता ४। १३-१४)। तात्पर्य यह हुआ कि सृष्टिकी रचना करते हुए भी भगवान् कर्तृत्व और फलासक्तिसे सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं। ऐसे ही मनुष्यमात्रको देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप जो भी कर्तव्य-कर्म प्राप्त हो जाय, उसे कर्तृत्व और फलासक्तिसे रहित होकर करनेसे वह कर्म मनुष्यको बाँधनेवाला नहीं होता अर्थात् वह कर्म फलजनक नहीं बनता। तात्पर्य है कि कर्मोंके साथ अपना कोई सम्बन्ध नहीं है, इस तरह उनके साथ निर्लिप्तताका अनुभव करना ही अखिल कर्मको जानना है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जो अनन्यभावसे केवल भगवान्‌का आश्रय लेता है, उसका प्राकृत क्रियाओं और पदार्थोंका आश्रय छूट जाता है। इससे उसको यह बात ठीक तरहसे समझमें आ जाती है कि ये सब क्रियाएँ और पदार्थ परिवर्तनशील और नाशवान् हैं अर्थात् क्रियाओंका भी आरम्भ और अन्त होता है, तथा पदार्थोंका भी उत्पत्ति और विनाश, संयोग और वियोग होता है। ब्रह्मलोकतककी कोई भी क्रिया और पदार्थ नित्य रहनेवाला नहीं है। इस वास्ते कर्मोंके साथ मेरा किञ्चिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं है—यह भी अखिल कर्मको जानना है।

तात्पर्य यह हुआ कि भगवान्‌का आश्रय लेकर चलनेवाले ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मके वास्तविक तत्त्वको जान जाते हैं अर्थात् भगवान्‌ने जैसे कहा है कि 'यह सम्पूर्ण संसार मेरेमें ही ओतप्रोत है' (७।७) और 'सब कुछ वासुदेव ही है' (७ । १९), ऐसे ही वे भगवान्‌के समग्ररूपको जान जाते हैं कि ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म—ये सभी भगवत्स्वरूप ही हैं, भगवान्‌के सिवाय इनमें दूसरी कोई सत्ता नहीं है।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें निर्गुण-निराकारको जाननेका वर्णन करके अब अगले श्लोकमें सगुण-साकारको जाननेकी बात कहते हैं।

श्लोक—

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ ३०॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अर्थ—

जो पुरुष अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके सहित मेरे जानते हैं, वे युक्तचेता पुरुष अन्तकालमें भी मेरेको ही जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं।

व्याख्या—

'साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः'—यहाँ 'अधिभूत' नाम भौतिक स्थूल सृष्टिका है, जिसमें तमोगुणकी प्रधानता है। जितनी भी भौतिक सृष्टि है, उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। उसका क्षणमात्र भी स्थायित्व नहीं है। फिर भी यह भौतिक सृष्टि सत्य दीखती है अर्थात् इसमें सत्यता, स्थिरता, सुखरूपता, श्रेष्ठता और आकर्षण दीखता है। यह सत्यता आदि सब-के-सब वास्तवमें भगवान्के ही हैं, क्षणभंगुर संसारके नहीं। तात्पर्य है कि बर्फकी सत्ता जलके बिना नहीं हो सकती, ऐसे ही भौतिक स्थूल सृष्टि अर्थात् अधिभूतकी सत्ता भगवान्के बिना नहीं हो सकती। इस प्रकार तत्त्वसे यह संसार भगवत्स्वरूप ही है—ऐसा जानना ही अधिभूतके सहित भगवान्को जानना है।

'अधिदैव' नाम सृष्टिकी रचना करनेवाले हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीका है, जिनमें रजोगुणकी प्रधानता है। भगवान् ही ब्रह्माजीके रूपमें प्रकट होते हैं अर्थात् तत्त्वसे ब्रह्माजी भगवत्स्वरूप ही हैं—ऐसा जानना ही अधिदैवके सहित भगवान्को जानना है।

'अधियज्ञ' नाम भगवान् विष्णुका है, जो अन्तर्यामीरूपसे सबमें व्याप्त हैं और जिनमें सत्त्वगुणकी प्रधानता है। तत्त्वसे भगवान् ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अन्तर्यामीरूपसे सबमें परिपूर्ण हैं—ऐसा जानना ही अधियज्ञके सहित भगवान्‌को जानना है।

अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके सहित भगवान्‌को जाननेका तात्पर्य है कि भगवान् श्रीकृष्णके शरीरके किसी एक अंशमें विराट्‌रूप है* और उस विराट्‌रूपमें अधिभूत (अनन्त ब्रह्माण्ड), अधिदैव (ब्रह्माजी) और अधियज्ञ (विष्णु) आदि सभी हैं, जैसा कि अर्जुनने कहा है—हे देव ! मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण प्राणियोंको, जिनकी नाभिसे कमल निकला है, उन विष्णुको, कमलपर विराजमान ब्रह्माको और शंकरको देख रहा हूँ (गीता ११ । १५)। इस वास्ते तत्त्वसे अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण ही समग्र भगवान् हैं।

'प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः'—जो संसारके भोगों और संग्रहकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें समान रहनेवाले हैं तथा संसारसे सर्वथा उपरत होकर भगवान्‌में लगे हुए हैं, वे पुरुष युक्तचेता हैं। ऐसे युक्तचेता पुरुष अन्तकालमें भी मेरेको ही जानते हैं अर्थात् अन्तकालकी पीड़ा आदिमें भी वे मेरेमें ही अटलरूपसे स्थित रहते

---

* विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।
(गीता १० । ४२)

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥
(गीता ११ । ७)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हैं । उनकी ऐसी दृढ़ स्थिति होती है—वे स्थूल और सूक्ष्म-शरी… कितनी ही हलचल होनेपर भी कभी किञ्चिन्मात्र भी विचलि… नहीं होते ।

भगवान्के समग्ररूप-सम्बन्धी विशेष बात

(१)

प्रकृति और प्रकृतिके कार्य—क्रिया, पदार्थ आदिके साथ अ… सम्बन्ध माननेसे ही सभी विकार पैदा होते हैं और उन क्रिया, प… आदिकी प्रकटरूपसे सत्ता दीखने लग जाती है । परन्तु प्रकृ… और प्रकृतिके कार्यसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद करके भगवत्स्वरू… स्थित होनेसे उनकी स्वतन्त्र सत्ता उस भगवत्तत्त्वमें ही लीन… जाती है । फिर उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं दीखती ।

जैसे, किसी व्यक्तिके विषयमें हमारी जो अच्छे और बुरे… मान्यता होती है, वह मान्यता हमारी ही की हुई है । तत्त्वसे तो… व्यक्ति भगवान्का स्वरूप है अर्थात् उस व्यक्तिमें तत्त्वके सि… दूसरा कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं है । ऐसे ही संसारमें 'यह ठी… है, यह बेठीक है' इस प्रकार ठीक-बेठीककी मान्यता हमारी… की हुई है । तत्त्वसे तो संसार भगवान्का स्वरूप ही है । हाँ, सं… में जो वर्ण-आश्रमकी मर्यादा है, 'ऐसा काम करना चाहिये… ऐसा नहीं करना चाहिये'—यह जो विधि-निषेधकी मर्यादा… इसको महापुरुषोंने जीवोंके कल्याणार्थ व्यवहारके लिये मान्य… दी है ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जब यह भौतिक सृष्टि नहीं थी, तो भी भगवान् थे और इसके लीन होनेपर भी भगवान् रहेंगे—इस तरहसे जब वास्तविक भगवत्तत्त्वका बोध हो जाता है, तो भौतिक सृष्टिकी सत्ता भगवान्में ही लीन हो जाती है अर्थात् इस सृष्टिकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि संसारकी स्वतन्त्र सत्ता न रहनेपर संसार मिट जाता है, उसका अभाव हो जाता है, प्रत्युत अन्तःकरणमें सत्यत्वेन जो संसारकी सत्ता और महत्ता बैठी हुई थी, जो कि जीवके कल्याणमें बाधक थी, वह नहीं रहती। जैसे सोनेके गहनों-की अनेक तरहकी आकृति और अलग-अलग उपयोग होनेपर भी उन सबमें एक ही सोना होता है, ऐसे ही भगवद्भक्तके द्वारा अनेक तरहका यथायोग्य सांसारिक व्यवहार होनेपर भी उन सबमें एक ही भगवत्तत्त्व है—ऐसी अटल-बुद्धि रहती है। इस तत्त्वको समझनेके लिये ही उन्तीसवें और तीसवें श्लोकमें समग्ररूपका वर्णन हुआ है।

(२)

उपासनाकी दृष्टिसे भगवान्के प्रायः दो रूपोंका विशेष वर्णन आता है—एक सगुण और एक निर्गुण। इनमें सगुणके दो भेद होते हैं—एक सगुण-साकार और एक सगुण-निराकार। परन्तु निर्गुणके दो भेद नहीं होते, निर्गुण निराकार ही होता है। हाँ, निराकारके दो भेद होते हैं—एक सगुण-निराकार और एक निर्गुण-निराकार।

उपासना करनेवाले दो रुचिके होते हैं—एक सगुण-विषयक रुचिवाला होता है और एक निर्गुण-विषयक रुचिवाला होता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

परन्तु इन दोनोंकी उपासना भगवान्‌के 'सगुण-निराकार' रूपसे ही शुरू होती है; जैसे—परमात्मप्राप्तिके लिये कोई भी साधक चलता है तो वह पहले 'परमात्मा है'—इस प्रकार परमात्माकी सत्ताको मानता है और 'वे परमात्मा सबसे श्रेष्ठ हैं, सबसे दयालु हैं, उनसे बढ़कर कोई है नहीं'—ऐसे भाव उसके भीतर रहते हैं, तो उपासना सगुण-निराकारसे ही शुरू हुई। इसका कारण यह है कि बुद्धि प्रकृतिका कार्य (सगुण) होनेसे निर्गुणको नहीं पकड़ सकती। इस वास्ते निर्गुणके उपासकका लक्ष्य तो निर्गुण-निराकार होता है, पर बुद्धिसे वह सगुण-निराकारका ही चिन्तन करता है*।

सगुणकी उपासना करनेवाले पहले सगुण-साकार मानकर उपासना करते हैं। परन्तु मनमें जबतक साकाररूप दृढ़ नहीं होता, तबतक 'प्रभु हैं और वे मेरे सामने हैं' ऐसी मान्यता मुख्य होती है। इस मान्यतामें सगुण भगवान्‌की अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है,

---

* उपासना सगुण-निराकारसे शुरू होती है—इसीलिये भगवान्‌ने इस (सातवें) अध्यायके अट्ठाईसवें श्लोकमें 'सगुण-निराकार' का वर्णन किया है। फिर उन्तीसवें श्लोकमें 'निर्गुण-निराकार'का और तीसवें श्लोकमें 'सगुण-साकार'का वर्णन किया है। इस प्रकार यहाँ तो तीनों स्वरूपोंका एक-एक श्लोकमें वर्णन किया गया है, पर आगे आठवें अध्यायमें इन तीनोंका तीन-तीन श्लोकोंमें वर्णन किया गया है, जैसे—आठवें अध्यायके आठवें, नवें और दसवें श्लोकमें 'सगुण-निराकार'की उपासनाका, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें श्लोकमें 'निर्गुण-निराकार' की उपासनाका तथा चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें श्लोकमें 'सगुण-साकार' की उपासनाका विशद वर्णन किया गया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उतनी ही उपासना ऊँची मानी जाती है। अन्तमें जब वह सगुण-साकाररूपसे भगवान्‌के दर्शन, भाषण, स्पर्श और प्रसाद प्राप्त कर लेता है, तब उसकी उपासनाकी पूर्णता हो जाती है।

निर्गुणकी उपासना करनेवाले परमात्माको सम्पूर्ण संसारमें व्यापक समझते हुए चिन्तन करते हैं। उनकी वृत्ति जितनी ही सूक्ष्म होती चली जाती है, उतनी ही उनकी उपासना ऊँची मानी जाती है। अन्तमें सांसारिक आसक्ति और गुणोंका सर्वथा त्याग होनेपर जब 'मैं' 'तू' आदि कुछ भी नहीं रहता, केवल चिन्मय-तत्त्व शेष रह जाता है, तब उसकी उपासनाकी पूर्णता हो जाती है।

इस प्रकार दोनोंकी अपनी-अपनी उपासनाकी पूर्णता होनेपर दोनोंकी एकता हो जाती है अर्थात् दोनों एक ही तत्त्वको प्राप्त हो जाते हैं*। सगुण-साकारके उपासकोंको तो भगवत्कृपासे निर्गुण-निराकारका भी बोध हो जाता है—**मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥** (मानस ३। ३५। ५)। निर्गुण-निराकारके उपासकमें यदि भक्तिके संस्कार हैं और भगवान्‌के दर्शनकी अभिलाषा है, तो उसे भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं अथवा

---

* सगुण-निर्गुणका भेद तो उपासनाकी दृष्टिसे है। वास्तवमें इन दोनों उपासनाओंमें उपास्य तत्त्व एक ही है। उपासना साधककी रुचि, विश्वास और योग्यताके अनुसार होती है। इस वास्ते साधकोंकी भिन्न-भिन्न रुचि, विश्वास और योग्यता होनेके कारण उपासनाएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। परन्तु सम्पूर्ण उपासनाओंसे अन्तमें एक ही उपास्यतत्त्वकी प्राप्ति होती है। उस उपास्य-तत्त्वको ही 'समग्र ब्रह्म' कहते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भगवान्‌को उससे कुछ काम लेना होता है, तो भगवान् अपनी तरफ़से भी दर्शन दे सकते हैं। जैसे निर्गुण-निराकारके उपासक मधुसूदनाचार्यजीको भगवान्‌ने अपनी तरफसे दर्शन दिये थे*।

(३)

वास्तवमें परमात्मा सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार सब कुछ हैं। सगुण-निर्गुण तो उनके विशेषण हैं, नाम हैं। साधक परमात्माको गुणोंके सहित मानता है, तो उसके लिये वे सगुण हैं और साधक उनको गुणोंसे रहित मानता है तो उसके लिये वे निर्गुण हैं। वास्तवमें परमात्मा सगुण तथा निर्गुण—दोनों हैं और दोनोंसे परे भी हैं। परन्तु इस वास्तविकताका पता तभी लगता है जब बोध होता है।

भगवान्‌के सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य, औदार्य आदि जो दिव्य गुण हैं, उन गुणोंके सहित सर्वत्र व्यापक परमात्माको 'सगुण' कहते हैं। इस सगुणके दो भेद होते हैं—

(१) **सगुण-निराकार**—जैसे, आकाशका गुण 'शब्द' है, पर आकाशका कोई आकार (आकृति) नहीं है, इस वास्ते आकाश सगुण-निराकार हुआ। ऐसे ही प्रकृति और प्रकृतिके कार्य संसारमें परिपूर्णरूपसे व्यापक परमात्माका नाम सगुण-निराकार है।

(२) **सगुण-साकार**—वे ही सगुण-निराकार परमात्मा जब अपनी दिव्य प्रकृतिको अधिष्ठित करके अपनी योगमायासे लोगोंके

* अद्वैतवीथिपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सामने प्रकट हो जाते हैं, उनकी इन्द्रियोंके विषय हो जाते हैं तो उन परमात्माको सगुण-साकार कहते हैं। सगुण तो वे थे ही, आकृतियुक्त प्रकट हो जानेसे वे साकार कहलाते हैं।

जब साधक परमात्माको दिव्य अलौकिक गुणोंसे भी रहित मानता है अर्थात् साधककी दृष्टि केवल निर्गुण परमात्माकी तरफ रहती है, तो परमात्माका वह स्वरूप 'निर्गुण-निराकार' कहा जाता है।

गुणोंके भी दो भेद होते हैं—(१) परमात्माके स्वरूपभूत सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य आदि दिव्य, अलौकिक, अप्राकृत गुण; और (२) प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम गुण। परमात्मा चाहे सगुण-निराकार हों, चाहे सगुण-साकार हों, वे प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंसे सर्वथा रहित हैं, अतीत हैं। वे यद्यपि प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार करके सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करते हैं, फिर भी वे प्रकृतिके गुणोंसे सर्वथा रहित ही रहते हैं (गीता ४। १३-१४; ९। ९)।

जो परमात्मा गुणोंसे कभी नहीं बँधते, जिनका गुणोंपर पूरा आधिपत्य होता है, वे ही परमात्मा निर्गुण होते हैं। अगर परमात्मा गुणोंसे बँधे हुए और गुणोंके अधीन होंगे, तो वे कभी निर्गुण नहीं हो सकते। निर्गुण तो वे ही हो सकते हैं, जो गुणोंसे सर्वथा अतीत हों; और जो गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं, ऐसे परमात्मामें ही सम्पूर्ण गुण रह सकते हैं। इस वास्ते परमात्माको सगुण-निर्गुण,

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

साकार-निराकार आदि सब कुछ कह सकते हैं। ऐसे परमात्माका उन्तीसवें-तीसवें श्लोकोंमें समग्ररूपसे वर्णन किया गया है।

अध्याय-सम्बन्धी विशेष बात

भगवान्‌ने इस अध्यायमें पहले परिवर्तनशीलको 'अपरा' और अपरिवर्तनशीलको 'परा' नामसे कहा (७। ४-५)। फिर इन दोनोंके संयोगसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति बतायी और अपनेको सम्पूर्ण संसारका प्रभव और प्रलय बताया अर्थात् संसारके आदि और अन्तमें केवल मैं ही रहता हूँ—यह बताया (७। ६-७)। उसी प्रसङ्गमें भगवान्‌ने सत्रह विभूतियोंके रूपमें कारणरूपसे अपनी व्यापकता बतायी (७। ८-१२)। फिर भगवान्‌ने कहा कि जो तीनों गुणोंसे मोहित है अर्थात् जिसने निरन्तर परिवर्तनशील प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध मान लिया है, वह गुणोंसे पर मेरेको नहीं जान सकता (७। १३)। यह गुणमयी माया तरनेमें बड़ी दुष्कर है। जो मेरे शरण हो जाते हैं, वे इस मायाको तर जाते हैं (७। १४)। परन्तु जो मेरेसे विमुख होकर निषिद्ध आचरणोंमें लग जाते हैं, वे दुष्कृती मनुष्य मेरे शरण नहीं होते (७। १५)। अब यहाँ चौदहवें श्लोकके बाद ही सोलहवाँ श्लोक कह देते तो बहुत बढ़िया बैठता अर्थात् चौदहवें श्लोकमें शरण होनेकी बात कही, तो अब शरण होनेवाले चार तरहके होते हैं—ऐसा बतानेसे शृङ्खला बहुत बढ़िया बैठती। परन्तु पंद्रहवाँ श्लोक बीचमें आ जानेसे प्रकरण ठीक नहीं बैठता। इस वास्ते यह श्लोक प्रकरणके विरुद्ध अर्थात् बाधक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

डालनेवाला मालूम देता है। परन्तु वास्तवमें यह श्लोक प्रकरणके विरुद्ध नहीं है; क्योंकि यह श्लोक न आनेसे 'पापी मेरे शरण नहीं होते'—यह कहना बाकी रह जाता। इस वास्ते पंद्रहवें श्लोकमें 'दुष्कृती' (पापी) मेरे शरण होते ही नहीं'—यह बात बता दी और सोलहवें श्लोकमें शरण होनेवालोंके चार प्रकार बता दिये।

अब जो शरण होते हैं, उनके भी दो प्रकार हैं—एक तो भगवान्‌को भगवान् समझकर अर्थात् भगवान्‌की महत्ता समझकर भगवान्‌के शरण होते हैं (७। १६--१९), और दूसरे भगवान्‌को साधारण मनुष्य मानकर देवताओंको सबसे बड़ा मानते हैं, इस वास्ते भगवान्‌का आश्रय न लेकर कामनापूर्तिके लिये देवताओंके शरण हो जाते हैं (७। २०-२३)।

देवताओंके शरण होनेमें भी दो बातें होती हैं—कामनाओंका बढ़ जाना और भगवान्‌की महत्ताको न जानना। इनमेंसे पहले हेतु-का वर्णन तो बीसवेंसे तेईसवें श्लोकतक कर दिया, और दूसरे हेतु-का वर्णन चौबीसवें श्लोकमें कर दिया। जो भगवान्‌को साधारण मनुष्य मानते हैं, उनके सामने भगवान् प्रकट नहीं होते—यह बात पचीसवें श्लोकमें बता दी।

अब ऐसा असर पड़ता है कि भगवान् भी मायासे ढके होंगे, इस वास्ते भगवान् कहते हैं कि मेरा ज्ञान ढका हुआ नहीं है

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

(७ । २६)। मेरेको न जाननेमें राग-द्वेष ही मुख्य कारण है (७ । २७)। जो इस द्वन्द्वरूप मोहसे रहित होते हैं, वे दृढ़व्रती होकर मेरा भजन करते हैं (७ । २८)। जो मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे मेरे समग्ररूपको जान जाते हैं और अन्तमें मेरेको ही प्राप्त होते हैं (७ । २९-३०)।

इस अध्यायपर आदिसे अन्ततक विचार करके देखें तो भगवान्‌के विमुख और सम्मुख होनेका ही इसमें वर्णन है। तात्पर्य है कि जड़ताकी तरफ वृत्ति रखनेसे प्राणी बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं और उससे विमुख होकर भगवान्‌के सम्मुख हो जाते हैं, तो वे सगुण-निराकार, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार—ऐसे भगवान्‌के समग्ररूपको जानकर अन्तमें भगवान्‌को ही प्राप्त होते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार ॐ, तत्, सत्—इन भगवन्नामोंके उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्‌रूप श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें 'ज्ञानविज्ञानयोग' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

इस सातवें अध्यायमें ज्ञान और विज्ञानका वर्णन किया गया है। भगवान् इस सम्पूर्ण जगत्के महाकारण हैं—ऐसा दृढ़तापूर्वक मानना 'ज्ञान' है। ऐसे ही भगवान्के सिवाय कुछ भी नहीं है—ऐसा अनुभव हो जाना 'विज्ञान' है। ज्ञान और विज्ञानसे परमात्माके साथ नित्ययोगका अनुभव हो जाता है अर्थात् 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं' इस परम प्रेमरूप नित्य-सम्बन्धकी जाग्रति हो जाती है। इस वास्ते इस सातवें अध्यायका नाम 'ज्ञानविज्ञानयोग' रखा गया है।

सातवें अध्यायके पद, अक्षर और उवाच

(१) इस अध्यायमें **'अथ सप्तमोऽध्यायः'** के तीन, उवाचके दो, श्लोकोंके चार सौ छः और पुष्पिकाके तेरह पद हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पदोंका योग चार सौ चौबीस है।

(२) **'अथ सप्तमोऽध्यायः'** में सात, उवाचमें सात, श्लोकोंमें नौ सौ साठ और पुष्पिकामें अड़तालीस अक्षर हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अक्षरोंका योग एक हजार बाईस है। इस अध्यायके सभी श्लोक बत्तीस अक्षरोंके हैं।

(३) इस अध्यायमें केवल एक उवाच है—**'श्रीभगवानुवाच'**।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सातवें अध्यायमें प्रयुक्त छन्द

इस अध्यायके तीस श्लोकोंमेंसे—छठे श्लोकके तृतीय चरणमें और चौदहवें श्लोकके प्रथम चरणमें 'नगण' प्रयुक्त होनेसे 'न-विपुला', ग्यारहवें श्लोकके तृतीय चरणमें और पचीसवें श्लोकके प्रथम चरणमें 'मगण' प्रयुक्त होनेसे 'म-विपुला', सत्रहवें श्लोकके प्रथम चरणमें 'रगण' प्रयुक्त होनेसे 'र-विपुला' तथा उन्नीसवें और बीसवें श्लोकके तृतीय चरणमें 'भगण' प्रयुक्त होनेसे 'भ-विपुला' संज्ञावाले श्लोक हैं। शेष तेईस श्लोक ठीक 'पथ्यावक्त्र' अनुष्टुप् छन्दके लक्षणोंसे युक्त हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

सम्बन्ध—

श्रीभगवान्‌ने सातवें अध्यायके अन्तमें अपने समग्ररूपका वर्णन करते हुए ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ—इन छः शब्दोंका प्रयोग किया और इस समग्ररूपको जाननेवाले योगियोंको अन्तकालमें अपनी प्राप्ति बतायी। इसको सुनकर इन छः शब्दोंको स्पष्टरूपसे समझनेके लिये अर्जुन आठवें अध्यायके आरम्भके ही श्लोकोंमें कुल सात प्रश्न करते हैं।

श्लोक—

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

अर्थ—

अर्जुन बोले—हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत किसको कहा गया है? और अधिदैव किसको कहा जाता है? यहाँ अधियज्ञ कौन है और वह इस देहमें कैसे है? हे मधुसूदन! नियतात्मा पुरुषोंके द्वारा अन्तकालमें आप कैसे जाननेमें आते हैं?

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

व्याख्या—

'पुरुषोत्तम किं तद्ब्रह्म'—हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है अर्थात् 'ब्रह्म' शब्दसे क्या समझना चाहिये ?

'किमध्यात्मम्'—'अध्यात्म' शब्दसे आपका क्या अभिप्राय है ?

'किं कर्म'—कर्म क्या है अर्थात् 'कर्म' शब्दसे आपका क्या भाव है ?

'अधिभूतं च किं प्रोक्तम्'—आपने जो 'अधिभूत' शब्द कहा है, उसका क्या तात्पर्य है ?

'अधिदैवं किमुच्यते'—'अधिदैव' किसको कहा जाता है ?

'अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्'—इस प्रकरणमें 'अधियज्ञ' शब्दसे किसको लेना चाहिये। वह अधियज्ञ इस देहमें कैसे है ?

'मधुसूदन प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः'—हे मधुसूदन ! जो पुरुष वशीभूत अन्तःकरणवाले हैं अर्थात् जो संसारसे सर्वथा हटकर अनन्यभावसे केवल आपमें ही लगे हुए हैं, उनके द्वारा अन्तकालमें आप कैसे जाननेमें आते हैं ? अर्थात् वे आपके किस रूपको जानते हैं और किस प्रकारसे जानते हैं ?

यहाँ अर्जुनद्वारा भगवान्‌के लिये 'मधुसूदन' सम्बोधन देनेका तात्पर्य है—'मधु' नाम दैत्यका है और दैत्य-स्वभावको दैत्य कहते है। जिस स्वभावमें दुर्गुण-दुराचार आ जाते हैं, वह दैत्य-स्वभाव कहलाता है। इस दैत्य-स्वभावसे ही पाप बनते हैं। आप दैत्य-स्वभावको शुद्ध करनेवाले हैं। स्वभाव शुद्ध होनेसे अन्तकालमें आपका स्मरण स्वतः ही होगा।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सम्बन्ध—

अब भगवान् अगले दो श्लोकोंमें अर्जुनके छः प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर देते हैं।

श्लोक—

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

अर्थ—

श्रीभगवान् बोले—परम अक्षर ब्रह्म है और जीवका अपना जो होनापन है, उसको अध्यात्म कहते हैं। प्राणियोंका उद्भव करनेवाला जो त्याग है, उसकी कर्म संज्ञा है।

व्याख्या—

'अक्षरं ब्रह्म परमम्'—परम अक्षरका नाम ब्रह्म है। यद्यपि गीतामें 'ब्रह्म' शब्द प्रणव, वेद, प्रकृति आदिका वाचक भी आया है*, तथापि यहाँ 'ब्रह्म' शब्दके साथ 'परम' और 'अक्षर' विशेषण देनेसे यह शब्द सर्वोपरि, सच्चिदानन्दघन, अविनाशी, निर्गुण-निराकार परमात्माका वाचक है।

'स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते'—अपने भाव अर्थात् होनेपनका नाम स्वभाव है—'स्वो भावः स्वभावः'। इसी स्वभावको 'अध्यात्म' कहा जाता है अर्थात् जीवमात्रके होनेपनका नाम 'अध्यात्म' है।

---

* 'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि (३। १५) में ब्रह्म शब्द वेदका, 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' (८। १३) में ब्रह्म शब्द प्रणवका, 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः (८। १६) में ब्रह्म शब्द ब्रह्माका, 'मम योनिर्महद्ब्रह्म' (१४। ३-४) में ब्रह्म शब्द प्रकृतिका और 'ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (१८। ४२) में ब्रह्म शब्द ब्राह्मणका वाचक है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ऐसे तो आत्माको लेकर जो वर्णन किया जाता है, वह भी अध्यात्म है; अध्यात्म-मार्गका जिसमें वर्णन हो, वह मार्ग भी अध्यात्म है और इस आत्माकी जो विद्या है, उसका नाम भी अध्यात्म है (गीता १० । ३२) । परन्तु यहाँ 'स्वभाव' विशेषणके साथ 'अध्यात्म' शब्द आत्माका अर्थात् जीवके होनेपनका (स्वरूपका) वाचक है ।

'भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः'—स्थावर-जङ्गम जितने भी प्राणी देखनेमें आते हैं, उनका जो भाव अर्थात् होनापन है, उस होनेपनको प्रकट करनेके लिये जो विसर्ग अर्थात् त्याग है, उसको 'कर्म' कहते हैं ।

प्रलय और महाप्रलयके समय प्रकृतिकी अक्रिय-अवस्था मानी जाती है, तथा सर्ग और महासर्गके समय प्रकृतिकी सक्रिय-अवस्था मानी जाती है । इस सक्रिय-अवस्थाका कारण भगवान्‌का संकल्प है कि 'मैं एक ही बहुत रूपोंसे हो जाऊँ ।' इसी संकल्पसे सृष्टिकी रचना होती है । तात्पर्य है कि प्रलय और महाप्रलयके समय अहंकार और सञ्चित-कर्मोंके सहित प्राणी प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं और उन प्राणियोंके सहित प्रकृति एक तरहसे परमात्मामें लीन हो जाती है, तो उस लीन हुई प्रकृतिको विशेष क्रियाशील करनेके लिये भगवान्‌का पूर्वोक्त संकल्प करना ही विसर्ग अर्थात् त्याग है । भगवान्‌का यह संकल्प ही कर्मोंका आरम्भ है, जिससे प्राणियोंकी कर्म-परम्परा चल पड़ती है । कारण कि प्रलय और महाप्रलयमें प्राणियोंके कर्म नहीं बनते, प्रत्युत उसमें प्राणियोंकी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सुषुप्त-अवस्था रहती है। सर्ग और महासर्गके आदिसे कर्म शुरू हो जाते हैं। चौदहवें अध्यायमें भगवान्‌ने कहा है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥
(गीता १४। ३-४)

परमात्माकी मूल प्रकृतिका नाम 'महद्ब्रह्म' है। उस प्रकृतिमें लीन हुए जीवोंका प्रकृतिके साथ विशेष सम्बन्ध करा देना अर्थात् जीवोंका अपने-अपने कर्मोंके फलस्वरूप शरीरोंके साथ सम्बन्ध करा देना ही परमात्माके द्वारा प्रकृतिमें गर्भ-स्थापन करना है। उसमें भी अलग-अलग योनियोंमें तरह-तरहके जितने शरीर पैदा होते हैं, उन शरीरोंकी उत्पत्तिमें प्रकृति हेतु है और उनमें जीव-रूपसे भगवान्‌का अंश है—'ममैवांशो जीवलोके' (गीता १५। ७)। इस प्रकार प्रकृति और पुरुषके अंशसे सम्पूर्ण प्राणी पैदा होते हैं।

तेरहवें अध्यायके छब्बीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है—'स्थावर-जङ्गम जितने भी प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सब क्षेत्र (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (पुरुष) के संयोगसे ही होते हैं।' क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका विशेष संयोग अर्थात् स्थूलशरीर धारण करानेके लिये भगवान्‌का संकल्प-रूप विशेष सम्बन्ध ही स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके स्थूलशरीर पैदा करनेका कारण है। उस संकल्पके होनेमें भगवान्‌का कोई अभिमान नहीं है, प्रत्युत जीवोंके जन्म-जन्मान्तरोंके जो कर्म-संस्कार हैं, वे प्रलय और महाप्रलयके समय परिपक्व होकर जब फल देनेके लिये उन्मुख होते

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हैं, तब भगवान्‌का संकल्प होता है* । इस प्रकार जीवोंके कर्मोंकी प्रेरणासे 'मैं' एक ही बहुत रूपोंसे हो जाऊँ'—यह संकल्प होता है ।

उन प्राणियोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंका जो कर्माधिकारी मनुष्य-समुदाय है, उसके द्वारा विहित और निषिद्ध जितनी क्रियाएँ होती हैं, उन सब क्रियाओंका नाम 'कर्म' है । तात्पर्य है कि मुख्य कर्म तो भगवान्‌का संकल्प हुआ और उसके बाद कर्म-परम्परा चलती है ।

श्लोक—

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

अर्थ—

हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! क्षरभाव अर्थात् नाशवान् पदार्थको अधिभूत कहते हैं, पुरुष अर्थात् हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी अधिदैव हैं और इस देहमें अन्तर्यामीरूपसे मैं ही अधियज्ञ हूँ ।

---

* जैसे कर्म करते-करते थकावट होती है तो कर्तृत्वाभिमान, कर्मफलासक्ति और सञ्चित-कर्मोंके ज्यों-के-त्यों रहते हुए ही प्राणियोंको नींद आ जाती है । नींदमें विश्राम पानेसे थकावट दूर होती है और कर्म करनेके लिये शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिमें ताजगी आती है, सामर्थ्य आती है । इसी रीतिसे प्राणी कर्तृत्वाभिमान, कर्मफलासक्ति और सञ्चित कर्मोंके सहित प्रलयमें सूक्ष्म प्रकृतिमें और महाप्रलयमें कारण प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं । उन लीन हुए प्राणियोंके सञ्चित-कर्म विश्राम पाकर—परिपक्व होकर अर्थात् प्रारब्धरूप होकर फल देनेके लिये उन्मुख हो जाते हैं। तब भगवान्‌का संकल्प होता है और उस संकल्पसे प्राणियोंका जन्मारम्भक कर्मोंके साथ विशेषतासे सम्बन्ध जुड़ जानेका नाम ही 'कर्म' है ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

व्याख्या—

'अधिभूतं क्षरो भावः'—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पञ्चमहाभूतोंसे बनी प्रतिक्षण परिवर्तनशील और नाशवान् सृष्टिको अधिभूत कहते हैं।

'पुरुषश्चाधिदैवतम्'—यहाँ 'अधिदैवत' (अधिदैव) पद आदि-पुरुष हिरण्यगर्भ ब्रह्माका वाचक है। सृष्टिके आदिमें भगवान्के संकल्पसे सबसे पहले ब्रह्माजी ही प्रकट होते हैं और फिर वे ही सब सृष्टिकी रचना करते हैं।

'अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर'—हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस देहमें अधियज्ञ मैं ही हूँ अर्थात् इस मनुष्यशरीरमें अन्तर्यामीरूपसे मैं ही हूँ*। भगवान्ने गीतामें 'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्' (१३। १७), 'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः' (१५। १५), 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' (१८। ६१) आदिमें अपनेको अन्तर्यामीरूपसे सबके हृदयमें विराजमान बताया है।

---

* यहाँ इस मनुष्यशरीरमें कहनेका तात्पर्य है कि इसमें भगवान्की प्रेरणाको समझनेकी, स्वीकार करनेकी और उसके अनुसार आचरण करके तत्त्वको प्राप्त करनेकी सामर्थ्य है। अन्य शरीरोंमें अन्तर्यामीरूपसे परमात्माके रहते हुए भी उन प्राणियोंमें उस तत्त्वकी तरफ दृष्टि डालनेकी सामर्थ्य नहीं है और मनुष्यशरीरमें जो विवेक प्राप्त है, वह विवेक उन शरीरोंमें जाग्रत् नहीं है। इस वास्ते मनुष्यको चाहिये कि वह इस शरीरके रहते-रहते उस तत्त्वको प्राप्त कर ले। इस दुर्लभ अवसरको व्यर्थ न जाने दे।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'अहमेव अत्र* देहे' कहनेका तात्पर्य है कि दूसरी योनियोंमें तो पूर्वकृत कर्मोंका भोग होता है, नये कर्म नहीं बनते, पर इस मनुष्यशरीरमें नये कर्म भी बनते हैं। उन कर्मोंके प्रेरक अन्तर्यामी भगवान् होते हैं†। जहाँ मनुष्य राग-द्वेष नहीं करता, उसके सब कर्म भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार शुद्ध होते हैं अर्थात् बन्धनकारक नहीं होते और जहाँ वह राग-द्वेषके कारण भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार कर्म नहीं करता, उसके कर्म बन्धनकारक होते हैं। कारण कि राग और द्वेष मनुष्यके महान् शत्रु हैं (गीता ३ । ३४)। तात्पर्य यह हुआ कि भगवान्‌की प्रेरणासे कभी निषिद्ध-कर्म होते ही नहीं। श्रुति और स्मृति भगवान्‌की आज्ञा हैं—'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे' तो भगवान् श्रुति और स्मृतिके विरुद्ध प्रेरणा कैसे कर सकते हैं? नहीं कर सकते। निषिद्ध-कर्म तो मनुष्य कामनाके वशीभूत होकर ही करता है (गीता ३ । ३७)। अगर मनुष्य कामनाके वशीभूत न हो, तो उसके द्वारा स्वाभाविक ही विहित कर्म होंगे,

* दूसरे श्लोकमें तो 'अत्र' पद प्रकरणके लिये आया है तथा 'अस्मिन्' पद देहके लिये आया है, पर यहाँ 'अत्र' पद देहके लिये ही आया है। कारण कि अर्जुनने प्रश्नमें 'अत्र' पद देकर प्रकरणका संकेत कर दिया है, इस वास्ते अब उसका उत्तर देते हुए प्रकरणके लिये 'अत्र' पद देनेकी जरूरत नहीं है।

† कर्मोंकी प्रेरणा भगवान् मनुष्यके स्वभावके अनुसार करते हैं। यदि स्वभावमें राग-द्वेष हैं तो उस राग-द्वेषके वशीभूत होना अथवा न होना मनुष्यके हाथमें है। वह शास्त्र, सन्त तथा भगवान्‌का आश्रय लेकर अपने स्वभावको बदल सकता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिनको अठारहवें अध्यायमें सहज, स्वभावनियत कर्म नामसे कहा गया है।

यहाँ अर्जुनके लिये 'देहभृतां वर' कहनेका तात्पर्य है कि देहधारियोंमें वही मनुष्य श्रेष्ठ है, जो 'इस देहमें परमात्मा हैं—' ऐसा जान लेता है। ऐसा ज्ञान न हो, तो भी ऐसा मान ले कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरके कण-कणमें परमात्मा हैं, और उनको प्राप्त करना ही मनुष्य-जन्मका खास ध्येय है। इस ध्येयकी सिद्धिके लिये परमात्माकी आज्ञाके अनुसार ही काम करना है।

तीसरे और चौथे श्लोकमें जो ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञका वर्णन हुआ है, उसे समझनेमात्रके लिये जलका एक दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे, जब आकाश स्वच्छ होता है तो हमारे और सूर्यके मध्यमें कोई पदार्थ न दीखनेपर भी वास्तवमें वहाँ परमाणुरूपसे जल-तत्त्व रहता है। वही जल-तत्त्व भाप बनता है, और भापके घनीभूत होनेपर बादल बनता है। बादलमें जो जल-कण रहते हैं, उनके मिलनेसे बूँदे बन जाती हैं। उन बूँदोंमें जब ठण्डकके संयोगसे घनता आ जाती है तो वे ही बूँदें ओले (बर्फ) बन जाती हैं—यह जल-तत्त्वका बहुत स्थूल रूप हुआ। ऐसे ही निर्गुण-निराकार 'ब्रह्म' परमाणुरूपसे जल-तत्त्व है, 'अधियज्ञ' (व्यापक विष्णु) भापरूपसे जल है; 'अधिदैव' (हिरण्यगर्भ ब्रह्मा) बादलरूपसे जल है, 'अध्यात्म' (अनन्त जीव) बूँदेंरूपसे जल है, 'कर्म' (सृष्टि-रचनारूप कर्म) वर्षाकी क्रिया है और 'अधिभूत' (भौतिक सृष्टिमात्र) बर्फरूपसे जल है।

इस वर्णनका तात्पर्य यह हुआ कि जैसे एक ही जल परमाणु, भाप, बादल, वर्षाकी क्रिया, बूँदें और ओले (बर्फ) के रूपसे

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भिन्न-भिन्न दीखता है, पर वास्तवमें है एक ही। इसी प्रकार ए
परमात्मतत्त्व ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधि
रूपसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हुए भी तत्त्वतः एक ही है। इसीसे
अध्यायमें 'समग्रम्' (७।१) और 'वासुदेवः सर्वम्' (७।
कहा गया है।

तात्त्विक दृष्टिसे तो सब कुछ वासुदेव ही है (७।१
इसमें भी जब विवेक-दृष्टिसे देखते हैं तो शरीर-शरीरी, प्रकृति
—ऐसे दो भेद हो जाते हैं। उपासनाकी दृष्टिसे देखते हैं तो उ
(परमात्मा), उपासक (जीव) और त्याज्य (प्रकृतिका का
संसार)—ये तीन भेद हो जाते हैं। इन तीनोंको समझनेके
यहाँ इनके छः भेद किये गये हैं—

परमात्माके दो भेद—ब्रह्म (निर्गुण) और अधियज्ञ (स

जीवके दो भेद—अध्यात्म (सामान्य जीव, जो कि ब
और अधिदैव (कारक पुरुष, जो कि मुक्त हैं)।

संसारके दो भेद—कर्म (जो कि परिवर्तनका पु
और अधिभूत (जो कि पदार्थ हैं)।

परमात्मा }	ब्रह्म—अधियज्ञ
जीव }	अध्यात्म—अधिदैव
संसार }	कर्म—अधिभूत

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

विशेष बात

(१)

सब संसारमें परमात्मा व्याप्त हैं—'मया ततमिदं सर्वम्' (९ । ४), 'येन सर्वमिदं ततम्' (१८ । ४६); सब संसार परमात्मामें है—'मयि सर्वमिदं प्रोतम्' (७ । ७); सब कुछ परमात्मा ही हैं—'वासुदेवः सर्वम्' (७ । १९); सब संसार परमात्माका है—'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च' (९।२४), 'भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्' (५ । २८)—इस प्रकार गीतामें भगवान्‌के तरह-तरहके वचन आते हैं। इन सबका सामञ्जस्य कैसे हो ! सबकी संगति कैसे बैठे ! इसपर विचार किया जाता है।

संसारमें परमात्मप्राप्तिके लिये, अपने कल्याणके लिये साधना करनेवाले जितने भी साधक* हैं, उनको एक तो संसार सत्य दीखता है और एक वे परमात्माको मानते हैं। वे सभी संसारसे छूटना चाहते हैं और परमात्माको प्राप्त करना चाहते हैं। कारण कि संसारके साथ सम्बन्ध रखनेसे सदा रहनेवाली शान्ति और सुख नहीं मिल सकता, प्रत्युत सदा अशान्ति और दुःख ही मिलता रहता है—

* सदा रहनेवाली शान्ति और अनन्त सुख मिले, जिसमें अशान्ति और दुःखका लेश भी न हो—ऐसा विचार करनेवाले 'साधक' होते हैं। परन्तु जो संसारमें ही रहना चाहते हैं, संसारसे ही सुख लेना चाहते हैं, सांसारिक संग्रह और भोगोंमें ही लगे रहना चाहते हैं और संसारके सुख-दुःखको भोगते रहते हैं, वे साधक नहीं होते, प्रत्युत 'संसारी' होते हैं और जन्म-मरणके चक्करमें पड़े रहते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ऐसा मनुष्योंका प्रत्यक्ष अनुभव है। परमात्मा अनन्त आनन्दके स्व… हैं, वहाँ दुःखका लेश भी नहीं है—ऐसा शास्त्रोंका कथन है… सन्तोंका अनुभव है।

अब विचार यह करना है कि साधकको संसार तो प्रत्य… रूपसे दीखता है और परमात्माको वह केवल मानता है… परमात्मा प्रत्यक्ष दीखते नहीं। शास्त्र और सन्त कहते हैं कि '… परमात्मा हैं और परमात्मामें संसार है' इसको मानकर साधक… करता है। उस साधनामें जबतक संसारकी मुख्यता रहती है… तक परमात्माकी मान्यता गौण रहती है। साधन करने… ज्यों-ज्यों परमात्माकी धारणा (मान्यता) मुख्य होती चली जा… त्यों-ही-त्यों संसारकी मान्यता गौण होती चली जाती है। परम… धारणा सर्वथा मुख्य होनेपर साधकको यह स्पष्ट दीखने ल… है कि संसार पहले नहीं था और फिर बादमें नहीं रहेगा… वर्तमानमें जो 'है' रूपसे दीखता है, वह भी प्रतिक्षण अभावमें… रहा है। जब संसार नहीं था, तब भी परमात्मा थे; जब सं… नहीं रहेगा, तब भी परमात्मा रहेंगे और वर्तमानमें संसारके प्रति… अभावमें जाते हुए भी परमात्मा ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं। तात्… कि संसारका सदा अभाव है और परमात्माका सदा भाव है। इस… जब संसारकी स्वतन्त्र सत्ताका सर्वथा अभाव हो जाता है, तब… स्वरूपसे 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'—ऐसा वास्तविक अनुभ… जाता है, जिसके होनेसे साधक 'सिद्ध' कहा जाता है। कारण… 'संसारमें परमात्मा हैं और परमात्मामें संसार है'—ऐसी …

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

संसारकी सत्ता माननेसे ही होती थी और संसारकी सत्ता साधकके रागके कारण ही दीखती थी। इस वास्ते तत्त्वतः सब कुछ परमात्मा ही हैं।

(२)

सत् और असत् सब परमात्मा ही हैं—'सदसच्चाहम्' (९। १९); परमात्मा न सत् कहे जा सकते हैं और न असत् कहे जा सकते हैं—'न सत्तन्नासदुच्यते' (१३ । १२); परमात्मा सत् भी हैं, असत् भी हैं और सत् असत् दोनोंसे परे भी है—'सदसत्तत्परं यत्' (११ । ३७) इस प्रकार गीतामें भिन्न-भिन्न वचन आते हैं। अब उनकी संगतिके विषयमें विचार किया जाता है।

परमात्मतत्त्व अत्यन्त अलौकिक और विलक्षण है। उस तत्त्वका वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। उस तत्त्वको इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि नहीं पकड़ सकते अर्थात् वह तत्त्व इन्द्रियाँ, मन और बुद्धिकी परिधिमें नहीं आता। हाँ, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि उसमें विलीन हो सकते हैं। साधक उस तत्त्वमें स्वयं लीन हो सकता है, उसको प्राप्त कर सकता है, पर उस तत्त्वको अपने कब्जेमें, अपने अधिकारमें, अपनी सीमामें नहीं ले सकता।

परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति चाहनेवाले साधक दो तरहके होते हैं—एक विवेकप्रधान और एक श्रद्धाप्रधान अर्थात् एक मस्तिष्क-प्रधान होता है और एक हृदयप्रधान होता है। विवेकप्रधान साधकके भीतर विवेककी अर्थात् जाननेकी मुख्यता रहती है और श्रद्धाप्रधान

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

साधकके भीतर माननेकी मुख्यता रहती है । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विवेकप्रधान साधकमें श्रद्धा नहीं रहती और श्रद्धाप्रधान साधकमें विवेक नहीं रहता, प्रत्युत यह तात्पर्य है कि विवेकप्रधान साधकमें विवेककी मुख्यता और साथमें श्रद्धा रहती है, तथा श्रद्धाप्रधान साधकमें श्रद्धाकी मुख्यता और साथमें विवेक रहता है। दूसरे शब्दोंमें, जाननेवालोंमें मानना भी रहता है और माननेवालोंमें जानना भी रहता है। जाननेवाले जानकर मान लेते हैं और माननेवाले मानकर जान लेते हैं। इस वास्ते किसी भी तरहके साधकमें किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं रहती।

साधक चाहे विवेकप्रधान हो, चाहे श्रद्धाप्रधान हो, पर साधनमें उसकी अपनी रुचि, श्रद्धा, विश्वास और योग्यताकी प्रधानता रहती है। रुचि, श्रद्धा-विश्वास और योग्यता एक साधनमें होनेसे साधक उस तत्त्वको जल्दी समझता है। परन्तु रुचि और श्रद्धा-विश्वास होनेपर भी वैसी योग्यता न हो अथवा योग्यता होनेपर भी वैसी रुचि और श्रद्धा-विश्वास न हो, तो साधकको उस साधनमें कठिनता पड़ती है। रुचि होनेसे मन स्वाभाविक लग जाता है, श्रद्धा-विश्वास होनेसे बुद्धि स्वाभाविक लग जाती है और योग्यता होनेसे बात ठीक समझमें आ जाती है।

विवेकप्रधान साधक निर्गुण-निराकारको पसंद करता है अर्थात् उसकी रुचि निर्गुण-निराकारमें होती है। श्रद्धाप्रधान साधक सगुण-साकारको पसंद करता है अर्थात् उसकी रुचि सगुण-साकारमें होती है। जो निर्गुण-निराकारको पसंद करता है, वह

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कहता है, कि परमात्मतत्त्व न सत् कहा जा सकता है और न असत् कहा जा सकता है। जो सगुण-साकारको पसंद करता है वह कहता है कि परमात्मा सत् भी हैं, असत् भी हैं और सत्-असत्से परे भी हैं।

तात्पर्य यह हुआ कि चिन्मय-तत्त्व तो हरदम ज्यों-का-त्यों ही रहता है और जड़ असत् कहलानेवाला संसार निरन्तर बदलता रहता है। जब यह चेतन जीव बदलते हुए संसारको महत्त्व देता है, उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लेता है, तो वह जन्म-मरणके चक्करमें घूमता रहता है। परन्तु जब यह जड़तासे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है, तो इसको स्वतःसिद्ध चिन्मय-तत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है। विवेकप्रधान साधक विवेक-विचारके द्वारा जड़ताका त्याग करता है। जड़ताका त्याग होनेपर चिन्मय-तत्त्व अवशेष रहता है अर्थात् नित्यप्राप्त तत्त्वका अनुभव हो जाता है। श्रद्धाप्रधान साधक केवल भगवान्‌के ही सम्मुख हो जाता है, जिससे वह जड़तासे विमुख होकर भगवान्‌को प्रेमपूर्वक प्राप्त कर लेता है। विवेकप्रधान साधक तो सम, शान्त, सत्-घन, चित्-घन, आनन्द-घन तत्त्वमें अटल स्थित होकर अखण्ड आनन्दको प्राप्त होता है, पर श्रद्धाप्रधान साधक भगवान्‌के साथ अभिन्न होकर प्रेमके अनन्त, प्रतिक्षण वर्धमान आनन्दको प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार दोनों ही साधकोंको जड़तासे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेदपूर्वक चिन्मय-तत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है और 'सत्-असत् अर्थात् सब कुछ परमात्मा ही हैं'—ऐसा अनुभव हो जाता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सम्बन्ध—

दूसरे श्लोकमें अर्जुनका सातवाँ प्रश्न था कि अन्तकालमें आप कैसे जाननेमें आते हैं ? इसका उत्तर भगवान् आगेके श्लोकमें देते हैं ।

श्लोक—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

अर्थ—

जो पुरुष अन्तकालमें भी मेरा स्मरण करते हुए शरीरको छोड़कर जाता है, वह मेरेको ही प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है ।'

व्याख्या—

'अन्तकाले च* मामेव ......याति नास्त्यत्र संशयः'— 'अन्तकालमें भी मेरा स्मरण करते हुए जो शरीर छोड़कर जाता है'—इसका तात्पर्य हुआ कि इस प्राणीको जीवनमें साधन-भजन करके अपना उद्धार करनेका अवसर दिया था, पर इसने कुछ किया ही नहीं । अब बेचारा यह प्राणी अन्तकालमें दूसरा साधन करनेमें असमर्थ है, इस वास्ते बस मेरेको याद कर ले तो इसको मेरी प्राप्ति हो जायगी ।

'मामेव स्मरन्' का तात्पर्य है कि सुनने, समझने और माननेमें जो कुछ आता है, वह सब मेरा समग्ररूप है । अतः जो उसको मेरा ही स्वरूप मानेगा उसको अन्तकालमें भी मेरा ही चिन्तन होगा अर्थात् उसने जब सब कुछ मेरा ही स्वरूप मान लिया

* यहाँ 'च' अव्ययका अर्थ 'अपि' अर्थात् 'भी' है ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तो अन्तकालमें उसको जो कुछ याद आयेगा, वह मेरा ही स्वरूप होगा, इस वास्ते वह स्मरण मेरा ही होगा। मेरा स्मरण होनेसे उसको मेरी ही प्राप्ति होगी।

'मद्भावम्' कहनेका तात्पर्य है कि साधकने मेरेको जिस-किसी भिन्न अथवा अभिन्न भावसे अर्थात् सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, द्विभुज-चतुर्भुज तथा नाम, लीला, धाम, रूप आदिसे स्वीकार किया है, मेरी उपासना की है, अन्तसमयके स्मरणके अनुसार वह मेरे उसी भावको प्राप्त होता है।

जो भगवान्‌की उपासना करते हैं, वे तो अन्तसमयमें उपास्यका स्मरण होनेसे उसी उपास्यको अर्थात् भगवद्भावको प्राप्त होते हैं। परन्तु जो उपासना नहीं करते, उनको भी अन्तसमयमें किसी कारणवशात् भगवान्‌के किसी नाम, रूप, लीला, धाम आदिका स्मरण हो जाय, तो वे भी उन उपासकोंकी तरह उसी भगवद्भावको प्राप्त हो जाते हैं। तात्पर्य है कि जैसे गुणोंमें स्थित रहनेवालेकी (गीता १४। १८) और अन्तमें जिस-किसी गुणके बढ़नेवालेकी वैसी ही गति होती है (गीता १४। १४-१५), ऐसे ही जिसको अन्तमें भगवान् याद आ जाते हैं, उसकी भी उपासकोंकी तरह गति होती है अर्थात् भगवान्‌की प्राप्ति होती है।

भगवान्‌के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि अनेक रूपोंका और नाम, लीला, धाम आदिका भेद तो साधकोंकी दृष्टिसे है, अन्तमें सब एक हो जाते हैं अर्थात् अन्तमें सब एक 'मद्भाव'—भगवद्भावको प्राप्त हो जाते हैं; क्योंकि भगवान्‌का समग्ररूप

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

एक ही है। परन्तु गुणोंके अनुसार गतिको प्राप्त होनेवाले अन्तमें एक नहीं हो सकते, क्योंकि तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम) अलग-अलग हैं। इस वास्ते गुणोंके अनुसार उनकी गतियाँ भी अलग-अलग होती हैं।

भगवान्‌का स्मरण करके शरीर छोड़नेवालोंका तो भगवान्‌के साथ सम्बन्ध रहता है और गुणोंके अनुसार शरीर छोड़नेवालोंका गुणोंके साथ सम्बन्ध रहता है। इस वास्ते अन्तमें भगवान्‌का स्मरण करनेवाले भगवान्‌के सम्मुख हो जाते हैं अर्थात् भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं और गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाले गुणोंके सम्मुख हो जाते हैं अर्थात् गुणोंके कार्य जन्म-मरणको प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान्‌ने यह एक विशेष छूट दी हुई है कि मरणासन्न व्यक्तिके कैसे ही आचरण रहे हों, कैसे ही भाव रहे हों, किसी भी तरहका जीवन बीता हो, पर अन्तकालमें वह भगवान्‌को याद कर ले तो उसका कल्याण हो जाय। कारण कि भगवान्‌ने जीवका कल्याण करनेके लिये ही उसको मनुष्यशरीर दिया है और जीवने उस मनुष्यशरीरको स्वीकार किया है। इस वास्ते जीवका कल्याण होना चाहिये, तभी भगवान्‌का इस जीवको मनुष्यशरीर देना और जीवका मनुष्यशरीर लेना सफल होगा। परन्तु वह अपना उद्धार किये बिना ही आज दुनियासे विदा हो रहा है, इसके लिये भगवान् कहते हैं कि 'भैया! तेरी और मेरी दोनोंकी इज्जत रह जाय, इस वास्ते अब जाते-जाते (अन्तकालमें) भी तू मेरेको याद कर ले तो तेरा कल्याण हो जाय!' इस वास्ते हरेक मनुष्यके लिये सावधान होनेकी जरूरत है कि वह सब समयमें भगवान्‌का स्मरण

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करे, कोई समय खाली न जाने दे; क्योंकि अन्तकालका पता नहीं है कि कब आ जाय। यह बात तो है नहीं कि इतने वर्ष, इतने महीने और इतने दिनोंके बाद मृत्यु होगी। देखनेमें तो यही आता है कि गर्भमें ही कई बालक मर जाते हैं, कई जन्मते ही मर जाते हैं, कई कुछ दिनोंमें, महीनोंमें, वर्षोंमें मर जाते हैं। इस प्रकार मरनेकी चाल हरदम चल ही रही है। इस वास्ते सब समयमें भगवान्‌को याद रखना चाहिये, और यही समझना चाहिये कि बस, यही अन्तकाल है! नीतिमें यह बात आती है कि अगर धर्मका आचरण करना हो, कल्याण करना हो तो मृत्युने मेरे केश पकड़े हुए हैं; झटका दिया कि खतम!' ऐसा विचार हरदम रहना चाहिये —'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्'।

भगवान्‌की उपर्युक्त छूटसे मनुष्यमात्रको विशेष लाभ लेना चाहिये। कहीं कोई भी व्याधिग्रस्त, मरणासन्न व्यक्ति हो तो उसके इष्टके चित्र या मूर्तिको उसे दिखाना चाहिये, जैसे उसकी उपासना है और जिस भगवन्नाममें उसकी रुचि हो, जिसका वह जप करता हो, वही भगवन्नाम उसको सुनाना चाहिये; जिस स्वरूपमें उसकी श्रद्धा और विश्वास हो, उसकी याद दिलानी चाहिये; भगवान्‌की महिमाका वर्णन करना चाहिये; गीताके श्लोक सुनाने चाहिये। अगर वह बेहोश हो जाय तो उसके पास भगवन्नामका जप-कीर्तन करना चाहिये, जिससे उस मरणासन्न व्यक्तिके सामने भगवत्सम्बन्धी वायुमण्डल बना रहे। भगवत्सम्बन्धी वायुमण्डल रहनेसे वहाँ यमराजके दूत नहीं आ सकते। अजामिलके द्वारा मृत्युके समय 'नारायण' नामका उच्चारण करनेसे

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

वहाँ भगवान्‌के पार्षद आ गये और यमदूत भागकर यमराजके पास गये, तो यमराजने अपने दूतोंसे कहा कि 'जहाँ भगवन्नामका जप, कीर्तन, कथा आदि होते हैं, वहाँ तुमलोग कभी मत जाना; क्योंकि वहाँ हमारा राज्य नहीं है*'। ऐसा कहकर यमराजने भगवान्‌का स्मरण करके भगवान्‌से क्षमा माँगी कि 'मेरे दूतोंके द्वारा जो अपराध हुआ है, उसको आप क्षमा करें'† ।

अन्तकालमें 'स्मरण' का तात्पर्य है कि उसने भगवान्‌का जो स्वरूप मान रखा है, उसकी याद आ जाय अर्थात् उसने पहले राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, सर्वव्यापक विश्वरूप परमात्मा आदिमेंसे जिस स्वरूपको मान रखा है, उस स्वरूपके नाम, रूप, लीला, धाम, गुण, प्रभाव आदिकी याद आ जाय । उसको याद करते हुए शरीरको छोड़कर जानेसे वह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है । कारण कि भगवान्‌की याद आनेसे 'मैं' शरीर हूँ और शरीर 'मेरा है' —इसकी याद नहीं रहती, प्रत्युत केवल भगवान्‌की ही

* एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां
स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥
(श्रीमद्भा० ६ । ३ । २६)

† तत्क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणो
नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥
(श्रीमद्भा० ६ । ३ । ३०)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

याद करते हुए शरीर छूट जाता है। इस वास्ते उसके लिये भगवान्‌को प्राप्त होनेके अतिरिक्त और कोई गुंजाइश ही नहीं है।

यहाँ शङ्का होती है कि जिस व्यक्तिने उम्रभरमें भजन-स्मरण नहीं किया, कोई साधन नहीं किया, सर्वथा भगवान्‌से विमुख रहा, उसको अन्तकालमें भगवान्‌का स्मरण कैसे होगा और उसका कल्याण कैसे होगा ? इसका समाधान है कि अन्तसमयमें उसपर भगवान्‌की कोई विशेष कृपा हो जाय अथवा उसको किसी सन्तके दर्शन हो जायँ तो भगवान्‌का स्मरण होकर उसका कल्याण हो जाता है। उसके कल्याणके लिये कोई साधक उसको भगवान्‌का नाम, लीला, चरित्र सुनाये, पद गाये तो भगवान्‌का स्मरण होनेसे उसका कल्याण हो जाता है। अगर मरणासन्न व्यक्तिको गीतामें रुचि हो तो उसको गीताका आठवाँ अध्याय सुनाना चाहिये; क्योंकि इस अध्यायमें जीवकी सद्गतिका विशेषतासे वर्णन आया है। इसका सुननेसे उसको भगवान्‌की स्मृति हो जाती है। कारण कि वास्तवमें परमात्माका ही अंश होनेसे उसका परमात्माके साथ स्वतः सम्बन्ध है ही। अगर अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी आदि किसी तीर्थस्थलमें उसके प्राण छूट जायँ तो उस तीर्थके प्रभावसे उसको भगवान्‌की स्मृति हो जायगी *। ऐसे ही जिस जगह भगवान्‌के नामका जप, कीर्तन, कथा, सत्संग आदि होता है, उस जगह उसकी मृत्यु हो जाय तो वहाँके पवित्र वायुमण्डलके प्रभावसे उसको भगवान्‌की स्मृति हो सकती है। अन्तकालमें कोई भयंकर जन्तु आदि दीखनेसे

* अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भयभीत होनेपर भी भगवान्‌को याद आ सकती है। जैसे, अजामिलने भयभीत होकर पुत्रके बहाने ही भगवान्‌का नाम लिया तो उसको लेने भगवान्‌के पार्षद आ गये। शरीर छूटते समय शरीर, कुटुम्ब, रुपये आदिकी आशा-ममता छूट जाय और यह भाव हो जाय कि 'हे नाथ! आपके बिना मेरा कोई नहीं है, केवल आप ही मेरे हैं' तो भगवान्‌की स्मृति होनेसे कल्याण हो जाता है। ऐसे ही किसी कारणसे अचानक अपने कल्याणका भाव बन जाय, तो भी कल्याण हो सकता है*। ऐसे ही कोई साधक किसी प्राणी, जीव-जन्तुके मृत्युसमयमें 'उसका कल्याण हो जाय' इस भावसे उसको भगवन्नाम सुनाता है, तो उस भगवन्नामके प्रभावसे उस प्राणीका कल्याण हो जाता है। शास्त्रोंमें तो सन्त-महापुरुषोंके प्रभावकी विचित्र बातें आती हैं कि यदि सन्त-महापुरुष किसी मरणासन्न व्यक्तिको देख लें अथवा उसके मृत शरीर-(मुर्दे-) को देख ले

---

* एक बार एक सज्जन गङ्गाजीसे होकर आये थे और सबको गङ्गाजलका आचमन दे रहे थे। वहाँ एक व्यक्ति खड़ा था; उसको जब वे आचमन देने लगे तो उसने कहा—मेरे पाप बहुत हैं, मेरी जानकारीमें मैंने बहुत पाप किये हैं, इस वास्ते इतने थोड़े गङ्गाजलसे मेरे पाप कैसे कट जायँगे! मेरा कल्याण कैसे होगा! तो उससे पूछा—कितना चाहिये? उसने कहा—लोटाभर दो। उस सज्जनने उसे लोटाभर गङ्गाजल दे दिया। उसने उस लोटाभर गङ्गाजलको पी लिया और कहा—अब मेरे पाप नहीं रहेंगे। यह सब घटना वहाँके एक भाईने सुनी थी। बादमें उस भाईने बताया कि वह व्यक्ति जब मरा, तो उसके प्राण दसवें द्वारसे फोड़कर निकले अर्थात् उसका कल्याण हो गया।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अथवा उसकी चिताके धुएँको देख लें अथवा चिताकी भस्मको देख लें, तो भी उस जीवका कल्याण हो जाता है* ।

मार्मिक बात

इस अध्यायके तीसरे-चौथे श्लोकोंमें ब्रह्म, अध्यात्म आदि जिन छः बातोंका वर्णन किया गया है, उसका तात्पर्य समग्ररूपसे है; और समग्ररूपका तात्पर्य है—'वासुदेवः सर्वम्' अर्थात् सब कुछ वासुदेव ही है । जिसको समग्ररूपका ज्ञान हो गया है, उसके लिये अन्तकालके स्मरणकी बात ही नहीं की जा सकती। कारण कि जिसकी दृष्टिमें संसारकी स्वतन्त्र सत्ता न होकर सब कुछ वासुदेव ही है, उसके लिये 'अन्तकालमें भगवान्का चिन्तन करें' यह कहना ही नहीं बनता । जैसे सामान्य मनुष्यको 'मैं हूँ' इस अपने होनेपनका किञ्चिन्मात्र भी स्मरण नहीं करना पड़ता, ऐसे ही उस महापुरुषको भगवान्का स्मरण नहीं करना पड़ता, प्रत्युत उसको जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें भगवान्के होने-पनका स्वाभाविक अटल ज्ञान रहता है ।

पवित्र-से-पवित्र अथवा अपवित्र-से-अपवित्र किसी भी देशमें; उत्तरायण-दक्षिणायन, शुक्लपक्ष-कृष्णपक्ष, दिन-रात्रि, प्रातः-सायं आदि

---

* महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः ।
परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥
कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम ।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥
(नारदपुराण, पूर्व० १ । ७ । ७४-७५)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

किसी भी कालमें; जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा, रुग्णता, नीरोग आदि किसी भी अवस्थामें; और पवित्र अथवा अपवित्र कोई भी वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ आदि सामने होनेपर भी उस महापुरुषके कल्याणमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं रहता !

उपर्युक्त महापुरुषोंके सिवाय परमात्माकी उपासना करनेवाले जितने भी साधक हैं, वे चाहे साकारके उपासक हों अथवा निराकारके उपासक हों; चाहे सगुणके उपासक हों अथवा निर्गुणके उपासक हों; चाहे राम, कृष्ण आदि अवतारोंके उपासक हों, भगवान्के किसी भी नाम, रूप, लीला, धाम आदिकी श्रद्धा-प्रेम-पूर्वक उपासना करनेवाले क्यों न हों, उन सबको अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अन्तसमयमें भगवान्के किसी भी स्वरूप, नाम आदिका स्मरण हो जाय, तो वह भगवान्का ही स्मरण है ।

साधकोंके सिवाय जिन मनुष्योंमें 'भगवान् हैं' ऐसा सामान्य आस्तिक-भाव है और वे किसी उपासना-विशेषमें नहीं लगे हैं, उनको भी अन्तसमयमें कई कारणोंसे भगवान्का स्मरण हो सकता है; जैसे, जीवनमें उसने सुना हुआ है कि दुःखीके दुःखको भगवान् मिटाते हैं, इस संस्कारसे अन्तसमयकी पीड़ा-(दुःख-) के समय भगवान्की याद आ सकती है । अन्तसमयमें अगर यमदूत दिखायी दे जायँ तो भयके कारण भगवान्का स्मरण हो सकता है । कोई सज्जन उसके सामने भगवान्का चित्र रख दे—उसको दिखा दे, उसको भगवन्नाम सुना दे, भगवान्की लीला-कथा सुना दे, भक्तोंके चरित्र सुना दे, उसके सामने कीर्तन करने लग जाय, तो उसको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भगवान्‌की याद आ जायगी । इस प्रकार किसी भी कारणसे भगवान्‌की वृत्ति होनेसे वह स्मरण भगवान्‌का ही स्मरण है ।

ऐसे साधक और सामान्य मनुष्योंके लिये ही अन्तकालमें भगवत्स्मरणकी बात कही जाती है, तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषोंके लिये नहीं ।

सम्बन्ध—

जो अन्तकालमें मेरा स्मरण करता है, वह मेरेको ही प्राप्त होता है—यह नियम केवल मेरे ही स्मरणके विषयमें नहीं है, प्रत्युत सभीके स्मरणके विषयमें है अर्थात् इसमें सम्पूर्ण जीवोंके लिये सब तरहकी स्वतन्त्रता है—यह बात भगवान् अगले श्लोकमें बताते हैं ।

श्लोक—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

अर्थ—

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! प्राणी अन्तकालमें जिस-जिस भी भावका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह उस (अन्तकालके) भावसे सदा भावित होता हुआ उस-उसको ही प्राप्त होता है अर्थात् उस-उस योनिमें ही चला जाता है ।

व्याख्या—

'यं यं वापि स्मरन्भावं ...... सदा तद्भावभावितः'— भगवान्‌ने इस नियममें दयासे भरी हुई एक विलक्षण बात बतायी है कि अन्तिम चिन्तनके अनुसार प्राणीको उस-उस योनिकी प्राप्ति होती है । जब यह नियम है तो मेरी स्मृतिसे मेरी प्राप्ति होगी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ही ! परम दयालु भगवान्‌ने अपने लिये अलग कोई विशेष नियम नहीं बताया है, प्रत्युत सामान्य नियममें ही अपनेको शामिल कर लिया है। तात्पर्य है कि भगवान्‌की दयाकी यह कितनी विलक्षणता है कि जितने मूल्यमें कुत्तेकी योनि मिले, उतने ही मूल्यमें भगवान् मिल जायँ !

'सदा तद्भावभावितः' का तात्पर्य है कि अन्तकालमें जिस भावका—जिस किसीका चिन्तन होता है, शरीर छोड़नेके बाद वह जीव जबतक दूसरा शरीर धारण नहीं कर लेता, तबतक उसी भावसे भावित रहता है अर्थात् अन्तकालका चिन्तन (स्मरण) वैसा ही स्थायी बना रहता है। अन्तकालके उस चिन्तनके अनुसार ही उसका मानसिक शरीर बना है और मानसिक शरीरके अनुसार ही वह दूसरा शरीर धारण करता है। कारण कि अन्तकालके चिन्तनको बदलनेके लिये वहाँ कोई मौका नहीं है, शक्ति नहीं है, बदलनेकी स्वतन्त्रता भी नहीं है तथा नया चिन्तन करनेका अधिकार भी नहीं है। इस वास्ते वह उसी चिन्तनको लिये उसीमें तल्लीन रहता है। फिर उसका जिस किसीके साथ कर्म-किञ्चिन्मात्र भी सम्बन्ध रहता है, वायु, जल, खाद्य-पदार्थ आदिके द्वारा वह वहाँ पुरुष-जातिमें प्रविष्ट होता है। फिर पुरुष-जातिसे स्त्री-जातिमें जाकर समयपर जन्म लेता है। जैसे, कुत्तेका पालन करनेवाला कोई मनुष्य अन्तसमयमें कुत्तेको याद करते हुए शरीर छोड़ता है, तो उसका मानसिक शरीर कुत्तेका बन जाता है, जिससे वह क्रमशः कुत्ता ही बन जाता है अर्थात् कुत्तेकी योनिमें जन्म ले

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है। इस तरह अन्तकालमें जिस किसीका स्मरण होता है, उसीके अनुसार जन्म लेना पड़ता है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मकानको याद करते हुए शरीर छोड़नेसे मकान बन जायगा, धनको याद करते हुए शरीर छोड़नेसे धन बन जायगा आदि, प्रत्युत मकानका चिन्तन होनेसे वह उस मकानमें चूहा, छिपकली आदि बन जायगा और धनका चिन्तन होनेसे वह साँप बन जायगा आदि। तात्पर्य यह हुआ कि अन्तकालके चिन्तनका नियम सजीव प्राणियोंके लिये ही है, निर्जीव (जड़) पदार्थोंके लिये नहीं। इस वास्ते जड़ पदार्थका चिन्तन होनेसे वह उससे सम्बन्धित कोई सजीव प्राणी बन जायगा।

मनुष्येतर (पशु, पक्षी आदि) प्राणियोंको अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही अन्तकालमें स्मरण होता है और उसीके अनुसार उनका अगला जन्म होता है। इस तरह अन्तकालके स्मरणका कानून सब जगह लागू पड़ता है। परंतु मनुष्यशरीरमें यह विशेषता है कि उसका अन्तकालका स्मरण कर्मोंके अधीन नहीं है। प्रत्युत पुरुषार्थके अधीन है। पुरुषार्थमें मनुष्य सर्वथा स्वतंत्र है। तभी तो अन्य योनियोंकी अपेक्षा इसकी अधिक महिमा है।

मनुष्य इस शरीरमें स्वतंत्रतापूर्वक जिससे सम्बन्ध जोड़ लेता है, उस सम्बन्धके अनुसार ही उसका अन्य योनियोंमें जन्म हो सकता है। परन्तु अन्तकालमें अगर वह भगवान्‌का स्मरण कर ले तो उसके सारे सम्बन्ध टूट जाते हैं। कारण कि वे सब सम्बन्ध वास्तविक नहीं हैं, प्रत्युत वर्तमानके बनाये हुए, कृत्रिम हैं और

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

भगवान्के साथ सम्बन्ध स्वतःसिद्ध है, बनाया हुआ नहीं है। इस वास्ते भगवान्की याद आनेसे उसके सारे कृत्रिम सम्बन्ध टूट जाते हैं।

अन्तकालीन गतिको समझनेके लिये एक दृष्टान्त देते हैं— कोई व्यक्ति अपना चित्र खिंचवाता है, तो चित्र खींचनेवाला व्यक्ति उसको ठीक तरहसे बैठाकर सावधान कर देता है और कहता है कि अब हिलना-डुलना नहीं, ठीक देखते रहना; मैं एक-दो-तीन कहूँगा तो आपका चित्र खिंच जायगा। जब चित्र खींचनेका समय आया तो अचानक उस व्यक्तिके मुखपर एक मक्खी बैठ गयी। चित्र खींचनेवालेके द्वारा 'तीन' कहते समय उस व्यक्तिने मुखपर बैठी मक्खीको उड़ाया अथवा उसे उड़ानेके लिये मुखमें विकृति की। उस व्यक्तिको यह आशा रही कि मेरा चित्र बड़ा सुन्दर आयगा। परन्तु जब चित्र खींचनेवालेने चित्रको साफ करके दूसरे-तीसरे दिन उस व्यक्तिको चित्र दिखाया तो उसकी आशा निराशामें बदल गयी और उसने झुँझलाकर कहा—'यह तुमने क्या किया? मेरा चित्र बिगाड़ दिया!' चित्र खींचनेवालेने कहा—'बाबूजी! चित्र खींचते समय आपने मुखकी जैसी आकृति बनायी, वैसी ही आ गयी। अब तो कुछ नहीं हो सकता!' ऐसे ही अन्तकालमें प्राणी जैसा चिन्तन करता है, उसीके अनुसार उसको अगला जन्म मिलता है।

विशेष बात

अन्तकालीन गतिके नियममें भगवान्की न्यायकारिता और दयालुता—ये दोनों ही भरी हुई हैं। साधारण दृष्टिसे न्याय और

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

दया—दोनों परस्पर विरुद्ध मालूम देते हैं। अगर न्याय करेंगे तो दया सिद्ध नहीं होगी, और दया करेंगे तो न्याय सिद्ध नहीं होगा। कारण कि न्यायमें ठीक-ठीक निर्णय होता है, छूट नहीं होती और दयामें छूट होती है। परन्तु शास्त्रमें यह विरोध सामान्य और क्रूर पुरुषके बनाये हुए न्यायमें ही आ सकता है, भगवान्‌के बनाये हुए न्यायमें नहीं; क्योंकि भगवान् परम दयालु और प्राणिमात्रके सुहृद् हैं—

'सुहृदं सर्वभूतानाम्' (गीता ५। २९)। इस वास्ते भगवान्‌के सभी न्याय, कानून दयासे परिपूर्ण होते हैं।

प्राणी अन्तकालमें जैसा स्मरण करता है, उसीके अनुसार उसकी गति होती है। अगर कोई कुत्तेका चिन्तन करते हुए मरता है, तो वह क्रमशः कुत्ता ही बन जाता है। यह भगवान्‌का प्राणिमात्रके प्रति लागू होनेवाला न्याय हुआ; क्योंकि भगवान्‌ने प्राणिमात्रको यह स्वतन्त्रता दी है कि वह चाहे मेरा (भगवान्‌का) स्मरण करे, चाहे अन्यका स्मरण करे। इस वास्ते यह भगवान्‌का 'न्याय' है। जितने मूल्यमें कुत्तेकी योनि मिले, उतने ही मूल्यमें भगवान् मिल जायँ—यह प्राणिमात्रके प्रति भगवान्‌की 'दया' है। अगर मनुष्य भगवान्‌की इस न्यायकारिता और दयालुताकी तरफ ख्याल करे, तो उसका भगवान्‌में आकर्षण हो जायगा।

सम्बन्ध—

जब अन्तकालके स्मरणके अनुसार ही गति होती है, तो फिर अन्तकालमें भगवान्‌का स्मरण होनेके लिये मनुष्यको क्या करना चाहिये—इसका उपाय अगले श्लोकमें बताते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

अर्थ—

इस वास्ते तू सब समयमें मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। मेरेमें मन और बुद्धि अर्पित करनेवाला तू निःसन्देह मेरेको ही प्राप्त होगा।

व्याख्या—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य* च'—यहाँ 'सर्वेषु कालेषु' पदोंका सम्बन्ध केवल स्मरणसे ही है, युद्धसे नहीं; क्योंकि युद्ध सब समयमें, निरन्तर हो ही नहीं सकता। कोई भी क्रिया निरन्तर नहीं हो सकती, प्रत्युत समय-समयपर ही हो सकती है। कारण कि प्रत्येक क्रियाका आरम्भ और समाप्ति होती है—यह बात सबके अनुभवकी है। परन्तु भगवत्प्राप्तिका उद्देश्य होनेसे भगवान्‌का स्मरण सब समयमें होता है; क्योंकि उद्देश्यकी जाग्रति हरदम रहती है।

सब समयमें स्मरण करनेके लिये कहनेका तात्पर्य है कि प्रत्येक कार्यमें समयका विभाग होता है,; जैसे—यह समय सोनेका और यह समय जगनेका है, यह समय नित्यकर्मका है, यह समय जीविकाके लिये काम-धंधा करनेका है, यह समय भोजनका है आदि-आदि, परन्तु भगवान्‌के स्मरणमें समयका विभाग नहीं होना चाहिये। भगवान्‌को तो सब समयमें ही याद रखना चाहिये।

* यहाँ 'युध्यस्व' के स्थानपर 'युध्य' पदका प्रयोग आर्ष है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'युध्य च' कहनेका तात्पर्य है कि यहाँ अर्जुनके सामने युद्धरूप कर्तव्य-कर्म है, जो उनको स्वतः प्राप्त हुआ है—'यदृच्छया चोपपन्नम्' (गीता २ । ३२)। ऐसे ही मनुष्यको कर्तव्यरूपसे जो प्राप्त हो जाय, उसको भगवान्‌का स्मरण करते हुए करना चाहिये। परन्तु उसमें भगवान्‌का स्मरण मुख्य है और कर्तव्य-कर्म गौण है।

'अनुस्मर' का अर्थ है कि स्मरणके पीछे स्मरण होता रहे अर्थात् निरन्तर स्मरण होता रहे । दूसरा अर्थ यह है कि भगवान् किसी भी जीवको भूलते नहीं । भगवान्‌ने सातवें अध्यायमें 'वेदाहम्' (७ । २६) कहकर वर्तमानमें सभी जीवोंको स्वतः जाननेकी बात कही है । जब भगवान् वर्तमानमें सबको जानते हैं तो भगवान्‌का सम्पूर्ण जीवोंको स्मरण करना स्वाभाविक हुआ, अब यह जीव भगवान्‌का स्मरण करे तो उसका बेड़ा पार है !

भगवान्‌के स्मरणकी जाग्रतिके लिये भगवान्‌के साथ अपनापन होना चाहिये । यह अपनापन जितना ही दृढ़ होगा, उतनी ही भगवान्‌की स्मृति बार-बार आयेगी ।

'मय्यर्पितमनोबुद्धिः'— मेरेमें मन-बुद्धि अर्पित कर देनेका साधारण अर्थ होता है कि मनसे भगवान्‌का चिन्तन हो और बुद्धिसे परमात्माका निश्चय किया जाय । परन्तु इसका वास्तविक अर्थ है —मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदिको भगवान्‌के ही मानना, कभी भूलसे भी इनको अपना न मानना । कारण कि जितने भी प्राकृत पदार्थ हैं, वे सब-के-सब भगवान्‌के ही हैं । उन प्राकृत पदार्थोंको अपना मानना ही गलती है । साधक जबतक उनको अपना मानेगा, तबतक वे शुद्ध नहीं हो सकते; क्योंकि उनको अपना मानना ही

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

खास अशुद्धि है, और इस अशुद्धिसे ही अनेक अशुद्धियाँ पैदा होती हैं।

वास्तवमें प्राणीका सम्बन्ध केवल प्रभुके साथ ही है। प्रकृति और प्रकृतिके कार्यके साथ प्राणीका सम्बन्ध कभी था नहीं, है नहीं और रहेगा भी नहीं। कारण कि प्राणी साक्षात् परमात्माके सनातन अंश हैं; अतः उनका प्रकृतिसे सम्बन्ध कैसे हो सकता है? इस वास्ते साधकको चाहिये कि वह मन और बुद्धिको भगवान्के ही समझकर भगवान्के अर्पण कर दे। फिर उसको स्वाभाविक ही भगवान्की प्राप्ति हो जायगी; क्योंकि प्रकृतिके कार्य शरीर, मन, बुद्धि आदिके साथ सम्बन्ध जोड़नेसे ही वह भगवान्से विमुख हुआ था।

वे प्राकृत पदार्थ कैसे हैं—इस विषयमें दार्शनिक मतभेद तो है, पर 'वे हमारे नहीं हैं और हम उनके नहीं हैं'—इस वास्तविकतामें कोई मतभेद नहीं है अर्थात् इसको सभी दर्शनकार मानते हैं। इन दर्शनकारोंमें जो ईश्वरवादी हैं, वे सभी उन प्राकृत पदार्थोंको ईश्वरके ही मानते हैं; और दूसरे जितने दर्शनकार हैं, वे उन पदार्थोंको चाहे प्रकृतिके मानें, चाहे परमात्माके मानें, पर दार्शनिक दृष्टिसे वे उनको अपने नहीं मान सकते। इस वास्ते साधक उन सब पदार्थोंको ईश्वरके ही मानकर ईश्वरके अर्पित कर दे, तो उनका 'हम भगवान्के ही थे और भगवान्के ही रहेंगे' ऐसा भगवान्के साथ नित्य-सम्बन्ध जाग्रत् हो जायगा।

'मामेवैष्यस्यसंशयम्'—मेरेमें मन-बुद्धि अर्पण करनेवाला होनेसे तू मेरेको ही प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कारण कि मैं तुझे नित्य प्राप्त हूँ । अप्राप्तिका अनुभव तो कभी प्राप्त न होनेवाले शरीर और संसारको अपना माननेसे, उनके साथ सम्बन्ध जोड़नेसे ही होता है । नित्यप्राप्त तत्त्वका कभी अभाव नहीं हुआ और न हो सकता है । अगर तू मन, बुद्धि और स्वयंको मेरे अर्पण कर देगा, तो तेरा मेरे साथ जो नित्य-सम्बन्ध है, वह प्रकट हो जायगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

स्मरण-सम्बन्धी विशेष बात

स्मरण तीन तरहका होता है—बोधजन्य, सम्बन्धजन्य और क्रियाजन्य । बोधजन्य स्मरणका कभी अभाव नहीं होता । जबतक सम्बन्धको न छोड़े, तबतक सम्बन्धजन्य स्मरण बना रहता है । क्रियाजन्य स्मरण निरन्तर नहीं रहता । इन तीनों प्रकारके स्मरणका विस्तार इस तरह है:—

(१) **बोधजन्य स्मरण**—अपना जो होनापन है, उसको याद नहीं करना पड़ता । परन्तु शरीरके साथ जो एकता मान ली है, वह गलती की है । बोध होनेपर वह भूल मिट जाती है, फिर अपना होनापन स्वतःसिद्ध रहता है । गीतामें भगवान्‌के वचन हैं—'तू, मैं और ये राजालोग पहले नहीं थे, यह बात नहीं है और भविष्यमें नहीं रहेंगे, यह बात भी नहीं है *' अर्थात् निश्चित ही पहले थे और निश्चित ही पीछे रहेंगे । 'जो पहले सर्ग-महासर्ग और

---

* न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
(गीता २ । १२)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रलय-महाप्रलयमें था, वही यह प्राणि-समुदाय उत्पन्न हो-होकर नष्ट होता है' (८ । १९) । इसमें 'वही यह प्राणिसमुदाय' तो परमात्माका अंश है और 'उत्पन्न हो-होकर नष्ट होनेवाला' शरीर है। अगर नष्ट होनेवाले भागका विवेकपूर्वक सर्वथा त्याग कर दें, तो अपने होनेपनका स्पष्ट बोध हो जाता है । यह बोधजन्य स्मरण नित्य-निरन्तर बना रहता है, कभी नष्ट नहीं होता; क्योंकि यह स्मरण अपने नित्य-स्वरूपका है ।

(२) **सम्बन्धजन्य स्मरण**—जिसको हम स्वयं मान लेते हैं, वह सम्बन्धजन्य स्मरण है, जैसे 'शरीर हमारा है, संसार हमारा है'। यह माना हुआ सम्बन्ध तबतक नहीं मिटता, जबतक हम 'यह हमारा नहीं है' ऐसा नहीं मान लेते । परन्तु भगवान् वास्तवमें हमारे हैं; हम मानें तो हमारे हैं, नहीं मानें तो हमारे हैं, जानें तो हमारे हैं, नहीं जानें तो हमारे हैं, हमारे दीखें तो हमारे हैं, हमारे नहीं दीखें तो हमारे हैं । हम सब उनके अंश हैं और वे अंशी हैं। हम उनसे अलग नहीं हो सकते और वे हमसे अलग नहीं हो सकते । जबतक हम शरीर-संसारके साथ अपना सम्बन्ध मानते हैं, तबतक भगवान्का यह वास्तविक सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होता । इस वास्ते जब हम शरीर और संसारके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव स्वीकार कर लेंगे, तब भगवान्का नित्य-सम्बन्ध स्वतः जाग्रत् हो जायगा । फिर भगवान्का स्मरण नित्य-निरन्तर बना रहता है ।

(३) **क्रियाजन्य स्मरण**—क्रियाजन्य स्मरण अभ्यासजन्य होता है । जैसे स्त्रियाँ सिरपर जलका घड़ा रखकर चलती हैं तो अपने दोनों

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हाथोंको खुला रखती हैं और दूसरी स्त्रियोंके साथ बातें भी करती रहती हैं; परन्तु सिरपर रखे घड़ेकी सावधानी निरन्तर रहती है। नट रस्सेपर चलते हुए गाता भी है, बोलता भी है, पर रस्सेका ध्यान निरन्तर रहता है। ड्राइवर मोटर चलाता है, हाथसे गियर बदलता है, हैण्डल घुमाता है और मालिकसे बातचीत भी करता है, पर रास्तेका ध्यान निरन्तर रहता है। ऐसे ही सम्पूर्ण क्रियाओंमें भगवान्‌को निरन्तर याद रखना अभ्यासजन्य स्मरण है।

इस अभ्यासजन्य स्मरणके भी तीन प्रकार हैं :—

(क) संसारका कार्य करते हुए भगवान्‌को याद रखना—इसमें सांसारिक कार्यकी मुख्यता और भगवान्‌के स्मरणकी गौणता रहती है। इस वास्ते इसमें यह भाव रहता है कि संसारका काम बिगड़े नहीं, ठीक तरहसे होता रहे, और साथ-साथ भगवान्‌का स्मरण भी होता रहे।

(ख) भगवान्‌को याद रखते हुए संसारका कार्य करना—इसमें भगवान्‌के स्मरणकी मुख्यता और सांसारिक कामकी गौणता रहती है। इसमें भगवान्‌के स्मरणमें भूल न हो—यह सावधानी रहेगी, और संसारके काममें भूल भी हो जायगी तो उसकी परवाह नहीं होगी। कारण कि साधकमें यह जाग्रति रहेगी कि संसारका काम सुधर जाय तो भी अन्तमें रहेगा नहीं, और बिगड़ जाय तो भी अन्तमें रहेगा नहीं। इस वास्ते इसमें भगवान्‌के स्मरणकी भूल नहीं होती।

(ग) कार्यको भगवान्‌का ही समझना—इसमें काम-धन्धा करते हुए भी एक विलक्षण आनन्द रहता है कि 'मेरा अहोभाग्य है

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कि मैं भगवान्‌का ही काम करता हूँ, भगवान्‌की ही सेवा करता हूँ; इस वास्ते इसमें भगवान्‌की स्मृति विशेषतासे रहती है। जैसे, कोई सज्जन अपनी कन्याके विवाह-कार्यके समय कन्याके लिये तरह-तरहकी वस्तुएँ खरीदता है, तरह-तरहके कार्य करता है, अनेक व्यक्तियोंको निमन्त्रण देता है; परन्तु अनेक प्रकारके कार्य करते हुए भी 'कन्याका विवाह करना है'—यह बात उसको निरन्तर याद रहती है। कन्यामें भगवान्‌के समान पूज्यभावपूर्वक सम्बन्ध नहीं होता तो भी उसके विवाहके लिये कार्य करते हुए उसकी याद निरन्तर रहती है, फिर भगवान्‌के लिये कार्य करते हुए भगवान्‌की पूज्यभावसहित अपनेपनकी मीठी स्मृति निरन्तर बनी रहे—इसमें कहना ही क्या है!

भगवत्सम्बन्धी कार्य दो तरहका होता है—(१) स्वरूपसे—भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन करना; भगवान्‌की लीलाका श्रवण, चिन्तन, पठन-पाठन आदि करना—यह स्वरूपसे भगवत्सम्बन्धी काम है। (२) भावसे—संसारका काम करते हुए भी 'जब सब संसार भगवान्‌का है तो संसारका काम भी भगवान्‌का ही काम हुआ। इसको भगवान्‌के नाते ही करना है, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करना है। इस कामसे हमें कुछ लेना नहीं है। भगवान्‌ने हमें जिस वर्णमें पैदा किया है, जिस आश्रममें रखा है, उसमें भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार उचित काम करना है'—ऐसा भाव रहनेसे वह काम सांसारिक होनेपर भी भगवान्‌का हो जाता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

[सातवें अध्यायके अन्तमें भगवान्‌ने सात बातें कही थीं; उन्हीं सात बातोंपर अर्जुनने आठवें अध्यायके आरम्भमें सात प्रश्न किये और यह प्रकरण भी सात ही श्लोकोंमें समाप्त हुआ ।]

सम्बन्ध—

पिछले श्लोकमें कही हुई अभ्यासजन्य स्मृतिका अब अगले श्लोकमें वर्णन करते हैं ।

श्लोक—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

अर्थ—

हे पृथानन्दन ! अभ्यासयोगसे युक्त और अन्यका चिन्तन न करनेवाले चित्तसे परम दिव्य पुरुषका चिन्तन करता हुआ (शरीर छोड़नेवाला मनुष्य) उसीको प्राप्त हो जाता है ।

व्याख्या—

[सातवें अध्यायके अट्ठाईसवें श्लोकमें जो सगुण-निराकार परमात्माका वर्णन हुआ था, उसीको यहाँ आठवें, नवें और दसवें श्लोकोंमें विस्तारसे कहा गया है ।]

'अभ्यासयोगयुक्तेन'—इस पदमें 'अभ्यास' और 'योग'—ये दो शब्द आये हैं । चंचल और अस्थिर मन जिस-जिस कारणसे बाह्य पदार्थोंका चिन्तन करता है, उस-उस कारणको हटाकर उसको

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

परमात्मामें ही लगानेका नाम 'अभ्यास' है* । समताका नाम 'योग' है—'समत्वं योग उच्यते' (गीता २ । ४८) ।

यहाँ अभ्यास और योग शब्दसे क्या लेना चाहिये । संसारसे मन हटाकर परमात्मामें बार-बार मन लगानेका नाम 'अभ्यास' है। इस अभ्यासमें मन लगनेसे प्रसन्नता होती है और मन न लगनेसे खिन्नता होती है। यह अभ्यास तो है, पर अभ्यासयोग नहीं है। अभ्यासयोग तभी होगा, जब प्रसन्नता और खिन्नता—दोनों ही न हों । अगर चित्तमें प्रसन्नता और खिन्नता हो भी जायँ, तो भी उनको महत्त्व न दे, केवल अपने लक्ष्यको ही महत्त्व दे । अपने लक्ष्यपर दृढ़ रहना भी योग है । ऐसे योगसे युक्त चित्त हो ।

'चेतसा नान्यगामिना'—चित्त अन्यगामी न हो अर्थात् एक परमात्माके सिवाय दूसरा कोई लक्ष्य न हो ।

'परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्'—ऐसे चित्तसे परम दिव्य पुरुषका अर्थात् सगुण-निराकार परमात्माका चिन्तन करते हुए शरीर छोड़नेवाला मनुष्य उसी परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

सम्बन्ध—

अब भगवान् अगले श्लोकमें ध्यान करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी सगुण-निराकार परमात्माके स्वरूपका वर्णन करते हैं।

श्लोक—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥९॥

* यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥
(गीता ८ । २६)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ—

जो सर्वज्ञ, पुराण, शासन करनेवाला, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, सबका धारण-पोषण करनेवाला, अज्ञानसे अत्यन्त परे, सूर्यकी तरह प्रकाश-स्वरूप—ऐसे अचिन्त्य स्वरूपका चिन्तन करता है।

व्याख्या—

'कविम्'—सम्पूर्ण प्राणियोंको और उनके सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मोंको जाननेवाले होनेसे उन परमात्माका नाम 'कवि' अर्थात् सर्वज्ञ है।

'पुराणम्'—वे परमात्मा सबके आदि होनेसे 'पुराण' कहे जाते हैं।

'अनुशासितारम्'—हम देखते हैं तो नेत्रोंसे देखते हैं और नेत्रोंके ऊपर मन शासन करता है, मनके ऊपर बुद्धि और बुद्धिके ऊपर 'अहम्' शासन करता है तथा 'अहम्'के ऊपर भी जो शासन करता है, जो सबका आश्रय, प्रकाशक और प्रेरक है, वह (परमात्मा) 'अनुशासिता' है।

दूसरा भाव यह है कि जीवोंका कर्म करनेका जैसा-जैसा स्वभाव बना है, उसके अनुसार ही (परमात्मा वेद, शास्त्र, गुरु, सन्त आदिके द्वारा) कर्तव्य-कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं; और प्राणियोंके पुराने पाप-पुण्यरूप कर्मोंके अनुसार अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति भेजकर परमात्मा उन प्राणियोंको शुद्ध, निर्मल बनाते हैं। इस प्रकार प्राणियोंके पाप-पुण्यरूप पुराने कर्मोंका (फल देकर) नाश करनेवाले और आगे उनसे निष्कामभावपूर्वक शुभ-कर्म कराकर उनका कल्याण करनेवाले होनेसे परमात्मा 'अनुशासिता' हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'अणोरणीयांसम्'—परमात्मा परमाणुसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं। तात्पर्य है कि परमात्मा मन-बुद्धिके विषय नहीं हैं; मन-बुद्धि आदि उनको पकड़ नहीं पाते। मन-बुद्धि तो प्रकृतिका कार्य होनेसे प्रकृतिको भी पकड़ नहीं पाते, फिर परमात्मा तो उस प्रकृतिसे भी अत्यन्त परे हैं! इस वास्ते वे परमात्मा सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, मानो सूक्ष्मताकी आखिरी सीमा हैं।

'सर्वस्य धातारम्'—परमात्मा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंको धारण करनेवाले हैं, उनका पोषण करनेवाले हैं। उन सभीको परमात्मासे ही सत्ता-स्फूर्ति मिलती है। इस वास्ते वे परमात्मा सबका धारण-पोषण करनेवाले कहे जाते हैं।

'तमसः परस्तात्'—परमात्मा अज्ञानसे अत्यन्त परे हैं, अज्ञानसे सर्वथा रहित हैं। उनमें लेशमात्र भी अज्ञान नहीं है, प्रत्युत वे अज्ञानके भी प्रकाशक हैं।

'आदित्यवर्णम्'—उन परमात्माका वर्ण सूर्यके समान है अर्थात् वे सूर्यके समान सबको, मन-बुद्धि आदिको प्रकाशित करनेवाले हैं। उन्हींसे सबको प्रकाश मिलता है।

'अचिन्त्यरूपम्'—उन परमात्माका स्वरूप अचिन्त्य है अर्थात् वे मन-बुद्धि आदिके चिन्तनका विषय नहीं हैं।

'अनुस्मरेत्'—सर्वज्ञ, अनादि, सबके शासक, परमाणुसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, सबका धारण-पोषण करनेवाले, अज्ञानसे अत्यन्त परे और सबको प्रकाशित करनेवाले सगुण-निराकार परमात्माके चिन्तनके लिये यहाँ 'अनुस्मरेत्' पद आया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यहाँ 'अनुस्मरन्' कहनेका तात्पर्य है कि प्राणिमात्र उन परमात्माकी जानकारीमें हैं; उनकी जानकारीके बाहर कुछ है ही नहीं अर्थात् उन परमात्माको सबका स्मरण है, अब उस स्मरणके बाद मनुष्य उन परमात्माको याद कर ले।

यहाँ शङ्का होती है कि जो अचिन्त्य है, उसका स्मरण कैसे करें ? इसका समाधान है कि 'वह परमात्मतत्त्व चिन्तनमें नहीं आता'—ऐसी दृढ़ धारणा ही अचिन्त्य परमात्माका चिन्तन है।

सम्बन्ध—

अब अन्तकालके चिन्तनके अनुसार गतिकी प्राप्ति बताते हैं।

श्लोक—

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ १०॥

अर्थ—

वह भक्तियुक्त पुरुष अन्त समयमें अचल मनसे और योगबलके द्वारा भृकुटीके मध्यमें प्राणोंको अच्छी तरहसे प्रविष्ट करके (शरीर छोड़नेपर) उस परम दिव्य पुरुषको प्राप्त होता है।

व्याख्या—

'प्रयाणकाले मनसाचलेन ········ स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्'—यहाँ भक्ति नाम प्रियताका है, क्योंकि उस तत्त्वमें प्रियता (आकर्षण) होनेसे ही मन अचल होता है। वह भक्ति अर्थात् प्रियता स्वयंकी होती है, मन-बुद्धि आदिकी नहीं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अन्तकालके समय कवि, पुराण, अनुशासिता आदि विशे… से (पिछले श्लोक में) कहे हुए सगुण-निराकार परमात्मामें भक्ति… पुरुषका मन स्थिर हो जाना अर्थात् सगुण-निराकार-स्वरूपमें … पूर्वक दृढ़ हो जाना ही मनका अचल होना है।

पहले प्राणायामके द्वारा प्राणोंको रोकनेका जो अधिकार … किया है, उसका नाम 'योगबल' है। उस योगबलके द्वारा … भ्रुवोंके मध्यभागमें स्थित जो द्विदल चक्र है, उसमें स्थित सुषु… नाड़ीमें प्राणोंका अच्छी तरहसे प्रवेश करके वह (शरीर छोड़… दसवें द्वारसे होकर) दिव्य परम पुरुषको प्राप्त हो जाता है।

'तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्' पदोंका तात्पर्य है कि जि… परमात्मतत्त्वका पिछले (नवें) श्लोकमें वर्णन हुआ है, उसी दि… परम सगुण-निराकार परमात्माको वह प्राप्त हो जाता है।

आठवें श्लोकमें जो बात कही गयी थी, उसीको न… दसवें श्लोकमें विस्तारसे कहकर इन तीन श्लोकोंके प्रकरण… उपसंहार किया गया है।

इस प्रकरणमें सगुण-निराकार परमात्माकी उपासनाका व… है। इस उपासनामें अभ्यासकी आवश्यकता है। प्राणायाम… मनको उस परमात्मामें लगानेका नाम अभ्यास है। यह अभ्… अणिमा, महिमा आदि सिद्धि प्राप्त करनेके लिये नहीं है, प्रत्यु… केवल परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेके लिये है। ऐसा अभ्यास करते… प्राणों और मनपर ऐसा अधिकार प्राप्त कर ले कि जब चाहे प्राणों… को रोक ले, और मनको जब चाहे तभी तथा जहाँ चाहे …

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

लगा ले। जो ऐसा अधिकार प्राप्त कर लेता है, वही अन्तकालमें प्राणोंको सुषुम्णा नाड़ीमें प्रविष्ट कर सकता है। कारण कि जब अभ्यासकालमें भी मनको संसारसे हटाकर परमात्मामें लगानेमें साधकको कठिनताका, असमर्थताका अनुभव होता है, तब अन्तकाल-जैसे कठिन समयमें मनको लगाना साधारण आदमीका काम नहीं है। जिसके पास पहलेसे योगबल है, वही अन्तसमयमें मनको परमात्मामें लगा सकता है और प्राणोंका सुषुम्णा नाड़ीमें प्रवेश करा सकता है।

साधक पहले यह निश्चय कर ले कि अज्ञानसे अत्यन्त परे, सबसे अतीत जो परमात्मतत्त्व है, वह सबका प्रकाशक, सबका आधार और सबको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला निर्विकार तत्त्व है। उस तत्त्वमें ही प्रियता होनी चाहिये, मनका आकर्षण होना चाहिये, फिर उसमें स्वाभाविक मन लगेगा।

सम्बन्ध—

अब भगवान् अगले श्लोकमें निर्गुण-निराकारकी प्राप्तिके उपायका उपक्रम करते हैं।

श्लोक—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ ११॥

अर्थ—

वेदवेत्ता लोग जिसको अक्षर कहते हैं, वीतराग यति जिसको प्राप्त करते हैं और साधक जिसकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वह पद मैं तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा ।

व्याख्या—

[सातवें अध्यायके उन्तीसवें श्लोकमें जो निर्गुण-निराकार परमात्माका वर्णन हुआ था, उसीको यहाँ ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें श्लोकोंमें विस्तारसे कहा गया है।]

'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति'—वेदोंको जाननेवाले पुरुष जिसको अक्षर—निर्गुण-निराकार कहते हैं, जिसका कभी नाश नहीं होता, जो सदा-सर्वदा एकरूप, एकरस रहता है और जिसको इसी अध्यायके तीसरे श्लोकमें 'अक्षरं ब्रह्म परमम्' कहा गया है, उसी निर्गुण-निराकार तत्त्वका यहाँ 'अक्षर' नामसे वर्णन हुआ है।

'विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः'—जिनके अन्तःकरणमें रागका अत्यन्त अभाव हो गया है; इस वास्ते जिनका अन्तःकरण महान् निर्मल है और जिनके हृदयमें सर्वोपरि अद्वितीय परम तत्त्वको पानेकी उत्कट लगन लगी है, ऐसे प्रयत्नशील यति महापुरुष उस तत्त्वमें प्रवेश करते हैं—उसको प्राप्त करते हैं ।

'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति'—जिनका उद्देश्य केवल परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका है, परमात्मप्राप्तिके सिवाय जिनका और कोई ध्येय है ही नहीं और जो परमात्मप्राप्तिकी इच्छा रखकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका संयम करते हैं और किसी भी विषयका भोगबुद्धिसे सेवन नहीं करते ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये'—जो सम्पूर्ण साधनोंका आखिरी फल है, उस पदको अर्थात् तत्त्वको मैं तेरे लिये संक्षेपसे और अच्छी तरहसे कहूँगा। संक्षेपसे कहनेका तात्पर्य है कि शास्त्रोंमें जिस तत्त्वको सर्वोपरि विलक्षण बताया है, हरेक आदमी उसको प्राप्त नहीं कर सकता—ऐसी जिसकी महिमा बतायी गयी है, वह पद (तत्त्व) किस तरहसे प्राप्त होता है—इस बातको मैं कहूँगा। अच्छी तरहसे कहनेका तात्पर्य है कि ब्रह्मकी उपासना करनेवाले जिस तरहसे उस ब्रह्मको प्राप्त हो जाते हैं, उसको मैं अच्छी तरहसे कहूँगा।

सम्बन्ध—

अन्तकालमें उस निर्गुण-निराकार तत्त्वकी प्राप्तिकी फलसहित विधि बतानेके लिये अगले दो श्लोक कहते हैं।

श्लोक—

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥ १२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १३॥

अर्थ—

(इन्द्रियोंके) सम्पूर्ण द्वारोंको रोककर मनका हृदयमें निरोध करके और अपने प्राणोंको मस्तकमें स्थापित करके योगधारणामें सम्यक् प्रकारसे स्थित हुआ जो 'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्मका उच्चारण और मेरा स्मरण करता हुआ शरीरको छोड़कर जाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

व्याख्या—

'सर्वद्वाराणि संयम्य'—(अन्तसमयमें) सम्पूर्ण इन्द्रियोंके द्वारोंका संयम कर ले अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयोंसे श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका—इन पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको तथा बोलना, ग्रहण करना, गमन करना, मूत्र-त्याग और मल-त्याग—इन पाँच विषयोंसे वाणी, हाथ, चरण, उपस्थ और गुदा—इन पाँच कर्मेन्द्रियोंको सर्वथा हटा ले। इससे इन्द्रियाँ अपने स्थानमें रहेंगी।

'मनो हृदि निरुध्य च'—मनका हृदयमें ही निरोध कर ले अर्थात् मनको विषयोंकी तरफ न जाने दे। इससे मन अपने स्थान-(हृदय-)में रहेगा।

'मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणम्'—प्राणोंको मस्तकमें धारण कर ले अर्थात् प्राणोंपर अपना अधिकार प्राप्त करके दसवें द्वार—ब्रह्मरन्ध्रमें प्राणोंको रोक ले।

'आस्थितो योगधारणाम्'—इस प्रकार योगधारणामें स्थित हो जाय। इन्द्रियोंसे कुछ भी चेष्टा न करना, मनसे भी संकल्प-विकल्प न करना और प्राणोंपर पूरा अधिकार प्राप्त करना ही योग-धारणामें स्थित होना है।

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्'—इसके बाद एक अक्षर ब्रह्म 'ॐ' (प्रणव) का मानसिक उच्चारण करे और मेरा अर्थात् निर्गुण-निराकार परम अक्षर ब्रह्मका (जिसका वर्णन इसी अध्यायके तीसरे श्लोकमें हुआ है स्मरण करे*। सब देश, काल, वस्तु,

---

* समग्ररूपका प्रकरण होनेसे यहाँ 'माम्' शब्दसे निर्गुण-निराकार-का चिन्तन लिया गया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदिमें एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सत्तारूपसे परिपूर्ण हैं—ऐसा धारणा करना ही मेरा स्मरण है।

'यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्'—उपर्युक्त प्रकारसे निर्गुण-निराकारका स्मरण करते हुए जो देहका त्याग करता है अर्थात् दसवें द्वारसे प्राणोंको छोड़ता है, वह परमगतिको अर्थात् निर्गुण-निराकारको प्राप्त होता है।

सम्बन्ध—

जिसके पास योगका बल होता है और जिसका प्राणोंपर अधिकार होता है, उसको तो निर्गुण-निराकारकी प्राप्ति हो जाती है; परन्तु दीर्घकालीन अभ्यास-साध्य होनेसे यह बात सबके लिये कठिन पड़ती है। इस वास्ते भगवान् अगले श्लोकमें अपनी अर्थात् सगुण-साकारकी सुगमतापूर्वक प्राप्तिकी बात कहते हैं।

श्लोक—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ १४॥

अर्थ—

हे पृथानन्दन! अनन्यचित्तवाला जो पुरुष मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभतासे प्राप्त हो जाता हूँ।

व्याख्या—

[सातवें अध्यायके तीसवें श्लोकमें जो सगुण-साकार परमात्माका वर्णन हुआ था, उसीको यहाँ चौदहवें, पंद्रहवें और सोलहवें श्लोकोंमें विस्तारसे कहा गया है।]

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

'अनन्यचेताः'—जिसके अन्तःकरणमें भगवान्‌के सिवाय अ… किसीका कोई आश्रय नहीं है, महत्त्व नहीं है, वह पुरुष अन… चित्तवाला है। जैसे, पतिव्रता स्त्रीका पतिका ही व्रत, नियम … है। पतिके सिवाय उसके मनमें अन्य किसी भी पुरुषका राग… चिन्तन कभी होता ही नहीं। शिष्य गुरुके और सुपुत्र माँ-बा… परायण रहता है, उनका दूसरा कोई इष्ट नहीं होता। इसी तर… भक्त भगवान्‌के ही परायण रहता है।

यहाँ 'अनन्यचेताः' पद सगुण-उपासना करनेवालेका वाच… है। सगुण-उपासनामें विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, गणेश, … आदि जो भगवान्‌के स्वरूप हैं, उनमेंसे जो जिस स्वरूपकी उपास… करता है, उसी स्वरूपका चिन्तन हो। परन्तु दूसरे स्वरूपों… अपने इष्टसे अलग न माने और अपने-आपको भी अपने इष्टके सिवा… और किसीका न माने तो उसका अन्यकी तरफ मन नहीं जा… तात्पर्य यह हुआ कि 'मैं केवल भगवान्‌का हूँ और भगवान् ही मे… हैं; मेरा और कोई नहीं है तथा मैं और किसीका नहीं हूँ, ऐसा भ… होनेसे वह 'अनन्यचेताः' हो जाता है।

'सततं यो मां स्मरति नित्यशः'—'सततम्' का अर्थ हो… है—निरन्तर अर्थात् जबसे नींद खुले, तबसे लेकर गाढ़ नीं… आनेतक जो मेरा स्मरण करता है; और 'नित्यशः' का अर्थ हो… है—सदा अर्थात् इस बातको जिस दिनसे पकड़ा, उस दिन… लेकर मृत्युतक जो मेरा स्मरण करता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः'—ऐसे नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। यहाँ 'नित्ययुक्त' पद चित्तके द्वारा निरन्तर चिन्तन करनेवालेका वाचक नहीं है, प्रत्युत श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे खुद भगवान्‌में लगनेवालेका वाचक है। जैसे कोई ब्राह्मण अपने ब्राह्मणपनमें स्थित रहता है कि 'मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय, वैश्य आदि नहीं हूँ।' वह अपने ब्राह्मणपनको याद करे या न करे, पर उसके ब्राह्मणपनमें कोई फरक नहीं पड़ता। ऐसे ही 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—इस नित्य-सम्बन्धमें दृढ़ रहनेवाला ही नित्ययुक्त है। ऐसे नित्ययुक्त योगीको भगवान् सुगमतासे मिल जाते हैं।

भगवान्‌के सिवाय शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि अपने नहीं हैं, केवल भगवान् ही अपने हैं—ऐसा दृढ़तासे माननेपर भगवान् सुलभ हो जाते हैं। परन्तु शरीर आदिको अपना मानते रहनेसे भगवान् सुलभ नहीं होते।

भगवान्‌के साथ अपनी भिन्नता कभी हुई नहीं, होगी नहीं और हो सकती भी नहीं तथा संसारके साथ अपनी एकता कभी हुई नहीं, होगी नहीं और हो सकती भी नहीं। इस रीतिसे इस प्राणीकी भगवान्‌के साथ स्वतः-स्वाभाविक अभिन्नता है और संसारके साथ स्वतः-स्वाभाविक भिन्नता है। परन्तु भूलके कारण प्राणी अपनेको भगवान्‌से और भगवान्‌को अपनेसे अलग मान लेता है तथा अपनेको शरीरका तथा शरीरको अपना मान लेता है। इस विपरीत धारणाके कारण ही यह प्राणी जन्म-मरणके चक्रमें फँसा रहता है। जब यह

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

विपरीत धारणा सर्वथा मिट जाती है तो भगवान् स्वतः सुलभ हो जाते हैं !

आठवेंसे तेरहवें श्लोकतक सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकारका स्मरण बताया गया। इन दोनों स्मरणोंमें प्राणायामकी मुख्यता रहती है, जिसको सिद्ध करना कठिन है। अन्तकाल-जैसी विकल अवस्थामें भी प्राणायामके बलसे प्राणोंको भ्रुवोंके मध्यमें स्थापित कर सकें अथवा मूर्धा-(दशम द्वार-) में जगा सकें—ऐसा प्राणोंपर अधिकार रहनेकी आवश्यकता है। परन्तु भगवान्के स्मरणमें यह कठिनता नहीं है, क्योंकि यहाँ प्राणोंका ख्याल नहीं है। यहाँ तो भगवान्के साथ साधकका स्वयंका अनादिकालसे स्वतःसिद्ध सम्बन्ध है। इस सम्बन्धमें इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण आदिकी भी जरूरत नहीं है। इस वास्ते इसमें अन्तकालमें प्राण आदिको लगानेकी जरूरत नहीं है। जैसे किसी वस्तुका बीमा होनेपर वस्तुके बिगड़ने, टूटने-फूटनेकी चिन्ता नहीं रहती, ऐसे ही शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसहित अपने-आपको भगवान्के समर्पित कर देनेपर साधकको अपनी गतिके विषयमें कभी किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता नहीं होती। कारण कि यह साधन क्रियाजन्य अथवा अभ्यासजन्य नहीं है। इसमें तो वास्तविक सम्बन्धकी जाग्रति है। इस वास्ते इसमें कठिनताका नामोनिशान नहीं है। इसीसे भगवान्ने अपने-आपको सुलभ बताया है।

सम्बन्ध—

अब दो श्लोकोंमें भगवान् अपनी प्राप्तिका माहात्म्य बताते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

श्लोक—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

अर्थ—

महात्मालोग मेरेको प्राप्त करके दुःखालय और अशाश्वत पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होते; क्योंकि वे परम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं अर्थात् उनको परम प्रेमकी प्राप्ति हो गयी है।

व्याख्या—

'मामुपेत्य पुनर्जन्म·········संसिद्धिं परमां गताः'—'मामुपेत्य' का तात्पर्य है कि भगवान्‌के दर्शन कर ले, भगवान्‌को तत्त्वसे जान ले अथवा भगवान्‌में प्रविष्ट हो जाय तो उसका फिर जन्म नहीं होता। पुनर्जन्मका अर्थ है—फिर शरीर धारण करना। वह शरीर चाहे मनुष्यका हो, चाहे पशु-पक्षी आदि किसी प्राणीका हो, पर उसे धारण करनेमें दुःख-ही-दुःख है। इसलिये पुनर्जन्मको दुःखालय अर्थात् दुःखोंका घर कहा गया है।

मरनेके बाद यह प्राणी अपने कर्मोंके अनुसार जिस योनिमें जन्म लेता है, वहाँ जन्मके समय जेरसे बाहर आते समय उसको वैसा कष्ट होता है, जैसा कष्ट मनुष्यको शरीरकी त्वचा निकालते समय होता है। परन्तु उस समय वह अपना कष्ट, दुःख किसीको बता नहीं सकता; क्योंकि वह उस अवस्थामें महान् असमर्थ होता है। जन्मके बाद बालक सर्वथा परतन्त्र होता है। कोई भी कष्ट होनेपर वह रोता रहता है, पर बता नहीं सकता। थोड़ा बड़ा होनेपर उसको खाने-पीनेकी चीजें, खिलौने आदिकी इच्छा होती है और उनकी

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पूर्ति न होनेपर बड़ा दुःख होता है। पढ़ाईके समय शासनमें रहना पड़ता है। रातों जागकर अभ्यास करना पड़ता है तो कष्ट होता है। विद्या भूल जाती है तथा पूछनेपर उत्तर नहीं आता तो दुःख होता है। आपसमें ईर्ष्या, द्वेष, डाह, अभिमान आदिके कारण हृदयमें जलन होती है। परीक्षामें फेल हो जाय तो मूर्खताके कारण उसको इतना दुःख होता है कि कई आत्महत्यातक कर लेते हैं।

जवान होनेपर अपनी इच्छाके अनुसार विवाह आदि न होनेसे दुःख होता है। विवाह हो जाता है तो पत्नी अथवा पति अनुकूल न मिलनेसे दुःख होता है। बाल-बच्चे हो जाते हैं तो उनका पालन-पोषण करनेमें कष्ट होता है। लड़कियाँ बड़ी हो जाती हैं तो उनका जल्दी विवाह न होनेपर माँ-बापकी नींद उड़ जाती है, खाना-पीना अच्छा नहीं लगता, हरदम बेचैनी रहती है।

वृद्धावस्था आनेपर शरीरमें असमर्थता आ जाती है। अनेक प्रकारके रोगोंका आक्रमण होने लगता है। सुखसे उठना-बैठना, चलना-फिरना, खाना-पीना आदि भी कठिन हो जाता है। घरवालोंके द्वारा तिरस्कार होने लगता है। उनके अपशब्द सुनने पड़ते हैं। रातमें खाँसी आती है। नींद नहीं आती। मरनेके समय भी बड़े भयंकर कष्ट होते हैं। ऐसे दुःख कहाँतक कहें? उनका कोई अन्त नहीं।

मनुष्य-जैसा ही कष्ट पशु-पक्षी आदिको भी होता है। उनको शीत-घाम, वर्षा-हवा आदिसे कष्ट होता है। बहुत-से जंगली जानवर उनके छोटे बच्चोंको खा जाते हैं तो उनको बड़ा दुःख होता है। इस प्रकार सभी योनियोंमें अनेक तरहके दुःख होते हैं। ऐसे ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

नरकोंमें और चौरासी लाख योनियोंमें दुःख भोगने पड़ते हैं। इस वास्ते पुनर्जन्मको 'दुःखालय' कहा गया है।

पुनर्जन्मको 'अशाश्वत' कहनेका तात्पर्य है कि कोई भी पुनर्जन्म (शरीर) निरन्तर नहीं रहता। उसमें हरदम परिवर्तन होता रहता है। कहीं किसी भी योनिमें नित्य स्थायी टिकाव नहीं होता। थोड़ा सुख मिल भी जाता है तो वह भी चला जाता है और शरीरका भी अन्त हो जाता है। नवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें इसी पुनर्जन्मको मौतका रास्ता कहा है—'मृत्युसंसारवर्त्मनि'।

यहाँ भगवान्‌को 'मेरी प्राप्ति होनेपर पुनर्जन्म नहीं होता'—इतना ही कहना पर्याप्त था, फिर भी पुनर्जन्मके साथ 'दुःखालय' और 'अशाश्वत'—ये दो विशेषण क्यों दिये गये ? ये दो विशेषण देनेसे यह एक भाव निकलता है कि जैसे भगवान् भक्तजनोंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये पृथ्वीपर अवतार लेते हैं, ऐसे ही भगवान्‌को प्राप्त हुए 'भक्तलोग भी साधु पुरुषोंकी रक्षा, दुष्टोंकी सेवा और धर्मका अच्छी तरहसे पालन करानेके लिये कारक पुरुषके रूपमें, सन्तके रूपमें इस पृथ्वीपर जन्म ले सकते हैं*' अथवा जब भगवान् अवतार लेते हैं, तो उनके साथ पार्षदके रूपमें भी (ग्वालबालोंकी तरह) वे भक्तजन पृथ्वीपर जन्म ले सकते हैं। परन्तु उन भक्तोंका यह जन्म दुःखालय और

* सन्तोंने कहा है—

परित्राणाय साधूनां सेवां कर्तुं च दुष्कृताम्।
धर्मसम्पालनार्थाय सम्भवन्ति कलौ युगे॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अशाश्वत नहीं होता; क्योंकि उनका जन्म कर्मजन्य नहीं होता, प्रत्युत भगवदिच्छासे होता है।

गीतामें भगवान्‌ने जो आरम्भसे ही भक्तिमार्गपर चलते हैं, उन साधकोंको भी 'महात्मा' कहा है (९ । १३), जो भगवत्तत्त्वसे अभिन्न हो जाते हैं, उनको भी 'महात्मा' कहा है (७।१९) और जो वास्तविक प्रेमको प्राप्त हो जाते हैं, उनको भी 'महात्मा' कहा है (८ । १५)। तात्पर्य है कि असत् शरीर-संसारके साथ सम्बन्ध होनेसे प्राणी 'अल्पात्मा' होते हैं; क्योंकि वे शरीर-संसारके आश्रित होते हैं। अपने स्वरूपमें स्थित होनेपर वे 'आत्मा' होते हैं; क्योंकि उनमें अणुरूपसे 'अहम्' की गंध रहनेकी सम्भावना होती है। भगवान्‌के साथ अभिन्नता होनेपर वे 'महात्मा' होते हैं; क्योंकि वे भगवन्निष्ठ होते हैं, उनकी अपनी कोई स्वतन्त्र स्थिति नहीं होती।

भगवान्‌ने गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि योगोंमें 'महात्मा' शब्दका प्रयोग नहीं किया है। केवल भक्तियोगमें ही भगवान्‌ने 'महात्मा' शब्दका प्रयोग किया है। इससे सिद्ध होता है कि गीतामें भगवान् भक्तिको ही सर्वोपरि मानते हैं।

महात्माओंका पुनर्जन्मको प्राप्त न होनेका कारण यह है कि वे परम सिद्धिको अर्थात् परम प्रेमको प्राप्त हो गये हैं—'संसिद्धिं*

---

* यहाँ 'सिद्धि' शब्दके साथ 'सम्' उपसर्ग और 'परमाम्' विशेषण देनेका तात्पर्य है कि इससे बढ़कर कोई भी सिद्धि नहीं है। कारण कि जीव भगवान्‌का अंश है और जब वह सर्वथा भगवान्‌के समर्पित हो जाता है तो कोई भी सिद्धि बाकी नहीं रहती।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalo

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परमां गताः'। जैसे लोभी व्यक्तिको जितना धन मिलता है, उतना ही उसको थोड़ा मालूम देता है और उसकी धनकी भूख उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है, ऐसे ही अपने अंशी भगवान्‌को पहचान लेनेपर भक्तमें प्रेमकी भूख बढ़ती रहती है, उसको प्रतिक्षण वर्धमान, असीम, अगाध, अनन्त प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। यह प्रेम भक्तिकी अन्तिम सिद्धि है। इसके समान दूसरी कोई सिद्धि है ही नहीं।

विशेष बात

गीताका अध्ययन करनेसे ऐसा असर पड़ता है कि भगवान्‌ने गीतामें अपनी भक्तिकी बहुत विशेषतासे महिमा गायी है। भगवान्‌ने भक्तको सम्पूर्ण योगियोंमें युक्ततम (सबसे श्रेष्ठ) कहा है (गीता ६। ४७) और अपने-आपको भक्तके लिये सुलभ बताया है (८। १४)। परन्तु अपने आग्रहका त्याग करके कोई भी साधक केवल कर्मयोग, केवल ज्ञानयोग अथवा केवल भक्तियोगका अनुष्ठान करे तो अन्तमें वह एक ही तत्त्वको प्राप्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि साधकोंकी दृष्टिमें तो कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—ये तीन भेद हैं, पर साध्य-तत्त्व एक ही है। साध्य-तत्त्वमें भिन्नता नहीं है; परन्तु इसमें एक बात विचार करनेकी है कि जिस दर्शनमें ईश्वर, भगवान्, परमात्मा सर्वोपरि हैं—ऐसी मान्यता नहीं है, उस दर्शनके अनुसार चलनेवाले असत्‌से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद करके मुक्त तो हो जाते हैं, पर अपने अंशीकी स्वीकृतिके बिना उनको परम प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती और परम

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

प्रेमकी प्राप्तिके बिना उनको प्रतिक्षण वर्धमान आनन्द नहीं मिलता। उस प्रतिक्षण वर्धमान आनन्दको, प्रेमको प्राप्त होना ही यहाँ परम सिद्धिको प्राप्त होना है।

श्लोक—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६॥

अर्थ—

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकतक सभी लोक पुनरावर्ती हैं; परन्तु हे कौन्तेय! मेरेको प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म नहीं होता।

व्याख्या—

'* आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन'—हे अर्जुन! ब्रह्माजीके लोकको लेकर सभी लोक पुनरावर्ती हैं अर्थात् ब्रह्मलोक और उससे नीचेके जितने लोक (सुखभोग-भूमियाँ) हैं, उनमें रहनेवाले सभी प्राणियोंको उन-उन लोकोंके प्रापक पुण्य समाप्त हो जानेपर लौटकर आना ही पड़ता है।

जितनी भी भोग-भूमियाँ हैं, उन सबमें ब्रह्मलोकको श्रेष्ठ बताया गया है। मात्र पृथ्वीमण्डलका राजा हो और उसका धन-धान्यसे सम्पन्न राज्य हो, स्त्री-पुत्र, परिवार आदि सभी उसके अनुकूल हों,

---

* 'आब्रह्मभुवनात्' पदमें जो 'आ' शब्द आया है, उसके दो अर्थ होते हैं—(१) अभिविधि—जैसे, ब्रह्मलोकको लेकर सभी लोक अर्थात् ब्रह्मलोक तथा उससे नीचेके सभी लोक। (२) मर्यादा—जैसे ब्रह्मलोकको छोड़कर नीचेके सभी लोक अर्थात् ब्रह्मलोकसे नीचेके सभी लोक। यहाँ 'आ' शब्द 'अभिविधि' अर्थमें आया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jag

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उसकी युवावस्था हो तथा शरीर नीरोग हो—यह मृत्युलोकका पूर्ण सुख माना गया है। मृत्युलोकके सुखसे सौ गुणा अधिक सुख मर्त्य देवताओंका है। मर्त्य देवता उनको कहते हैं, जो पुण्यकर्म करके देवलोकको प्राप्त होते हैं और देवलोकके प्रापक पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मृत्युलोकमें आ जाते हैं (गीता ९ । २१) । इन मर्त्य देवताओंसे सौ गुणा अधिक सुख अजान देवताओंका है। अजान देवता वे कहलाते हैं, जो कल्पके आदिमें देवता बने हैं। और कल्पके अन्ततक देवता बने रहेंगे। इन अजान देवताओंसे सौ गुणा अधिक सुख इन्द्रका माना गया है। इन्द्रके सुखसे सौ गुणा अधिक सुख ब्रह्मलोकका माना गया है। इस ब्रह्मलोकके सुखसे भी अनन्त-गुणा अधिक सुख भगवत्प्राप्त, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुषका माना गया है। तात्पर्य यह है कि पृथ्वीमण्डलसे लेकर ब्रह्मलोकतकका सुख सीमित है, परिवर्तनशील और विनाशी है। परन्तु भगवत्प्राप्तिका सुख अनन्त है, अपार है, अगाध है। यह सुख कभी नष्ट नहीं होता। अनन्त ब्रह्मा और अनन्त ब्रह्माण्ड समाप्त हो जायँ, तो भी यह परमात्म-प्राप्तिका सुख कभी नष्ट नहीं होता, सदा बना रहता है।

'पुनरावर्तिनः' का एक भाव यह भी है कि ये प्राणी साक्षात् परमात्माके अंश होनेके कारण नित्य हैं। इस वास्ते वे जबतक नित्य तत्त्व परमात्माको प्राप्त नहीं कर लेते; तबतक कितने ही ऊँचे लोकोंमें जानेपर भी उनको वहाँसे पीछे लौटना ही पड़ता है। अतः ब्रह्मलोक आदि ऊँचे लोकोंमें जानेवाले भी पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यहाँ एक शङ्का होती है कि सन्तों, भक्तों, जीवन्मुक्तों और कारकपुरुषोंके दर्शनमात्रसे जीवका कल्याण हो जाता है और ब्रह्माजी स्वयं कारकपुरुष हैं तथा भगवान्‌के भक्त भी हैं। ब्रह्मलोकमें रहनेवाले ब्रह्माजीके दर्शन करते ही हैं, फिर उनकी मुक्ति क्यों नहीं होती ? वे लौटकर क्यों आते हैं ? इसका समाधान यह है कि सन्त, भक्त आदिके दर्शन, सम्भाषण, चिन्तन आदिका माहात्म्य इस मृत्युलोकके मनुष्योंके लिये ही है। कारण कि यह मनुष्य-शरीर केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिला है। इस वास्ते मनुष्यको भगवत्प्राप्तिका कोई भी और किञ्चिन्मात्र भी मुक्तिका उपाय मिल जाता है तो वे मुक्त हो जाते हैं। ऐसा मुक्तिका अधिकार अन्य लोकोंमें नहीं है, इस वास्ते वे मुक्त नहीं होते। उन लोकोंमें रहनेवालोंमें किसीकी मुक्त होनेके लिये तीव्र लालसा हो जाती है तो वह भी मुक्त हो जाता है। ऐसे ही पशु-पक्षियोंमें भी भक्त हुए हैं, पर ये दोनों ही अपवादरूपसे हैं, अधिकारी-रूपसे नहीं। अगर वहाँके लोग भी अधिकारी माने जायँ तो नरकोंमें जानेवाले सभीकी मुक्ति हो जानी चाहिये; क्योंकि उन सभी प्राणियोंको परम भागवत, कारक पुरुष यमराजके दर्शन होते ही हैं ? पर ऐसा शास्त्रोंमें न देखा और न सुना ही जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उन-उन लोकोंमें रहनेवाले प्राणियोंका भक्त आदिके दर्शनसे कल्याण नहीं होता।

विशेष बात

यह जीव साक्षात् परमात्माका अंश है—'ममैवांशः' और जहाँ जानेके बाद फिर लौटकर नहीं आना पड़ता है। वह परमात्माका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

धाम है—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' । जैसे कोई अपने घरपर जाता है, ऐसे ही परमात्माका अंश होनेसे इस जीवको वहीं (परमधाममें) जाना चाहिये। फिर भी यह जीव मरनेके बाद लौटकर क्यों आता है ?

जैसे कोई मनुष्य सत्सङ्ग आदिमें जाता है और समय पूरा होनेपर वहाँसे चल देता है। परन्तु चलते समय उसकी कोई वस्तु (चद्दर आदि) भूलसे वहाँ रह जाय तो उसको लेनेके लिये उसे फिर लौटकर वहाँ जाना पड़ता है। ऐसे ही इस जीवने घर, परिवार, जमीन, धन आदि जिन चीजोंमें ममता कर ली है, अपनापन कर लिया है, उस ममता (अपनापन) के कारण इस जीवको मरनेके बाद फिर लौटकर आना पड़ता है। कारण कि जिस शरीरमें रहते हुए संसारमें ममता-आसक्ति की थी, वह शरीर तो रहता नहीं, न चाहते हुए भी वह शरीर छूट जाता है। परन्तु उस ममता -(वासना) के कारण दूसरा शरीर धारण करके यहाँ आना पड़ता है ! वह मनुष्य बनकर भी आ सकता है और पशु-पक्षी आदि बनकर भी आ सकता है। उसको लौटकर आना पड़ता है —'यह बात निश्चित है। भगवान्‌ने कहा है कि ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म होनेका कारण गुणोंका सङ्ग ही है—'कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु' (१३।२१) अर्थात् जो संसारमें ममता, आसक्ति, कामना करेगा तो उसको लौटकर संसारमें आना ही पड़ेगा।

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते'— ब्रह्मलोकतक जानेवाले सभीको पुनर्जन्म लेना पड़ता है; परन्तु हे कौन्तेय !

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

समग्ररूपसे मेरी प्राप्ति होनेपर पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् मेरे प्राप्त होनेपर फिर संसारमें, जन्म-मरणके चक्करमें नहीं आना पड़ता । कारण कि मैं कालातीत हूँ; अतः मेरेको प्राप्त होनेपर वे भी कालातीत हो जाते हैं । यहाँ 'मामुपेत्य' का अर्थ है कि मेरे दर्शन हो जायँ, मेरे स्वरूपका बोध हो जाय और मेरेमें प्रवेश हो जाय (गीता ११ । ५४) ।

मेरेको प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म क्यों नहीं होता अर्थात् वह लौटकर संसारमें क्यों नहीं आता ? क्योंकि जीव मेरा अंश है, मेरा परमधाम ही इसका वास्तविक घर है । ब्रह्मलोक आदि इसका घर नहीं है, इस वास्ते इसको वहाँसे लौटना पड़ता है। जैसे रेलगाड़ीका जहाँतकका टिकट होता है, वहाँतक ही वह उसमें बैठ सकता है । उसके बाद उसे उतरना ही पड़ता है। परन्तु वह अगर अपने घरमें बैठा हो तो उसको उतरना नहीं पड़ता । ऐसे ही जो देवताओंके लोकमें गया है, वह मानो रेलगाड़ीमें बैठा हुआ है । इस वास्ते उसको एक दिन नीचे उतरना ही पड़ेगा । परन्तु जो मेरेको प्राप्त हो गया है, वह अपने घरमें बैठा हुआ है । इस वास्ते उसको कभी उतरना नहीं पड़ेगा । तात्पर्य यह है कि भगवान्‌को प्राप्त किये बिना ऊँचे-से-ऊँचे लोकोंमें जानेपर भी कल्याण नहीं होता । इस वास्ते साधकको ऊँचे लोकोंके भोगोंकी किञ्चिन्मात्र भी इच्छा नहीं करनी चाहिये ।

ब्रह्मलोकतक जाकर फिर पीछे लौटकर आनेवाले अर्थात् जन्म-मरणरूप बन्धनमें पड़नेवाले पुरुष आसुरी-सम्पत्तिवाले होते

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

क्योंकि आसुरी-सम्पत्तिसे ही बन्धन होता है—'निबन्धायासुरी मता'। इस वास्ते ब्रह्मलोकतक बन्धन-ही-बन्धन है। परन्तु मेरे शरण होनेवाले, मुझे प्राप्त होनेवाले पुरुष दैवी-सम्पत्तिवाले होते हैं। उनका फिर जन्म-मरण नहीं होता, क्योंकि दैवी-सम्पत्तिसे मोक्ष होता है—'दैवी संपद्विमोक्षाय' (गीता १६। ५)।

विशेष बात

ब्रह्मलोकमें जानेवाले पुरुष दो तरहके होते हैं—एक तो जो ब्रह्मलोकके सुखका उद्देश्य रखकर यहाँ बड़े-बड़े पुण्यकर्म करते हैं तथा उसके फलस्वरूप ब्रह्मलोकमें जाते हैं; और दूसरे जो परमात्मप्राप्तिके लिये ही तत्परतापूर्वक साधनमें लगे हुए हैं; परन्तु प्राणोंके रहते-रहते परमात्मप्राप्ति हुई नहीं और अन्तकालमें भी किसी कारण-विशेषसे साधनसे विचलित हो गये, तो वे ब्रह्मलोकमें जाते हैं और वहाँ रहकर महाप्रलयमें ब्रह्माजीके साथ ही मुक्त हो जाते हैं। इन साधकोंका ब्रह्मलोकके सुखभोगका उद्देश्य नहीं होता; किन्तु अन्तकालमें साधनसे विमुख होनेसे तथा अन्तःकरणमें सुखभोगकी किञ्चिन्मात्र इच्छा रहनेसे ही उनको ब्रह्मलोकमें जाना पड़ता है। इस प्रकार ब्रह्मलोकका सुख भोगकर ब्रह्माजीके साथ मुक्त होनेको 'क्रम-मुक्ति' कहते हैं। परन्तु जिन साधकोंको यहीं बोध हो जाता है, वे यहाँ ही मुक्त हो जाते हैं। इसको 'सद्योमुक्ति' कहते हैं।

इसी अध्यायके दूसरे श्लोकमें अर्जुनका प्रश्न था कि अन्तकालमें आप कैसे जाननेमें आते हैं? इसका उत्तर भगवान्‌ने पाँचवें

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोकमें दिया । फिर छठे श्लोकमें अन्तकालीन गतिका साम… नियम बताया और सातवें श्लोकमें अर्जुनको सब समयमें स्मर… करनेकी आज्ञा दी । इस सातवें श्लोकसे यहाँके चौदहवें श्लोक… सम्बन्ध है । बीचमें (आठवेंसे तेरहवें श्लोकतक) सगुण-निराका… और निर्गुण-निराकारकी बात प्रसङ्गसे आ गयी है ।

आठवेंसे सोलहवें श्लोकतकके नौ श्लोकोंसे यह सिद्ध होत… है कि भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वोपरि पूर्ण परमात्मा हैं। वे ही स… परमात्मा हैं। उनके अन्तर्गत ही सगुण-निराकार और निर्गुण-निराका… आ जाते हैं । इस वास्ते इनका प्रेम प्राप्त करना ही मनुष्यका… परम पुरुषार्थ है ।

सम्बन्ध—

ब्रह्मलोकमें जानेवाले भी पीछे लौटकर आते हैं—इसक… कारण अगले श्लोकमें बताते हैं ।

श्लोक—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

अर्थ—

जो मनुष्य ब्रह्माके सहस्र चतुर्युगीपर्यन्त एक दिनको औ… सहस्र चतुर्युगीपर्यन्त एक रातको जानते हैं, वे मनुष्य ब्रह्माके… दिन और रातको जाननेवाले हैं ।

व्याख्या—

'सहस्रयुगपर्यन्तम् ……… **तेऽहोरात्रविदो जनाः'**— सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—मृत्युलोकके इन चार युगोंको ए…

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

चतुर्युगी कहते हैं। ऐसी एक हजार चतुर्युगी बीतनेपर ब्रह्माजीका एक दिन होता है और एक हजार चतुर्युगी बीतनेपर ब्रह्माजीकी एक रात होती है* । दिन-रातकी इसी गणनाके अनुसार सौ वर्षोंकी ब्रह्माजीकी उम्र होती है। ब्रह्माजीकी उम्रके सौ वर्ष बीतनेपर ब्रह्माजी परमात्मामें लीन हो जाते हैं और उनका ब्रह्मलोक भी प्रकृतिमें लीन हो जाता है तथा प्रकृति परमात्मामें लीन हो जाती है।

---

* अत्यन्त सूक्ष्म काल है—परमाणु । दो परमाणुओंका एक अणु और तीन अणुओंका एक त्रसरेणु होता है । झरोखेसे आयी सूर्य-किरणोंमें त्रसरेणु उड़ते हुए दीखते हैं । ऐसे तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्य जितना समय लेता है, उसे त्रुटि कहते हैं। सौ त्रुटियोंका एक वेध, तीन वेधोंका एक लव, तीन लवोंका एक निमेष और तीन निमेषोंका एक क्षण होता है । पाँच क्षणोंकी एक काष्ठा, पंद्रह काष्ठाओंका एक लघु, पन्द्रह लघुओंकी एक नाड़िका, छः नाड़िकाओंका एक प्रहर और आठ प्रहरोंका एक दिन-रात होता है । पन्द्रह दिन-रातोंका एक पक्ष, दो पक्षोंका एक मास, छः मासोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है ।

इस प्रकार मनुष्योंके एक वर्षके समान देवताओंकी एक दिन-रात है अर्थात् मनुष्योंका छः महीनोंका उत्तरायण देवताओंका दिन है और छः महीनोंका दक्षिणायन देवताओंकी रात है। इस तरह देवताओंके समयका परिमाण मनुष्योंके समयके परिमाणसे तीन सौ साठ गुणा अधिक माना जाता है । इस हिसाबसे मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंके एक दिन-रात, मनुष्योंके तीस वर्ष देवताओंका एक महीना और मनुष्योंके तीन सौ साठ वर्ष देवताओंका एक दिव्य वर्ष है। ऐसे ही मनुष्यके सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कितनी ही बड़ी आयु क्यों न हो, वह भी कालकी अवधिवाली ही है। ऊँचे-से-ऊँचे कहे जानेवाले जो भोग हैं, वे भी संयोगजन्य होनेसे दुःखोंके ही कारण हैं—'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते' (गीता ५ । २२) और कालकी अवधिवाले हैं। केवल भगवान् ही कालातीत हैं। इस प्रकार तत्त्वको जाननेवाले मनुष्य ब्रह्मलोकतकके दिव्य भोगोंको किञ्चिन्मात्र भी महत्त्व नहीं देते।

सम्बन्ध—

ब्रह्माजीके दिन और रातको लेकर जो सर्ग और प्रलय होते हैं, उसका वर्णन अब अगले दो श्लोकोंमें करते हैं।

श्लोक—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

युग बीतनेपर देवताओंका एक दिव्ययुग होता है अर्थात् मनुष्योंके सत्ययुगके सत्रह लाख अट्ठाईस हजार, त्रेताके बारह लाख छियानबे हजार, द्वापरके आठ लाख चौंसठ हजार और कलिके चार लाख बत्तीस हजार—ऐसे कुल तैंतालीस लाख बीस हजार वर्षोंके बीतनेपर देवताओंका एक 'दिव्ययुग' होता है। इसको 'महायुग' और 'चतुर्युग' भी कहते हैं।

मनुष्यों और देवताओंके समयका परिमाण तो सूर्यसे होता है, पर ब्रह्माजीके दिन-रातका परिमाण देवताओंके दिव्ययुगोंसे होता है अर्थात् देवताओंके एक हजार दिव्ययुगोंका (मनुष्योंके चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षोंका) ब्रह्माजीका एक दिन होता है और उतने ही दिव्ययुगोंकी एक रात होती है। ब्रह्माजीके इसी दिनको 'कल्प' या 'सर्ग' कहते हैं और रातको 'प्रलय' कहते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ—

ब्रह्माजीके दिनके आरम्भकालमें अव्यक्त-(ब्रह्माजीके सूक्ष्म-शरीर-) से सम्पूर्ण प्राणी पैदा होते हैं और ब्रह्माजीकी रातके आरम्भकालमें उसी अव्यक्तमें सम्पूर्ण प्राणी लीन हो जाते हैं।

व्याख्या—

'अव्यक्ताद्व्यक्तयः ....तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके'—मात्र प्राणियोंके जितने शरीर हैं, उनको यहाँ 'व्यक्तयः' और चौदहवें अध्यायके चौथे श्लोकमें 'मूर्तयः' कहा गया है। जैसे, जीवकृत सृष्टि अर्थात् 'मैं' और 'मेरापन' को लेकर जीवकी जो सृष्टि है, जीवके नींदसे जगनेपर वह सृष्टि जीवसे ही पैदा होती है और नींदके आ जानेपर वह सृष्टि जीवमें ही लीन हो जाती है। ऐसे ही जो यह स्थूल समष्टि सृष्टि दीखती है, वह सब-की-सब ब्रह्माजीके जगनेपर उनके सूक्ष्मशरीरसे अर्थात् प्रकृतिसे पैदा होती है और ब्रह्माजीके सोनेपर उनके सूक्ष्मशरीरमें ही लीन हो जाती है।

तात्पर्य यह हुआ कि ब्रह्माजीके जगनेपर तो 'सर्ग' होता है और ब्रह्माजीके सोनेपर 'प्रलय' होता है। जब ब्रह्माजीकी सौ वर्षकी आयु बीत जाती है, तब 'महाप्रलय' होता है, जिसमें ब्रह्माजी भी भगवान्‌में लीन हो जाते हैं। ब्रह्माजीकी जितनी आयु होती है, उतना ही महाप्रलयका समय रहता है। महाप्रलय-का समय बीतनेपर ब्रह्माजी भगवान्‌से प्रकट होते हैं। तो 'महासर्ग' का आरम्भ होता है (गीता ९। ७-८)।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
राज्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अर्थ—

हे पार्थ ! वही यह प्राणिसमुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृतिके परवश हुआ ब्रह्माके दिनके समय उत्पन्न होता है और ब्रह्माके रात्रिके समय लीन होता है।

व्याख्या—

'भूतग्रामः स एवायम्'—अनादिकालसे जन्म-मरणके चक्करमें पड़ा हुआ यह प्राणि-समुदाय वही है, जो कि साक्षात् मेरा अंश है, मेरा स्वरूप है। मेरा सनातन अंश होनेसे यह नित्य है। सर्ग और प्रलय तथा महासर्ग और महाप्रलयमें भी वही था और आगे भी वही रहेगा। इसका न कभी अभाव हुआ है और न आगे कभी इसका अभाव होगा। तात्पर्य है कि यह अविनाशी है, इसका कभी विनाश नहीं होता। परन्तु भूलसे यह प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है। प्राकृत पदार्थ (शरीर आदि) तो बदलते रहते हैं, उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं, पर यह उनके सम्बन्धको पकड़े रहता है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि सम्बन्धी (सांसारिक पदार्थ) तो नहीं रहते, पर उनका सम्बन्ध रहता है; क्योंकि उस सम्बन्धको स्वयंने पकड़ा है। इस वास्ते यह स्वयं जबतक उस सम्बन्धको नहीं छोड़ता, तबतक उसको दूसरा कोई छुड़ा नहीं सकता। उस सम्बन्धको छोड़नेमें यह स्वतन्त्र है, सबल है। वास्तवमें यह उस सम्बन्धको रखनेमें सदा परतन्त्र है; क्योंकि वे पदार्थ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तो हरदम बदलते रहते हैं, पर यह नया-नया सम्बन्ध पकड़ता रहता है। जैसे, बालकपनको इसने नहीं छोड़ा और न छोड़ना चाहा, पर वह छूट गया। ऐसे ही जवानीको इसने नहीं छोड़ा, पर वह छूट गयी। और तो क्या, यह शरीरको भी छोड़ना नहीं चाहता, पर वह भी छूट जाता है। तात्पर्य यह हुआ कि प्राकृत पदार्थ तो छूटते ही रहते हैं, पर यह जीव उन पदार्थोंके साथ अपने सम्बन्धको बनाये रखता है, जिससे इसको बार-बार शरीर धारण करने पड़ते हैं, बार-बार जन्मना-मरना पड़ता है। जबतक यह उस माने हुए सम्बन्ध-को नहीं छोड़ेगा, तबतक यह जन्म-मरणकी परम्परा चलती ही रहेगी, कभी मिटेगी नहीं।

भगवान्‌के द्वारा एकाकी खेल नहीं हुआ ('एकाकी न रमते') तो खेल खेलनेके लिये अर्थात् प्रेमका आदान-प्रदान करनेके लिये भगवान्‌ने इस प्राणि-समुदायको शरीररूप खिलौनेके सहित प्रकट किया। खेलका यह कायदा होता है कि खेलके पदार्थ केवल खेलनेके लिये ही होते हैं, किसीके व्यक्तिगत नहीं होते। परन्तु यह प्राणि-समुदाय खेल खेलना तो भूल गया और खेलके पदार्थोंको अर्थात् शरीरोंको व्यक्तिगत मानने लग गया। इसीसे यह उनमें फँस गया और भगवान्‌से सर्वथा विमुख हो गया।

'भूत्वा भूत्वा प्रलीयते'—ये पद शरीरोंके लिये कहे गये हैं, जो कि उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं अर्थात् जिनमें प्रतिक्षण ही परिवर्तन होता रहता है। परन्तु जीव उन शरीरोंके परिवर्तनको अपना परिवर्तन और उनके जन्मने-मरनेको अपना जन्म-मरण मानता

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

रहता है । इसी मान्यताके कारण उसका जन्म-मरण कहा जाता है ।

यह स्वयं सत्स्वरूप है—'भूतग्रामः स एवायम्' और शरीर उत्पत्ति-विनाशशील हैं—'भूत्वा भूत्वा प्रलीयते' इस वास्ते शरीरको धारण करना अर्थात् जन्म-मरणका होना परधर्म है और मुक्त होना स्वधर्म है ।

'रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे'—यहाँ 'अवशः' कहनेका तात्पर्य है कि अगर यह जीव प्रकृतिकी वस्तुओंमेंसे किसी भी वस्तुको अपनी मानता रहेगा तो उसको वहम तो यह होगा कि 'मैं इस वस्तुका मालिक हूँ', पर हो जायगा उस वस्तुके परवश, पराधीन । प्राकृत पदार्थोंको यह जितना ही अधिक ग्रहण करेगा, उतना ही यह महान् परतन्त्र बनता चला जायगा । फिर इसकी परतन्त्रता कभी छूटेगी ही नहीं । ब्रह्माजीके जगने और सोनेपर अर्थात् सर्ग और प्रलयके होनेपर (८ । १८), ब्रह्माजीके प्रकट और लीन होनेपर अर्थात् महासर्ग और महाप्रलयके होनेपर (९ । ७) तथा वर्तमानमें प्रकृतिजन्य गुणोंके परवश होकर कर्म करते रहनेपर (३ । ५) भी यह जीव 'जन्मना और मरना तथा कर्म करना और उसका फल भोगना'—इस आफतसे कभी छूटेगा ही नहीं । इससे सिद्ध हुआ कि जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, बोध नहीं होता और यह प्रकृतिके सम्बन्धको नहीं छोड़ता, तबतक परतन्त्र होनेके कारण यह दुःखरूप जन्म-मरणके चक्करसे छूट नहीं सकता । परन्तु जब इसकी प्रकृति और प्रकृतिजन्य

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पदार्थोंकी परवशता मिट जाती है अर्थात् इसको प्रकृतिके सम्बन्धसे सर्वथा रहित अपने शुद्ध स्वरूपका बोध हो जाता है, तो फिर यह महासर्गमें भी उत्पन्न नहीं होता और महाप्रलयमें भी व्यथित नहीं होता—'सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च' (गीता १४ । २)

इस प्राणि-समुदायकी यह परवशता तभीतक रहती है, जबतक यह प्राकृत पदार्थोंके संयोगसे सुख लेना चाहता है। इस संयोगजन्य सुखकी इच्छासे ही यह पराधीनता भोगता रहता है और ऐसा मानता रहता है कि यह पराधीनता छूटती नहीं, इसको छोड़ना बड़ा कठिन है। परन्तु यह परवशता इसकी ही बनायी हुई है, स्वतः नहीं है। इस वास्ते इसको छोड़नेकी जिम्मेवारी इसीपर है। इसको यह जब चाहे, तभी छोड़ सकता है।

सम्बन्ध—

अनित्य संसारका वर्णन करके अब अगले श्लोकमें जीवोंके प्रापणीय परमात्माकी महिमाका विशेष वर्णन करते हैं।

श्लोक—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

अर्थ—

परन्तु उस अव्यक्त-(ब्रह्माजीके सूक्ष्मशरीर-) से अन्य अनादि सर्वश्रेष्ठ भावरूप जो अव्यक्त है, उसका सम्पूर्ण प्राणियोंके नष्ट होनेपर भी नाश नहीं होता।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

व्याख्या—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः—सोलहवेंसे उन्नीसवें श्लोकतक ब्रह्मलोक तथा उससे नीचेके लोकोंको पुनरावर्ती कहा गया है। परन्तु परमात्मतत्त्व उनसे अत्यन्त विलक्षण है—यह बतलानेके लिये यहाँ 'तु' पद दिया गया है।

गीतामें प्राणियोंके अप्रकट होनेको अव्यक्त कहा गया है—'**अव्यक्तादीनि भूतानि**' (२ । २८); ब्रह्माजीके सूक्ष्मशरीरको भी अव्यक्त कहा गया है (८ । १८); प्रकृतिको भी अव्यक्त कहा गया है—'**अव्यक्तमेव च**' (१३ । ५) आदि। उन सबसे परमात्माका स्वरूप विलक्षण, श्रेष्ठ है, चाहे वह स्वरूप व्यक्त हो, चाहे अव्यक्त हो। वह भावरूप है अर्थात् किसी भी कालमें उसका अभाव हुआ नहीं, होगा नहीं और हो सकता भी नहीं। कारण कि वह सनातन है अर्थात् वह सदासे है और सदा ही रहेगा। इस वास्ते वह पर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है। उससे कोई श्रेष्ठ हो ही नहीं सकता और होनेकी सम्भावना भी नहीं है।

'**यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति**'—अब उत्तरार्धमें उसकी विलक्षणता बताते हैं कि सम्पूर्ण प्राणियोंके नष्ट होनेपर भी अर्थात् उन सम्पूर्ण शरीरोंका अभाव होनेपर भी उस परमात्मतत्त्वका कभी अभाव नहीं होता—ऐसा वह परमात्माका अव्यक्त स्वरूप है।

'**न विनश्यति**' कहनेका तात्पर्य है कि संसारमें कार्यरूपसे अनेक तरहके परिवर्तन होनेपर भी वह परमात्मतत्त्व ज्यों-का-त्यों ही

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अपरिवर्तनशील रहता है। उसमें कभी किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन होता ही नहीं।

सम्बन्ध—

अभीतक जो परमात्मविषयक वर्णन हुआ है, उस सबकी एकता करते हुए अनन्यभक्तिके विशेष महत्त्वका वर्णन अगले दो श्लोकोंमें करते हैं।

श्लोक—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

अर्थ—

उसीको अव्यक्त और अक्षर कहा गया है और उसीको परमगति कहा गया है तथा जिसको प्राप्त होनेपर फिर लौटकर नहीं आते, वह मेरा परमधाम है।

व्याख्या—

'अव्यक्तोऽक्षर ······ ······तद्धाम परमं मम'——भगवान्‌ने सातवें अध्यायके अट्ठाईसवें, उन्तीसवें और तीसवें श्लोकमें जिसको 'माम्' कहा है तथा आठवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें 'अक्षरं ब्रह्म', चौथे श्लोकमें 'अधियज्ञः', पाँचवें और सातवें श्लोकमें 'माम्', आठवें श्लोकमें 'परमं पुरुषं दिव्यम्', नवें श्लोकमें 'कविं पुराणमनुशासितारम्' आदि तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें श्लोकमें 'माम्', बीसवें श्लोकमें 'अव्यक्तः' और 'सनातनः' कहा है, उन सबकी एकता करते हुए भगवान् कहते हैं कि उसीको अव्यक्त और अक्षर कहते हैं तथा उसीको परमगति अर्थात् सर्वश्रेष्ठ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

गति कहते हैं; और जिसको प्राप्त होनेपर जीव फिर लौटकर नहीं आते, वह मेरा परमधाम है अर्थात् मेरा सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। इस प्रकार जिस प्रापणीय वस्तुको अनेक रूपोंमें कहा गया है, उसकी ही एकता की गयी है। ऐसे ही चौदहवें अध्यायके सत्ताईसवें श्लोकमें भी 'अविनाशी ब्रह्म, अमृत, शाश्वत धर्म और ऐकान्तिक सुखका आश्रय मैं हूँ'* ऐसा कहकर भगवान्‌ने प्रापणीय वस्तुकी एकता की है।

लोगोंकी ऐसी धारणा रहती है कि सगुण-उपासनाका फल दूसरा है और निर्गुण-उपासनाका फल दूसरा है। इस धारणाको दूर करनेके लिये इस श्लोकमें सबकी एकताका वर्णन किया गया है। प्राणियोंकी रुचि, विश्वास और योग्यताके अनुसार उपासनाके भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं, पर उनके अन्तिम फलमें कोई फरक नहीं होता। सबका प्रापणीय तत्त्व एक ही होता है। जैसे भोजन प्राप्त न होनेपर अभावकी और प्राप्त होनेपर तृप्तिकी एकता होनेपर भी भोजनके पदार्थोंमें भिन्नता रहती है, ऐसे ही परमात्माके प्राप्त न होनेपर अभावकी और प्राप्त होनेपर पूर्णताकी एकता होनेपर भी उपासनाओंमें भिन्नता रहती है। तात्पर्य यह हुआ कि उस परमात्माको चाहे सगुण-निराकार मानकर उपासना करें चाहे निर्गुण-निराकार मानकर उपासना करें और चाहे सगुण-साकार मानकर उपासना करें, अन्तमें सबको एक ही परमात्माकी प्राप्ति होती है।

---

* ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(गीता १४। २७)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ब्रह्मलोक आदि जितने भी लोक हैं, वे सभी पुनरावर्ती हैं अर्थात् वहाँ गये हुए प्राणियोंको फिर लौटकर जन्म-मरणके चक्करमें आना पड़ता है; क्योंकि वे सभी लोक प्रकृतिके राज्यमें हैं और विनाशी हैं। परन्तु भगवद्धाम प्रकृतिसे परे और अविनाशी है। वहाँ गये हुए प्राणियोंको गुणोंके परवश होकर लौटना नहीं पड़ता, जन्म लेना नहीं पड़ता। हाँ, भगवान् जैसे स्वेच्छासे अवतार लेते हैं, ऐसे ही वे भगवान्‌की इच्छासे लोगोंके उद्धारके लिये कारक पुरुषोंके रूपमें इस भूमण्डलपर आ सकते हैं।

श्लोक—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ २२॥

अर्थ—

हे पृथानन्दन अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जिसके अन्तर्गत हैं और जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, वह परम पुरुष परमात्मा अनन्यभक्तिसे प्राप्त होनेयोग्य है।

व्याख्या—

'यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्'—सातवें अध्यायके बारहवें श्लोकमें भगवान्‌ने निषेधरूपसे कहा कि सात्त्विक, राजस और तामस भाव मेरेसे ही होते हैं, पर मैं उनमें और वे मेरेमें नहीं हैं। यहाँ भगवान् विधिरूपसे कहते हैं कि परमात्माके अन्तर्गत सम्पूर्ण प्राणी हैं और परमात्मा सम्पूर्ण संसारमें परिपूर्ण हैं। इसीको भगवान्‌ने नवें अध्यायके चौथे, पाँचवें और छठे श्लोकमें विधि और निषेध—दोनों रूपोंसे कहा है। तात्पर्य यह

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हुआ कि मेरे सिवाय किसीकी भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। सब मेरेसे ही उत्पन्न होते हैं, मेरेमें ही स्थित रहते हैं और मेरेमें ही लीन होते हैं; अतः सब कुछ मैं ही हुआ।

वे परमात्मा सर्वोपरि होनेपर भी सबमें व्याप्त हैं अर्थात् परमात्मा सब जगह हैं, सब समयमें हैं, सम्पूर्ण वस्तुओंमें हैं, सम्पूर्ण क्रियाओंमें हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंमें हैं। जैसे सोनेसे बने हुए गहनोंमें पहले भी सोना ही था, गहनारूप बननेपर भी सोना ही रहा और गहनोंके नष्ट होनेपर भी सोना ही रहेगा। परन्तु सोनेसे बने गहनोंके नाम, रूप, आकृति, उपयोग, तौल, मूल्य आदिपर दृष्टि रहनेसे सोनेकी तरफ दृष्टि नहीं जाती। ऐसे ही संसारके पहले भी परमात्मा थे, संसाररूपसे भी परमात्मा ही हैं और संसारका अन्त होनेपर भी परमात्मा ही रहेंगे। परन्तु संसारको पाञ्चभौतिक, ऊँच-नीच, बड़ा-छोटा, अनुकूल-प्रतिकूल आदि मान लेनेसे परमात्माकी तरफ दृष्टि नहीं जाती।

भक्तियोगके प्रकरणमें भगवान्‌ने 'येन सर्वमिदं ततम्' (८। २२, १८। ४६) तथा 'मया ततमिदं सर्वम्' (९। ४) कहा और ज्ञानयोगके प्रकरणमें 'येन सर्वमिदं ततम्' (२। १७) कहा। यह कहनेका तात्पर्य सम्पूर्ण संसारको वासुदेवरूप बताने ही है—'वासुदेवः सर्वम्' (७। १९)।

'पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया'—पिछले श्लोकमें जिसको अव्यक्त, अक्षर, परमगति आदि नामोंसे कहा गया है, उसीको यहाँ 'पुरुषः स परः' कहा गया है। ऐसा वह परम पुरुष परमात्मा अनन्यभक्तिसे प्राप्त होता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परमात्माके सिवाय प्रकृतिका यावन्मात्र कार्य 'अन्य' कहा जाता है। जो उस 'अन्य' की स्वतन्त्र-सत्ता मानकर उसको आदर देता है, महत्त्व देता है, तो यह उसकी अनन्यभक्ति नहीं है। इससे परमात्माकी प्राप्तिमें देरी लगती है। अगर वह परमात्माके सिवाय किसीकी भी सत्ता और महत्ता न माने तथा भगवान्‌के नाते, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये प्रत्येक क्रिया करे, तो यह उसकी अनन्यभक्ति है। इसी अनन्यभक्तिसे वह परम पुरुष परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

परमात्माके सिवाय किसीकी भी सत्ता और महत्ता न माने —यह बात भी प्रकृति और प्रकृतिके कार्य संसारको सत्ता देकर ही कही जाती है। कारण कि मनुष्यके हृदयमें 'एक परमात्मा है और एक संसार है'—यह बात जँची हुई है। वास्तवमें तो सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना आदिके रूपमें एक परमात्मतत्त्व ही है। जैसे बर्फ, ओला, बादल, बूँदें, कोहरा, ओस, नदी, तालाब, समुद्र आदिके रूपमें एक जल ही है, ऐसे ही स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूपसे जो कुछ संसार दीखता है वह सब केवल परमात्मतत्त्व ही है। भक्तकी मान्यतामें एक परमात्माके सिवाय अन्य कुछ रहता ही नहीं, इस वास्ते उसकी खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जगना आदि सभी क्रियाएँ केवल उस परमात्माकी पूजाके रूपमें ही होती हैं*।

---

* यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(गीता १८। ४६)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

विशेष बात

आप अन्तकालमें कैसे जाननेमें आते हैं ?—यह अर्जुनका प्रश्न बड़ा ही भावपूर्ण मालूम देता है। कारण कि भगवान्‌के सामने देखते हुए भी अर्जुनमें भगवान्‌की विलक्षणताको जाननेकी उत्कण्ठा पैदा हो गयी। उत्तरमें भगवान्‌ने अन्तकालमें अपने चिन्तनकी और सामान्य कानूनकी बात बताकर अर्जुनको सब समय चिन्तन करनेकी आज्ञा दी। उसके बाद आठवें श्लोकसे सोलहवें श्लोकतक सगुण-निराकार, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकारकी प्राप्तिके लिये क्रमशः तीन-तीन श्लोक कहे। उनमें भी सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकारकी प्राप्तिमें (प्राणोंको रोकनेकी बात साथमें होनेसे) कठिनता बतायी; और सगुण-साकारकी उपासनामें भगवान्‌का आश्रय लेकर उनका चिन्तन करनेकी बात होनेसे सगुण-साकारकी प्राप्तिमें बहुत सुगमता बतायी।

सोलहवें श्लोकके बाद सगुण-साकार स्वरूपकी विशेष महिमा बतानेके लिये भगवान्‌ने छः श्लोक कहे। उनमें भी पहलेके तीन श्लोकोंमें ब्रह्माजीकी और उनके ब्रह्मलोककी अवधि बतायी और बादके तीन श्लोकोंमें ब्रह्माजी और उनके ब्रह्मलोककी अपेक्षा अपनी और अपने लोककी विलक्षणता बतायी। तात्पर्य है कि ब्रह्माजीके सूक्ष्मशरीर (प्रकृति)से भी मेरा स्वरूप विलक्षण है। उपासनाकी जितनी गतियाँ हैं, वे सब मेरे स्वरूपके अन्तर्गत आ जाती हैं। ऐसा वह मेरा सर्वोपरि स्वरूप केवल मेरे परायण होनेसे अर्थात् अनन्यभक्तिसे प्राप्त हो जाता है। मेरा स्वरूप प्राप्त होनेपर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaig

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

साधककी न तो अन्य स्वरूपोंकी तरफ वृत्ति जाती है और न उनकी आवश्यकता ही रहती है। उसकी वृत्ति केवल मेरे स्वरूपकी तरफ ही रहती है।

इस प्रकार ब्रह्माजीके लोकसे मेरा लोक विलक्षण है, ब्रह्माजीके स्वरूपसे मेरा स्वरूप विलक्षण है और ब्रह्मलोककी गतिसे मेरे लोक-(धाम) की गति विलक्षण है। तात्पर्य है कि सब प्राणियोंका अन्तिम ध्येय मैं ही हूँ और सब मेरे ही अन्तर्गत हैं।

सम्बन्ध—

सोलहवें श्लोकमें भगवान्‌ने बताया कि ब्रह्मलोकतकको प्राप्त होनेवाले लौटकर आते हैं और मेरेको प्राप्त होनेवाले लौटकर नहीं आते। अतः किस मार्गसे जानेवाले लौटकर नहीं आते और किस मार्गसे जानेवाले लौटकर आते हैं? यह बताना बाकी रह गया। इस वास्ते उन दोनों मार्गोंका वर्णन करनेके लिये भगवान् अगले श्लोकमें उपक्रम करते हैं।

श्लोक—

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥ २३॥

अर्थ—

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! जिस काल अर्थात् मार्गमें शरीर छोड़कर गये हुए योगी अनावृत्तिको प्राप्त होते हैं अर्थात् पीछे लौटकर नहीं आते और (जिस मार्गमें गये हुए) आवृत्तिको प्राप्त होते हैं अर्थात् पीछे लौटकर आते हैं, उस कालको अर्थात् दोनों मार्गोंको मैं कहूँगा।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

व्याख्या—

[जीवित-अवस्थामें ही बन्धनसे छूटनेको 'सद्योमुक्ति' कहते हैं अर्थात् जिनको यहाँ ही भगवत्प्राप्ति हो गयी, भगवान्में अनन्यभक्ति हो गयी, अनन्यप्रेम हो गया, वे यहाँ ही परम संसिद्धिको प्राप्त हो जाते हैं। दूसरे जो साधक किसी सूक्ष्म वासनाके कारण ब्रह्मलोकमें जाकर क्रमशः ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं, उनकी मुक्तिको 'क्रममुक्ति' कहते हैं। जो केवल सुख भोगनेके लिये ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें जाते हैं, वे फिर लौटकर आते हैं। इसको 'पुनरावृत्ति' कहते हैं। सद्योमुक्तिका वर्णन तो पन्द्रहवें श्लोकमें हो गया, पर क्रममुक्ति और पुनरावृत्तिका वर्णन करना बाकी रह गया। इस वास्ते इन दोनोंका वर्णन करनेके लिये भगवान् अगला प्रकरण आरम्भ करते हैं।]

'यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं·····वक्ष्यामि भरतर्षभ'—पीछे छूटे हुए विषयका लक्ष्य करानेके लिये यहाँ 'तु' अव्ययका प्रयोग किया गया है।

ऊर्ध्वगतिवालोंको कालाभिमानी देवता जिस मार्गसे ले जाते है, उस मार्गका वाचक यहाँ 'काल' शब्द लेना चाहिये; क्योंकि आगे छब्बीसवें और सत्ताईसवें श्लोकमें इसी 'काल' शब्दको मार्गके पर्यायवाची 'गति' और 'सृति' शब्दोंसे कहा गया है।

'अनावृत्तिमावृत्तिम्' कहनेका तात्पर्य है कि अनावृत्त ज्ञानवाले पुरुष ही अनावृत्तिमें जाते हैं और आवृत्त ज्ञानवाले पुरुष ही आवृत्तिमें जाते हैं। जो सांसारिक पदार्थों और भोगोंसे विमुख

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

होकर परमात्माके सम्मुख हो गये हैं, वे अनावृत्त ज्ञानवाले हैं अर्थात् उनका ज्ञान (विवेक) ढका हुआ नहीं है, प्रत्युत जाग्रत् है। इस वास्ते वे अनावृत्तिके मार्गमें जाते हैं, जहाँसे फिर लौटना नहीं पड़ता। निष्कामभाव होनेसे उनके मार्गमें प्रकाश अर्थात् विवेककी मुख्यता रहती है।

सांसारिक पदार्थों और भोगोंमें आसक्ति, कामना और ममता रखनेवाले जो पुरुष अपने स्वरूपसे तथा परमात्मासे विमुख हो गये हैं, वे आवृत्त ज्ञानवाले हैं अर्थात् उनका ज्ञान (विवेक) ढका हुआ है। इस वास्ते वे आवृत्तिके मार्गमें जाते हैं, जहाँसे फिर लौटकर जन्म-मरणके चक्रमें आना पड़ता है। सकामभाव होनेसे उनके मार्गमें अन्धकार अर्थात् अविवेककी मुख्यता रहती है।

जिनका परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य है, पर भीतरमें आंशिक वासना रहनेसे जो अन्तकालमें विचलितमना होकर पुण्यकारी लोकों-(भोग-भूमियों)-को प्राप्त करके फिर वहाँसे लौटकर आते हैं, ऐसे योगभ्रष्टोंको भी आवृत्तिवालोंके मार्गके अन्तर्गत लेनेके लिये यहाँ 'चैव' पद आया है।

यहाँ 'योगिनः' पद निष्काम और सकाम—दोनों पुरुषोंके लिये आया है।

सम्बन्ध—

अब उन दोनोंमेंसे पहले शुक्लमार्गका अर्थात् लौटकर न आनेवालोंके मार्गका वर्णन अगले श्लोकमें करते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥ २४॥

अर्थ—

जिस मार्गमें प्रकाशस्वरूप अग्निका अधिपति देवता, दिन अधिपति देवता, शुक्लपक्षका अधिपति देवता और छः महीनोंके उत्तरायणका अधिपति देवता है, शरीर छोड़कर उस मार्गसे गये हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष (पहले ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर पीछे ब्रह्माजीके साथ) ब्रह्मको प्राप्त हो जाते हैं।

व्याख्या—

'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्'— इस भूमण्डलपर शुक्लमार्गमें सबसे पहले अग्निदेवताका अधिकार रहता है। अग्नि रात्रिमें प्रकाश करती है, दिनमें नहीं; क्योंकि दिनके प्रकाशकी अपेक्षा अग्निका प्रकाश सीमित है। इस अग्निका प्रकाश थोड़ी दूरतक (थोड़े देशमें) तथा थोड़े समय रहता है; और दिनका प्रकाश बहुत दूरतक तथा बहुत समय रहता है।

शुक्लपक्ष पन्द्रह दिनोंका होता है, जो कि पितरोंकी एक रात है। इस शुक्लपक्षका प्रकाश आकाशमें बहुत दूरतक और बहुत दिनोंतक रहता है। इसी तरहसे जब सूर्य भगवान् उत्तरकी ओर चलते हैं तो उसको उत्तरायण कहते हैं, जिसमें दिनका समय बढ़ता है। वह उत्तरायण छः महीनोंका होता है, जो कि देवताओंका एक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

दिन है। उस उत्तरायणका प्रकाश बहुत दूरतक और बहुत समयतक रहता है।

'तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः'—जो शुक्ल-मार्गमें अर्थात् प्रकाशकी बहुलतावाले मार्गमें जानेवाले हैं, वे सबसे पहले ज्योतिःस्वरूप अग्निदेवताके अधिकारमें आते हैं। जहाँतक अग्निदेवताका अधिकार है, वहाँसे पार कराकर अग्निदेवता उन जीवोंको दिनके देवताको सौंप देता है। दिनका देवता उन जीवोंको अपने अधिकारतक ले जाकर शुक्लपक्षके अधिपति देवताके समर्पित कर देता है। वह शुक्लपक्षका अधिपति देवता अपनी सीमाको पार कराकर उन जीवोंको उत्तरायणके अधिपति देवताके सुपुर्द कर देता है। फिर वह उत्तरायणका अधिपति देवता उनको ब्रह्मलोकके अधिकारी देवताके समर्पित कर देता है। इस प्रकार वे क्रमपूर्वक ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं। ब्रह्माजीकी आयुतक वे वहाँ रहकर महाप्रलयमें ब्रह्माजीके साथ ही मुक्त हो जाते हैं—सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

यहाँ 'ब्रह्मविदः' पद परमात्माको परोक्षरूपसे जाननेवाले पुरुषोंका वाचक है, अपरोक्षरूपसे अनुभव करनेवाले ब्रह्मज्ञानियोंका नहीं। कारण कि अगर वे अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानी होते, तो यहाँ ही मुक्त (सद्योमुक्त या जीवन्मुक्त) हो जाते, और उनको ब्रह्मलोकमें जाना नहीं पड़ता।

सम्बन्ध—

अब अगले श्लोकमें कृष्णमार्गका अर्थात् लौटकर आनेवालोंके मार्गका वर्णन करते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

अर्थ—

जिस मार्गमें धूमका अधिपति देवता, रात्रिका अधिपति देवता, कृष्णपक्षका अधिपति देवता और छः महीनोंवाले दक्षिणायनका अधिपति देवता है, शरीर छोड़कर उस मार्गसे गया हुआ योगी (सकाम पुरुष) चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर लौट आता है अर्थात् जन्म-मरणको प्राप्त होता है ।

व्याख्या—

'धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः..........प्राप्य निवर्तते'— देश और कालकी दृष्टिसे जितना अधिकार अग्नि अर्थात् प्रकाशके देवताका है, उतना ही अधिकार धूम अर्थात् अंधकारके देवताका है । वह धूमाधिपति देवता कृष्णमार्गसे जानेवाले जीवोंको अपनी सीमासे पार कराकर रात्रिके अधिपति देवताके अधीन कर देता है। रात्रिका अधिपति देवता उस जीवको अपनी सीमासे पार कराकर देश-कालको लेकर बहुत दूरतक अधिकार रखनेवाले कृष्णपक्षके अधिपति देवताके अधीन कर देता है । वह देवता उस जीवको अपनी सीमासे पार कराकर देश और कालकी दृष्टिसे बहुत दूरतक अधिकार रखनेवाले दक्षिणायनके अधिपति देवताके समर्पित कर देता है । वह देवता उस जीवको चन्द्रलोकके अधिपति देवताको सौंप देता है। इस प्रकार कृष्णमार्गसे जानेवाला वह जीव धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके देशको पार करता हुआ चन्द्रमाकी ज्योतिको अर्थात् जहाँ अमृतका पान होता है, ऐसे स्वर्गादि दिव्य

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

लोकोंको प्राप्त हो जाता है। फिर अपने पुण्योंके अनुसार न्यूनाधिक समयतक वहाँ रहकर अर्थात् भोग भोगकर पीछे लौट आता है।

यहाँ यह एक ध्यान देनेकी बात है कि यह जो चन्द्रमण्डल दीखता है, यह चन्द्रलोक नहीं है। कारण कि यह चन्द्रमण्डल तो पृथ्वीके बहुत नजदीक है, जबकि चन्द्रलोक सूर्यसे भी बहुत ऊँचा है। उसी चन्द्रलोकसे अमृत इस चन्द्रमण्डलमें आता है, जिससे शुक्लपक्षमें ओषधियाँ पुष्ट होती हैं।

अब एक समझनेकी बात है कि यहाँ जिस कृष्णमार्गका वर्णन है, वह शुक्लमार्गकी अपेक्षा कृष्णमार्ग है। वास्तवमें तो यह मार्ग ऊँचे-ऊँचे लोकोंमें जानेका है। सामान्य मनुष्य मरकर यहाँ जन्म लेते हैं, जो पापी होते हैं, वे आसुरी योनियोंमें जाते हैं और उनसे भी जो अधिक पापी होते हैं, वे नरकके कुण्डोंमें जाते हैं—इन सब मनुष्योंसे कृष्णमार्गसे जानेवाले बहुत श्रेष्ठ हैं। वे चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होते हैं—ऐसा कहनेका यही तात्पर्य है कि दुनियाके जन्म-मरणके जितने मार्ग हैं, उन सब मार्गोंसे यह कृष्ण-मार्ग (ऊर्ध्वगतिका होनेसे) श्रेष्ठ है और उनकी अपेक्षा प्रकाशमय है।

कृष्णमार्गसे लौटते समय वह जीव पहले आकाशमें आता है। फिर वायुके अधीन होकर बादलोंमें आता है और बादलोंमेंसे वर्षाके द्वारा भूमण्डलपर आकर अन्नमें प्रवेश करता है। फिर कर्मानुसार प्राप्त होनेवाली योनिके पुरुषोंमें अन्नके द्वारा प्रवेश करता है और स्त्री पुरुषसे स्त्रीजातिमें जाकर शरीर धारण करके जन्म लेता है। इस प्रकार वह जन्म-मरणके चक्करमें पड़ जाता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

यहाँ सकाम पुरुषोंको भी 'योगी' क्यों कहा गया है ? इसके अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे—

(१) गीतामें भगवान्‌ने मरनेवाले प्राणियोंकी तीन गतियाँ बतायी हैं—ऊर्ध्वगति, मध्यगति और अधोगति* । इनमेंसे ऊर्ध्वगतिका वर्णन इस प्रकरणमें हुआ है । मध्यगति और अधोगतिसे ऊर्ध्वगति श्रेष्ठ होनेके कारण यहाँ सकाम पुरुषको भी योगी कहा गया है ।

(२) जो केवल भोग भोगनेके लिये ही ऊँचे लोकोंमें जाता है, उसने संयमपूर्वक इस लोकके भोगोंका त्याग किया है। इस त्यागसे उसकी यहाँके भोगोंके मिलने और न मिलनेमें समता हो गयी । इस आंशिक समताको लेकर ही उसको यहाँ योगी कहा गया है ।

(३) जिनका उद्देश्य परमात्मप्राप्तिका है, पर अन्तकालमें किसी सूक्ष्म भोग-वासनाके कारण वे योगसे विचलितमना हो जाते हैं, वे ब्रह्मलोक आदि ऊँचे लोकोंमें जाते हैं और वहाँ बहुत समयतक रहकर पीछे यहाँ भूमण्डलपर आकर शुद्ध श्रीमानोंके घरमें जन्म लेते हैं। ऐसे योगभ्रष्ट पुरुषोंका भी जानेका यही मार्ग (कृष्णमार्ग) होनेसे यहाँ सकाम पुरुषको भी योगी कह दिया है ।

भगवान्‌ने पिछले (चौबीसवें) श्लोकमें ब्रह्मको प्राप्त होनेवालोंके लिये 'ब्रह्मविदो जनाः' कहकर बहुवचनका प्रयोग किया

---

* ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥
(गीता १४ । १८)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है और यहाँ चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होनेवालोंके लिये 'योगी' कहकर एकवचनका प्रयोग किया है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि सभी मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी हैं, और परमात्माकी प्राप्ति सुगम है। कारण कि परमात्मा सबको स्वतः प्राप्त हैं। स्वतःप्राप्त तत्त्वका अनुभव बड़ा सुगम है। इसमें करना कुछ नहीं पड़ता। इस वास्ते बहुवचनका प्रयोग किया गया है। परन्तु स्वर्ग आदिकी प्राप्तिके लिये विशेष क्रिया करनी पड़ती है, पदार्थोंका संग्रह करना पड़ता है, विधि-विधानका पालन करना पड़ता है। इस प्रकार स्वर्गादिको प्राप्त करनेमें भी कठिनता है तथा प्राप्त करनेके बाद पीछे लौटकर भी आना पड़ता है। इस वास्ते यहाँ एकवचन दिया गया है।

विशेष बात

(१)

जिनका उद्देश्य परमात्मप्राप्तिका है, परन्तु सुखभोगकी सूक्ष्म वासना सर्वथा नहीं मिटी है, वे शरीर छोड़कर ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ब्रह्मलोकके भोग भोगनेपर उनकी वह वासना मिट जाती है तो वे मुक्त हो जाते हैं। इनका वर्णन यहाँ चौबीसवें श्लोकमें हुआ है।

जिनका उद्देश्य परमात्मप्राप्तिका ही है, और जिनमें न यहाँके भोगोंकी वासना है तथा न ब्रह्मलोकके भोगोंकी; परन्तु जो अन्तकालमें निर्गुणके ध्यानसे विचलित हो गये हैं, वे ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें नहीं जाते। वे तो सीधे ही योगियोंके कुलमें जन्म लेते हैं अर्थात् जहाँ पूर्वजन्मकृत ध्यानरूप साधन ठीक तरहसे हो सके, ऐसे

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

योगियोंके कुलमें उनका जन्म होता है। वहाँ वे साधन करके मु
हो जाते हैं*।

—उपर्युक्त दोनों साधकोंका उद्देश्य तो एक ही रहा है, प
वासनामें अन्तर रहनेसे एक तो ब्रह्मलोकमें जाकर मुक्त होते है
और एक सीधे ही योगियोंके कुलमें उत्पन्न होकर साधन कर
मुक्त होते हैं।

जिनका उद्देश्य ही स्वर्गादि ऊँचे-ऊँचे लोकोंके सुख भोगने
है, वे यज्ञ आदि शुभ-कर्म करके ऊँचे-ऊँचे लोकोंमें जाते हैं औ
वहाँके दिव्य भोग भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर पीछे लौटकर आ
जाते हैं अर्थात् जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं (गीता ७। २०-२३
८। २५; ९। २०-२१)।

जिनका उद्देश्य तो परमात्मप्राप्तिका हो रहा है; पर सांसारि
सुखभोगकी वासनाको वह मिटा नहीं सका। इस वास्ते अन्तकाल
योगसे विचलित होकर वह स्वर्गादि लोकोंमें जाकर वहाँके भो
भोगता है, और फिर लौटकर शुद्ध श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है।

---

* अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥
(गीता ६। ४२-४३)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

वहाँ वह जबर्दस्ती ही पूर्वजन्मकृत साधनमें लग जाता है और मुक्त हो जाता है * ।

—उपर्युक्त दोनों साधकोंमें एकका तो उद्देश्य ही स्वर्गके सुखभोगका है, इस वास्ते वह पुण्यकर्मोंके अनुसार वहाँके भोग भोगकर पीछे लौटकर आता है । परन्तु जिसका उद्देश्य परमात्माका है और वह विचारद्वारा सांसारिक भोगोंका त्याग भी करता है, फिर भी वासना नहीं मिटी, तो अन्तमें भोगोंकी याद आनेसे स्वर्गादि लोकोंमें जाता है । उसने जो सांसारिक भोगोंका त्याग किया है, उसका बड़ा भारी माहात्म्य है । इस वास्ते वह उन लोकोंमें बहुत समयतक भोग भोगकर श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है ।

(२)

सामान्य मनुष्योंकी यह धारणा है कि जो दिनमें, शुक्लपक्षमें और उत्तरायणमें मरते हैं, वे तो मुक्त हो जाते हैं, पर जो रातमें कृष्णपक्षमें और दक्षिणायनमें मरते हैं, उनकी मुक्ति नहीं होती । यह धारणा ठीक नहीं है । कारण कि यहाँ जो शुक्लमार्ग और कृष्णमार्गका वर्णन हुआ है, वह ऊर्ध्वगतिको प्राप्त करनेवालोंके

---

* प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥
(गीता ६ । ४१, ४४-४५)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

लिये ही हुआ है। इस वास्ते अगर ऐसा ही मान लिया जाय कि दिन आदिमें मरनेवाले मुक्त होते हैं और रात आदिमें मरनेवाले मुक्त नहीं होते, तो फिर अधोगतिवाले कब मरेंगे? क्योंकि दिन-रात, शुक्लपक्ष-कृष्णपक्ष और उत्तरायण-दक्षिणायनको छोड़कर दूसरा कोई समय ही नहीं है। वास्तवमें मरनेवाले अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही ऊँच-नीच गतियोंमें जाते हैं, वे चाहे दिनमें मरें, चाहे रातमें; चाहे शुक्लपक्षमें मरें, चाहे कृष्णपक्षमें; चाहे उत्तरायणमें मरें, चाहे दक्षिणायनमें—इसका कोई नियम नहीं है।

जो भगवद्भक्त हैं, जो केवल भगवान्‌के ही परायण हैं, जिनके मनमें भगवद्दर्शनकी ही लालसा है, ऐसे भक्त दिनमें या रातमें, शुक्लपक्षमें या कृष्णपक्षमें, उत्तरायणमें या दक्षिणायनमें, जब कभी शरीर छोड़ते हैं, तो उनको लेनेके लिये भगवान्‌के पार्षद आते हैं। पार्षदोंके साथ वे सीधे भगवद्धाममें पहुँच जाते हैं।

यहाँ एक शङ्का होती है कि जब मनुष्य अपने कर्मोंके अनुसार ही गति पाता है, तो फिर भीष्मजीने, जो तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुष थे, दक्षिणायनमें शरीर न छोड़कर उत्तरायणकी प्रतीक्षा क्यों की? इसका समाधान यह है कि जिस समय भीष्मजी शर-शय्यापर लेटे हुए थे, उस समय उनकी माता गङ्गाजीके भेजे हुए ऋषि हंसरूपसे वहाँ आये। उन्होंने भीष्मजीका दर्शन करके उनकी परिक्रमा की और फिर दक्षिणायनके सूर्यके सम्बन्धमें आपसमें सलाह करके बोले—'भीष्मजी महात्मा होकर दक्षिणायनमें शरीर छोड़नेके लिये कैसे तैयार हो गये!' ऐसा कहकर वे हंस

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये* । उनकी बातें सुनकर भीष्मजीने कहा—'हे हंसो ! सूर्यके उत्तरायण होनेपर ही मैं उस लोकमें जाऊँगा, जो कि मेरा पुराना स्थान है । यह मैं आपलोगोंसे सत्य कह रहा हूँ' † । इस प्रकार माता गङ्गाजीका संकेत होनेसे भीष्मजीने उत्तरायणमें शरीर छोड़ा ।

दूसरी बात, जब ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीके साथ मुक्त होनेवाले पुरुष भी दक्षिणायनमें शरीर न छोड़कर उत्तरायणमें शरीर छोड़ते हैं, तो भीष्मजी तो आदर्श पुरुष हैं, तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त हैं और अजान देवताओंमें भी विशेष अधिकारी देवता हैं, केवल शापके कारण यहाँ आये हुए हैं, वे अन्धकारमय मार्ग अर्थात् धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनमें क्यों शरीर छोड़ेंगे ? इस वास्ते उत्तरायणको आदर देनेके लिये और उसकी श्रेष्ठता बतानेके लिये भीष्मजीने उत्तरायणमें शरीर छोड़ा ।

सम्बन्ध—

तेईसवें श्लोकसे शुक्ल और कृष्ण-गतिका जो प्रकरण आरम्भ किया था, उसका अगले श्लोकमें उपसंहार करते हैं ।

---

* भीष्मः कथं महात्मा सन् संस्थाता दक्षिणायने ।
इत्युक्त्वा प्रस्थिता हंसा दक्षिणामभितो दिशम् ॥
(महाभारत, भीष्म० ११९ । १०२)

† गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद्यन्मे पुरातनम् ।
उदगायन आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः ॥
(महाभारत, भीष्म० ११९ । १०५)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ २६॥

अर्थ—

क्योंकि शुक्ल और कृष्ण—ये दोनों गतियाँ अनादिकालसे जगत्-(प्राणिमात्र-) के साथ सम्बन्ध रखनेवाली हैं। इनमेंसे एक गतिमें जानेवालेको लौटना नहीं पड़ता और दूसरी गतिमें जानेवालेको लौटना पड़ता है।

व्याख्या—

'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते'—शुक्ल और कृष्ण—इन दोनों मार्गोंका सम्बन्ध जगत्के सभी चर-अचर प्राणियोंके साथ है। तात्पर्य है कि ऊर्ध्वगतिके साथ मनुष्यका तो साक्षात् सम्बन्ध है और चर-अचर प्राणियोंका परम्परासे सम्बन्ध है। कारण कि चर-अचर प्राणी क्रमसे अथवा भगवत्कृपासे कभी-न-कभी मनुष्यजन्ममें आते ही हैं और मनुष्यजन्ममें किये हुए कर्मोंके अनुसार ही ऊर्ध्वगति, मध्यगति और अधोगति होती है। अब वे ऊर्ध्वगतिको प्राप्त करें अथवा न करें, पर उन सबका सम्बन्ध ऊर्ध्वगति अर्थात् शुक्ल और कृष्ण-गतिके साथ है ही।

जबतक प्राणियोंके भीतर असत् (विनाशी) वस्तुओंका महत्त्व है, कामना है, तबतक वे कितनी ही ऊँची भोग-भूमियोंमें क्यों न चले जायँ, पर असत् वस्तुका महत्त्व रहनेसे उनकी कभी भी अधोगति (पतन) हो सकती है। इसी तरहसे परमात्माके ...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

होनेसे उनकी कभी भी ऊर्ध्वगति (उत्थान) हो सकती है । इस वास्ते साधकको हरदम सजग रहना चाहिये और अपने अन्तःकरणमें विनाशी वस्तुओंको महत्त्व नहीं देना चाहिये । तात्पर्य यह हुआ कि परमात्मप्राप्तिके लिये किसी भी लोकमें, योनिमें कोई बाधा नहीं है । इसका कारण यह है कि परमात्माके साथ किसी भी प्राणीका कभी सम्बन्ध-विच्छेद होता ही नहीं । इस वास्ते न जाने कब और किस योनिमें वह परमात्माकी तरफ चल दे—इस दृष्टिसे साधकको किसी प्राणीको घृणाकी दृष्टिसे देखनेका कोई अधिकार नहीं है ।

चौथे अध्यायके पहले श्लोकमें भगवान्‌ने 'योग'को अव्यय कहा है । जैसे योग अव्यय है, ऐसे ही ये शुक्ल और कृष्ण—दोनों गतियाँ भी अव्यय हैं, शाश्वत हैं अर्थात् ये दोनों गतियाँ निरन्तर रहनेवाली हैं, अनादिकालसे हैं और जगत्‌के लिये अनन्तकालतक चलती रहेंगी ।

'एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः'—एक मार्गसे अर्थात् शुक्लमार्गसे गये हुए साधनपरायण साधक अनावृत्तिको प्राप्त होते हैं अर्थात् ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीके साथ ही मुक्त हो जाते हैं, बार-बार जन्म-मरणके चक्करमें नहीं आते; और दूसरे मार्गसे अर्थात् कृष्णमार्गसे गये हुए मनुष्य बार-बार जन्म-मरणके चक्करमें आते हैं ।

सम्बन्ध—

अब भगवान् अगले श्लोकमें दोनों मार्गोंको जाननेका माहात्म्य बताते हुए अर्जुनको योगी होनेकी आज्ञा देते हैं ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥ २७॥

अर्थ—

हे पृथानन्दन ! इन दोनों मार्गोंको जाननेवाला कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस वास्ते हे अर्जुन! तू सब समयमें योगयुक्त हो जा।

व्याख्या—

'नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन'—शुक्लमार्ग प्रकाशमय है और कृष्णमार्ग अन्धकारमय है। जिनके अन्तःकरणमें उत्पत्ति-विनाशशील वस्तुओंका महत्त्व नहीं है और जिनके उद्देश्य, ध्येयमें प्रकाशस्वरूप (ज्ञानस्वरूप) परमात्मा ही हैं, ऐसे परमात्माकी तरफ चलनेवाले साधक शुक्लमार्गी हैं अर्थात् उनका मार्ग प्रकाशमय है। परन्तु जो संसारमें ही रचे-पचे हैं और जिनका सांसारिक पदार्थोंका संग्रह करना और उनसे सुख भोगना ही ध्येय होता है, ऐसे मनुष्य तो घोर अन्धकारमें हैं ही, पर जो भोग भोगनेके उद्देश्यसे यहाँके भोगोंसे संयम करके यज्ञ, तप, दान आदि शास्त्रविहित शुभ-कर्म करते हैं और मरनेके बाद स्वर्गादि ऊँचे भोग-भूमियोंमें जाते हैं, वे यद्यपि यहाँके भोगोंमें आसक्त मनुष्योंसे ऊँचे उठे हुए हैं, तो भी आने-जानेवाले (जन्म-मरणके) मार्गमें होनेसे भी अन्धकारमें ही हैं। तात्पर्य है कि कृष्णमार्गवाले ऊँचे-ऊँचे लोकोंमें जानेपर भी जन्म-मरणके चक्करमें चढ़े रहते हैं। कहीं जन्म गये तो मरना बाकी रहता है और मर गये तो जन्मना बाकी रहता

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

है—ऐसे जन्म-मरणके चक्करमें चढ़े हुए वे कोल्हूके बैलकी तरह अनन्तकालतक चलते ही रहते हैं ।

—इस तरह शुक्ल और कृष्ण दोनों मार्गोंके परिणामको जाननेवाला मनुष्य योगी अर्थात् निष्काम हो जाता है, भोगी नहीं । कारण कि वह यहाँके और परलोकके भोगोंसे ऊँचा उठ जाता है । इस वास्ते वह मोहित नहीं होता ।

सांसारिक भोगोंके प्राप्त होनेमें और प्राप्त न होनेमें जिसका उद्देश्य निर्विकार रहनेका ही होता है, वह योगी कहलाता है—'सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते' (गीता २ । ४८) ।

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन'—जिसका ऐसा दृढ़ निश्चय हो गया है कि मुझे तो केवल परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति ही करनी है, तो फिर कैसे ही देश, काल, परिस्थिति आदिके प्राप्त हो जानेपर भी वह विचलित नहीं होता अर्थात् उसकी जो साधना है, वह किसी देश, काल, घटना, परिस्थिति आदिके अधीन नहीं है । उसका लक्ष्य परमात्माकी तरफ अटल रहनेके कारण देश, काल आदिका उसपर कोई असर नहीं पड़ता । अनुकूल-प्रतिकूल देश, काल, परिस्थिति आदिमें उसकी स्वाभाविक समता हो जाती है । इस वास्ते भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि तू सब समयमें अर्थात् अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंके प्राप्त होनेपर उनसे प्रभावित न होकर उनका सदुपयोग करते हुए (अनुकूल परिस्थितिके प्राप्त होनेपर मात्र संसारकी सेवा करते हुए और प्रतिकूल परिस्थितिके प्राप्त

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

होनेपर हृदयसे अनुकूलताकी इच्छाका त्याग करते हुए) योगयुक्त हो जा अर्थात् नित्य-निरन्तर समतामें स्थित रह ।

सम्बन्ध—

अब भगवान् अगले श्लोकमें योगीकी महिमाका वर्णन करते हैं ।

श्लोक—

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

अर्थ—

योगी इसको (शुक्ल और कृष्ण— मार्गके रहस्यको) जानकर वेदोंमें, यज्ञोंमें, तपोंमें तथा दानमें जो-जो पुण्यफल कहे गये हैं, उन सभी पुण्यफलोंका अतिक्रमण कर जाता है और आदिस्थान परमात्माको प्राप्त हो जाता है ।

व्याख्या—

'वेदेषु यज्ञेषु तपःसु··········स्थानमुपैति चाद्यम्'—यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत आदि जितने भी शास्त्रीय उत्तम-से-उत्तम कार्य हैं और उनका जो फल है, वह विनाशी ही होता है। कारण कि जब उत्तम-से-उत्तम कार्यका भी आरम्भ और समाप्ति होती है, तो फिर उस कार्यसे उत्पन्न होनेवाला फल अविनाशी कैसे हो सकता है ? वह फल चाहे इस लोकका हो, चाहे स्वर्गादि भूमियोंका हो, उसकी नश्वरतामें किञ्चिन्मात्र भी फर्क नहीं है। और

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

स्वयं परमात्माका अविनाशी अंश होकर भी विनाशी पदार्थोंमें फँसा रहे, तो इसमें उसकी अज्ञता ही मुख्य है। इस वास्ते जो मनुष्य तेईसवें श्लोकसे लेकर छब्बीसवें श्लोकतक वर्णित शुक्ल और कृष्ण-मार्गके रहस्यको समझ लेता है, वह यज्ञ, तप, दान आदि सभी पुण्यफलोंका अतिक्रमण कर जाता है। कारण कि वह यह समझ लेता है कि भोग-भूमियोंकी भी आखिरी हद जो ब्रह्मलोक है, वहाँ जानेपर भी लौटकर पीछे आना पड़ता है; परन्तु भगवान्‌को प्राप्त होनेपर लौटकर नहीं आना पड़ता (८ । १६); और साथ-साथ यह भी समझ लेता है कि मैं तो साक्षात् परमात्माका अंश हूँ तथा ये प्राकृत पदार्थ नित्य-निरन्तर अभावमें, नाशमें परिवर्तित हो रहे हैं, तो फिर वह नाशवान् पदार्थोंमें, भोगोंमें न फँसकर भगवान्‌के ही आश्रित हो जाता है। इस वास्ते वह आदिस्थान* परमात्माको प्राप्त हो जाता है, जिसको इसी अध्यायके इक्कीसवें श्लोकमें 'परमगति' और 'परमधाम' नामसे कहा गया है।

नाशवान् पदार्थोंके संग्रह और भोगोंमें आसक्त हुआ मनुष्य उस आदिस्थान परमात्मतत्त्वको नहीं जान सकता। न जाननेकी यह असामर्थ्य न तो भगवान्‌की दी हुई है, न प्रकृतिसे पैदा हुई है और न किसी कर्मका फल ही है अर्थात् यह असामर्थ्य किसीकी देन नहीं है; किन्तु स्वयं जीवने ही परमात्मतत्त्वसे विमुख होकर इसको पैदा

---

* अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।
(गीता १० । २)

'तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये'
(गीता १५ । ४)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

किया है। इस वास्ते यह स्वयं ही इसको मिटा सकता है। क्यों कि अपने द्वारा की हुई भूलको स्वयं ही मिटा सकता है और इसको मिटानेका दायित्व भी स्वयंपर ही है। इस भूलको मिटानेमें जीव असमर्थ नहीं है, निर्बल नहीं है, अपात्र नहीं है। केवल संयोगजन्य सुखकी लोलुपताके कारण यह अपनेमें असामर्थ्यका आरोप कर लेता है और इसीसे मनुष्य-जन्मके महान् लाभसे वञ्चित रह जाता है। इस वास्ते मनुष्यको संयोगजन्य सुखकी लोलुपताका त्याग करके मनुष्यजन्मको सार्थक बनानेके लिये नित्य-निरन्तर उद्यत रहना चाहिये।

छठे अध्यायके अन्तमें भगवान्‌ने पहले योगीकी महिमा कही और पीछे अर्जुनको योगी हो जानेकी आज्ञा दी (६।४६); और यहाँ भगवान्‌ने पहले अर्जुनको योगी होनेकी आज्ञा दी और पीछे योगीकी महिमा कही। इसका तात्पर्य है कि छठे अध्यायमें योगभ्रष्टका प्रसङ्ग है, और उसके विषयमें अर्जुनके मनमें सन्देह था कि वह कहीं नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता? इस शङ्काको दूर करनेके लिये भगवान्‌ने कहा कि 'कोई किसी तरहसे योगमें लग जाय तो उसका पतन नहीं होता। इतना ही नहीं, इस योगका जिज्ञासुमात्र भी शब्दब्रह्मका अतिक्रमण कर जाता है।' इस वास्ते योगीकी महिमा पहले कही और पीछे अर्जुनके लिये योगी होनेकी आज्ञा दी। परन्तु यहाँ अर्जुनका प्रश्न रहा कि नियतात्मा पुरुषोंके द्वारा आप कैसे जाननेमें आते हैं? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवान्‌ने कहा कि 'जो सांसारिक पदार्थोंसे सर्वथा विमुख होकर केवल मेरे परायण

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

होता है, उस योगीके लिये में सुलभ हूँ', इस वास्ते पहले 'तू योगी हो जा' ऐसी आज्ञा दी और पीछे योगीकी महिमा कही।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार ॐ, तत्, सत्,—इन भगवन्नामोंके उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्रूप श्रीकृष्णार्जुन-संवादमें 'अक्षरब्रह्मयोग' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

'अक्षर' और 'ब्रह्म' शब्द परमात्माके निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार—इन तीनों स्वरूपोंके वाचक हैं। इन तीनोंमेंसे किसी भी स्वरूपका चिन्तन करनेसे परमात्माके साथ योग (सम्बन्ध) हो जाता है। इस वास्ते इस अध्यायका नाम 'अक्षरब्रह्मयोग' रखा गया है।

आठवें अध्यायके पद, अक्षर और उवाच

(१) इस अध्यायमें 'अथाष्टमोऽध्यायः' के तीन, उवाचके चार, श्लोकोंके तीन सौ सतहत्तर और पुष्पिकाके तेरह पद हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पदोंका योग तीन सौ सत्तानबे है।

(२) 'अथाष्टमोऽध्यायः' में छः, उवाचमें तेरह, श्लोकोंमें नौ सौ पैंतालीस और पुष्पिकामें सैंतालीस अक्षर हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अक्षरोंका योग एक हजार ग्यारह है। इस अध्यायके अट्ठाईस श्लोकोंमेंसे तीन (नवाँ, ग्यारहवाँ और अट्ठाईसवाँ) श्लोक

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

चौवालीस अक्षरोंके तथा एक (दसवाँ) श्लोक पैंतालीस अक्षरोंका है; शेष चौवीस श्लोक बत्तीस अक्षरोंके हैं।

(३) इस अध्यायमें दो उवाच हैं—'अर्जुन उवाच' और 'श्रीभगवानुवाच'।

आठवें अध्यायमें प्रयुक्त छन्द

इस अध्यायके अट्ठाईस श्लोकोंमेंसे नवाँ, दसवाँ और ग्यारहवाँ—ये तीन श्लोक 'उपजाति' छन्दवाले हैं, और अट्ठाईसवाँ श्लोक 'इन्द्रवज्रा' छन्दवाला है। बचे हुए चौवीस श्लोकोंमेंसे—दूसरे श्लोकके तृतीय चरणमें और चौदहवें श्लोकके प्रथम चरणमें 'भगण' प्रयुक्त होनेसे 'भ-विपुला'; चौबीसवें श्लोकके तृतीय चरणमें 'मगण' प्रयुक्त होनेसे 'म-विपुला' सत्ताईसवें श्लोकके प्रथम चरणमें 'रगण' प्रयुक्त होनेसे 'र-विपुला' तथा तीसरे श्लोकके प्रथम और तृतीय चरणमें 'नगण' प्रयुक्त होनेसे 'न-विपुला' संज्ञावाले श्लोक हैं। शेष उन्नीस श्लोक ठीक 'पथ्यावक्त्र' अनुष्टुप् छन्दके लक्षणोंसे युक्त हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ नवमोऽध्यायः

सम्बन्ध—

सातवें अध्यायमें भगवान्‌के द्वारा विज्ञानसहित ज्ञान कहनेका जो प्रवाह चल रहा था, उसके बीचमें ही अर्जुनने आठवें अध्यायके आरम्भमें सात प्रश्न कर लिये। उनमेंसे छः प्रश्नोंका उत्तर भगवान्‌ने संक्षेपसे देकर अन्तकालीन गतिविषयक सातवें प्रश्नका उत्तर विस्तारसे दिया।

अब सातवें अध्यायमें कहनेसे बचे हुए उसी विज्ञानसहित ज्ञानके विषयको विलक्षण रीतिसे कहनेके लिये भगवान् नवाँ अध्याय आरम्भ करते हैं।

श्लोक—

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १॥

अर्थ—

श्रीभगवान् बोले—यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञान दोषदृष्टिरहित तेरे लिये मैं फिर अच्छी तरहसे कहूँगा, जिसको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जानकर तू अशुभसे अर्थात् जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त हो जायगा।

व्याख्या—

'इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे'—भगवान‍्के मनमें जिस तत्त्वको, विषयको कहनेकी इच्छा है, उसकी तरफ लक्ष्य करानेके लिये ही यहाँ भगवान् सबसे पहले 'इदम्' (यह) शब्दका प्रयोग करते हैं। उस (भगवान‍्के मन-बुद्धिमें स्थित) तत्त्वकी महिमा कहनेके लिये ही उसको 'गुह्यतमम्' कहा है अर्थात् वह तत्त्व अत्यन्त गोपनीय है। इसीको अगले श्लोकमें 'राजगुह्यम्' और अठारहवें अध्यायके चौंसठवें श्लोकमें 'सर्वगुह्यतमम्' कहा है।

यहाँ पहले 'गुह्यतमम्' कहकर पीछे (९। ३४ में) 'मन्मना भव .....' कहा है और अठारहवें अध्यायमें पहले 'सर्वगुह्यतमम्' कहकर पीछे (१८। ६५ में) 'मन्मना भव ...' कहा है। तात्पर्य है कि यहाँका और वहाँका विषय एक ही है, दो नहीं।

यह अत्यन्त गोपनीय तत्त्व हरेकके सामने नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसमें भगवान‍्ने खुद अपनी महिमाका वर्णन किया है। जिसके अन्तःकरणमें भगवान‍्के प्रति थोड़ी भी दोष-दृष्टि है, उसको ऐसी गोपनीय बात कही जाय, तो वह 'भगवान् आत्मश्लाघी हैं—अपनी प्रशंसा करनेवाले हैं' ऐसा उल्टा ही अर्थ ले लेता है। इसी बातको लेकर भगवान् अर्जुनके लिये 'अनसूयवे'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

विशेषण देकर कहते हैं कि 'भैया! तू दोष-दृष्टिरहित है, इस वास्ते मैं तेरे सामने अत्यन्त गोपनीय बातको फिर अच्छी तरहसे कहूँगा अर्थात् उस तत्त्वको भी कहूँगा और उसके उपायोंको भी कहूँगा—'प्रवक्ष्यामि'।

'प्रवक्ष्यामि' का दूसरा भाव है कि मैं उस बातको विलक्षण रीतिसे और साफ-साफ कहूँगा अर्थात् मात्र मनुष्य मेरे शरण होनेके अधिकारी हैं। चाहे कोई दुराचारी-से-दुराचारी, पापी-से-पापी क्यों न हो तथा किसी वर्णका, किसी आश्रमका, किसी सम्प्रदायका, किसी देशका, किसी वेशका, कोई भी क्यों न हो, वह भी मेरे शरण होकर मेरी प्राप्ति कर लेता है—यह बात मैं विशेषतासे कहूँगा।

सातवें अध्यायमें भगवान्‌के मनमें जितनी बातें कहनेकी आ रही थीं, उतनी बातें वे नहीं कह सके। इस वास्ते भगवान् यहाँ 'तु' पद देते हैं कि उसी विषयको मैं फिर कहूँगा।

'ज्ञानं विज्ञानसहितम्'—भगवान् इस सम्पूर्ण जगत्‌के महाकारण हैं—ऐसा दृढ़तासे मानना 'ज्ञान' है और भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई (कार्य-कारण) तत्त्व नहीं है—ऐसा अनुभव होना 'विज्ञान' है। इस विज्ञानसहित ज्ञानके लिये ही इस श्लोकके पूर्वार्धमें 'इदम्' और 'गुह्यतमम्'—ये दो विशेषण आये हैं।

ज्ञान और विज्ञान-सम्बन्धी विशेष बात

इस ज्ञान-विज्ञानको जानकर तू अशुभ संसारसे मुक्त हो जायगा। यह ज्ञान-विज्ञान ही राजविद्या, राजगुह्य आदि है। इस

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

धर्मपर जो श्रद्धा नहीं करते, इसपर विश्वास नहीं करते, इसको मानते नहीं, वे मौतरूपी संसारके रास्तेमें पड़ जाते हैं और बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं (९ । १–३)—ऐसा कहकर भगवान्‌ने 'ज्ञान' बताया । अव्यक्तमूर्ति मेरेसे ही यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है अर्थात् सब कुछ मैं-ही-मैं हूँ, दूसरा कोई है ही नहीं (९ । ४–६)—ऐसा कहकर भगवान्‌ने 'विज्ञान' बताया ।

प्रकृतिके परवश हुए सम्पूर्ण प्राणी महाप्रलयमें मेरी प्रकृतिको प्राप्त हो जाते हैं और महासर्गके आदिमें मैं फिर उनकी रचना करता हूँ । परन्तु वे कर्म मेरेको बाँधते नहीं । उनमें मैं उदासीनकी तरह आसक्तिरहित रहता हूँ । मेरी अध्यक्षतामें प्रकृति सम्पूर्ण प्राणियोंकी रचना करती है । मेरे परम भावको न जानते हुए मूढ़लोग मेरी अवहेलना करते हैं । राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेनेवालोंकी आशा, कर्म, ज्ञान सब व्यर्थ हैं । महात्मालोग दैवी प्रकृतिका आश्रय लेकर और मेरेको सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि मानकर मेरा भजन करते हैं, मेरेको नमस्कार करते हैं । कई ज्ञानयज्ञके द्वारा एकीभावसे मेरी उपासना करते हैं, आदि-आदि (९ । ७—१५)—ऐसा कहकर भगवान्‌ने 'ज्ञान' बताया । मैं ही क्रतु, यज्ञ, स्वधा, औषध आदि हूँ और सत्-असत् भी मैं ही हूँ अर्थात् कार्य-कारणरूपसे जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ (९ । १६—१९)—ऐसा कहकर 'विज्ञान' बताया ।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jal

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जो यज्ञ करके स्वर्गमें जाते हैं, वे वहाँपर सुख भोगते हैं और पुण्य समाप्त होनेपर फिर लौटकर मृत्युलोकमें आते हैं। अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करनेवालेका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओंका पूजन करनेवाले वास्तवमें मेरा ही पूजन करते हैं, पर करते हैं अविधिपूर्वक। जो मेरेको सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी नहीं मानते, उनका पतन हो जाता है। जो श्रद्धा-प्रेमपूर्वक पत्र, पुष्प आदिको तथा सम्पूर्ण क्रियाओंको मेरे अर्पण करते हैं, वे शुभ-अशुभ कर्मोंसे मुक्त हो जाते हैं (९। २०—२८)—ऐसा कहकर भगवान्‌ने 'ज्ञान' बताया। मैं सम्पूर्ण भूतोंमें सम हूँ। मेरा कोई प्रेम या द्वेषका पात्र नहीं है। परन्तु जो मेरा भजन करते हैं, वे मेरेमें और मैं उनमें हूँ (९। २९)—ऐसा कहकर 'विज्ञान' बताया। इसके आगेके पाँच श्लोक (९। ३०–३४) इस विज्ञानकी व्याख्यामें ही कहे गये हैं

'यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्'—असत्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ना ही 'अशुभ' है, जो कि ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है। असत् (संसार) के साथ अपना सम्बन्ध केवल माना हुआ है, वास्तविक नहीं है। जिसके साथ वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता, उसीसे मुक्ति होती है। अपने स्वरूपसे कभी किसीकी मुक्ति नहीं होती। इस वास्ते मुक्ति उसीसे होती है, जो अपना नहीं है; किन्तु जिसको भूलसे अपना मान लिया है। इस भूलजनित मान्यतासे ही मुक्ति होती है। भूल-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जनित मान्यताको न माननेमात्रसे ही उससे मुक्ति हो जाती है। जैसे, कपड़ेमें मैल लग जानेपर उसको साफ किया जाता है, तो मैल छूट जाता है। कारण कि मैल आगन्तुक है और मैलकी अपेक्षा कपड़ा पहलेसे है अर्थात् मैल और कपड़ा दो हैं, एक नहीं। ऐसे ही भगवान्‌का अविनाशी अंश यह प्राणी भगवान्‌से विमुख होकर जिस किसी योनिमें जाता है, वहींपर मैं-मेरापन करके शरीर-संसारके साथ सम्बन्ध जोड़ लेता है अर्थात् मैल चढ़ा लेता है और जन्मता-मरता रहता है। जब यह प्राणी अपने स्वरूपको जान लेता है अथवा भगवान्‌के सम्मुख हो जाता है, तो यह अशुभ सम्बन्धसे मुक्त हो जाता है अर्थात् उसका संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। इसी भावको लेकर भगवान् यहाँ अर्जुनसे कहते हैं कि इस तत्त्वको जानकर तू अशुभसे मुक्त हो जायगा।

सम्बन्ध—

पहले श्लोकमें विज्ञानसहित ज्ञान कहनेकी प्रतिज्ञा करके उसका परिणाम अशुभसे मुक्त होना बताया। अब अगले श्लोकमें उसी विज्ञानसहित ज्ञानकी महिमाका वर्णन करते हैं।

श्लोक—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥ २॥

अर्थ—

यह सम्पूर्ण विद्याओंका और सम्पूर्ण गोपनीयोंका राजा है। यह अति पवित्र तथा अतिश्रेष्ठ है और इसका फल भी प्रत्यक्ष है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यह धर्ममय है, अविनाशी है और करनेमें बहुत सुगम है अर्थात् उसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

व्याख्या—

'राजविद्या'—यह विज्ञानसहित ज्ञान सम्पूर्ण विद्याओंका राजा है; क्योंकि इसको ठीक तरहसे जान लेनेके बाद कुछ जानना बाकी नहीं रहता।

भगवान्‌ने सातवें अध्यायके आरम्भमें कहा है कि 'मेरे समग्र-रूपको जाननेके बाद जानना कुछ बाकी नहीं रहता।' पंद्रहवें अध्यायके अन्तमें कहा है कि 'जो असम्मूढ़ पुरुष मेरेको क्षरसे अतीत और अक्षरसे उत्तम जानता है, वह सर्ववित् हो जाता है अर्थात् उसको जानना कुछ बाकी नहीं रहता।' इससे ऐसा मालूम होता है कि भगवान्‌के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त आदि जितने स्वरूप हैं, उन सब स्वरूपोंमें भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपकी बहुत विशेष महिमा है।

'राजगुह्यम्'—संसारमें रहस्यकी जितनी गुप्त बातें हैं, उन सब बातोंका यह राजा है; क्योंकि संसारमें इससे बड़ी दूसरी कोई रहस्यकी बात है ही नहीं।

जैसे नाटकमें सबके सामने खेलता हुआ कोई अपना असली परिचय दे देता है, तो उसका परिचय देना विशेष गोपनीय बात है; क्योंकि वह नाटकमें जिस स्वाँगमें खेलता है, उसमें वह अपने असली रूपको छिपाये रखता है। ऐसे ही भगवान् जब मनुष्यरूपमें लीला करते हैं, तो अभक्त लोग उनको मनुष्य मानकर उनकी अवज्ञा करते

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

हैं। इससे भगवान् उनके सामने अपने-आपको प्रकट नहीं करते (गीता ७ । २५), परन्तु जहाँ भगवान्‌के ऐकान्तिक प्यारे भक्त होते हैं, उनके सामने भगवान् अपने-आपको प्रकट कर देते हैं—यह अपने-आपको प्रकट कर देना ही अत्यन्त गोपनीय बात है।

गीतामें जहाँ भगवान्‌ने अपने-आपको प्रकट किया है, उसको भगवान्‌ने गुह्यतम शास्त्र कहा है - 'इति गुह्यतमं शास्त्रम्'(१५ । २०)। ऐसे तो गीतामें भगवान् पहले अध्यायसे लेकर अठारहवें अध्यायतक अपने-आपको प्रकट करते ही गये हैं; जैसे पहले अध्यायमें सारथि-रूपसे (१ । २४), दूसरेमें गुरुरूपसे (२ । ७), तीसरेमें आदर्श पुरुषके रूपसे (३ । २२—२४), चौथेमें ईश्वररूपसे (४ । ६), पाँचवेंमें महेश्वररूपसे (५ । २९), छठेमें व्यापक-रूपसे (६ । ३०), सातवेंमें समग्ररूपसे (७ । १), आठवेंमें सुलभरूपसे (८ । १४), नवेंमें सत्-असत्‌रूपसे (९ । १९), दसवेंमें सर्वैश्वर्यरूपसे (१० । ४२), ग्यारहवेंमें विराट्‌रूपसे (११ । ७), बारहवेंमें समुद्धर्ताके रूपसे (१२ । ७), तेरहवेंमें ज्ञेयरूपसे (१३ । १२—१८), चौदहवेंमें ब्रह्मकी प्रतिष्ठारूपसे (१४ । २७), पन्द्रहवेंमें पुरुषोत्तमरूपसे (१५ । १७—१९), सोलहवेंमें देवरूपसे (१६ । १—३), सत्रहवेंमें नाम-महिमाके रूपसे (१७ । २३) और अठारहवें अध्यायमें सर्वशरण्यरूपसे (१८ । ६६) भगवान्‌ने अपने-आपको प्रकट किया है। तात्पर्य यह हुआ कि सबमें गुप्तरूपसे रहते हुए भी भगवान् अर्जुनको

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaig

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उपदेश देते हुए उनके सामने प्रकट होते ही गये। इस प्रकार अपनेको प्रकट करना ही राजगुह्य है।

'पवित्रमिदम्'—इस विद्याके समान पवित्र करनेवाली दूसरी कोई विद्या है ही नहीं अर्थात् यह विद्या पवित्रताकी आखिरी हद है। पापी-से-पापी, दुराचारी-से-दुराचारी भी इस विद्यासे बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जाता है अर्थात् पवित्र बन जाता है और शाश्वती शान्तिको प्राप्त कर लेता है (९। ३१)।

दसवें अध्यायमें अर्जुनने भगवान्‌को परम पवित्र बताया—**'पवित्रं परमं भवान्'** (१०। १२); चौथे अध्यायमें भगवान्‌ने ज्ञानको पवित्र बताया—**'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'** (४। ३८) और यहाँ राजविद्या आदि आठ विशेषण देकर विज्ञानसहित ज्ञानको पवित्र बताया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पवित्र परमात्माका नाम, रूप, लीला, धाम, स्मरण, कीर्तन, जप, ध्यान, ज्ञान आदि सब पवित्र हैं अर्थात् भगवत्सम्बन्धी जो कुछ है, वह सब महान् पवित्र है और प्राणिमात्रको पवित्र करनेवाला है*।

'उत्तमम्'—यह सर्वश्रेष्ठ है। इसके समकक्ष दूसरी कोई वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदि है ही नहीं। यह श्रेष्ठताकी आखिरी हद है; क्योंकि इस विद्यासे मेरा भक्त सर्वश्रेष्ठ हो जाता है। इतना श्रेष्ठ हो जाता है कि मैं भी उसकी आज्ञाका पालन करता हूँ।

---

* अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० १७। १७)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

इस विज्ञानसहित ज्ञानको जानकर जो प्राणी इसका अनुभव कर लेते हैं, उनके लिये भगवान् कहते हैं कि 'वे मेरेमें हैं और मैं उनमें हूँ'—'मयि ते तेषु चाप्यहम्' (९ । २९) अर्थात् वे मेरेमें तल्लीन होकर मेरा स्वरूप ही बन जाते हैं ।

'प्रत्यक्षावगमम्'— इसका फल प्रत्यक्ष है । जो मनुष्य इस बातको जितना जानेगा, वह उतना ही अपनेमें विलक्षणताका अनुभव करेगा । इस बातको जानते ही परमगति प्राप्त हो जाय (९ । ३१)—यह इसका प्रत्यक्ष फल है ।

'धर्म्यम्'—यह धर्ममय है । परमात्माका लक्ष्य होनेपर निष्कामभावपूर्वक जितने भी कर्तव्य-कर्म किये जायँ, वे सब-के-सब इस धर्मके अन्तर्गत आ जाते हैं । इस वास्ते यह विज्ञानसहित ज्ञान सभी धर्मोंसे परिपूर्ण है ।

दूसरे अध्यायमें भगवान्ने अर्जुनको कहा कि इस धर्ममय युद्धके सिवाय क्षत्रियके लिये दूसरा कोई श्रेयस्कर साधन नहीं है—'धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते' (२ । ३१) इससे यही सिद्ध होता है कि अपने-अपने वर्ण, आश्रम आदिके अनुसार शास्त्रविहित जितने कर्तव्य-कर्म हैं, वे सभी धर्म्य हैं । इसके सिवाय भगवत्प्राप्तिके जितने साधन हैं और भक्तोंके जितने लक्षण हैं, उन सबका नाम भगवान्ने 'धर्म्यामृत' रखा है (गीता १२ । २०) अर्थात् ये सभी भगवान्की प्राप्ति करानेवाले होनेसे धर्ममय हैं ।

'अव्ययम्'—इसमें कमी किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं आती, इस वास्ते यह अविनाशी है । भगवान्ने अपने भक्तके लिये भी कहा

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है कि 'मेरे भक्तका विनाश (पतन) नहीं होता'—'न मे भक्तः प्रणश्यति' (९ । ३१) ।

'कर्तुं सुसुखम्'—यह करनेमें बहुत सुगम है। पत्र, पुष्प, फल, जल आदि चीजोंको भगवान्की मानकर भगवान्को ही देना कितना सुगम है। (९ । २६) ! चीजोंको अपनी मानकर भगवान्को देनेसे भगवान् उनको अनन्त गुणा करके देते हैं और उनको भगवान्की ही मानकर भगवान्के अर्पण करनेसे भगवान् अपने-आपको ही दे देते हैं। इसमें क्या परिश्रम करना पड़ा ? इसमें तो केवल अपनी भूल मिटानी है।

मेरी प्राप्ति सुगम है । सरल है; क्योंकि मैं सब देशमें हूँ तो यहाँ भी हूँ, सब कालमें हूँ तो अभी भी हूँ। जो कुछ भी देखने, सुनने, समझनेमें आता है, उसमें मैं ही हूँ। जितने भी प्राणी हैं, उनका मैं हूँ और वे मेरे हैं। परन्तु मेरी तरफ दृष्टि न रखकर प्रकृतिकी तरफ दृष्टि रखनेसे वे मुझे प्राप्त न होकर बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं। अगर वे थोड़ा-सा भी मेरी तरफ ध्यान दें तो उनको मेरी अलौकिकता, विलक्षणता दीखने लग जाती है तथा प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध नहीं है और भगवान्के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध है—इसका अनुभव हो जाता है।

सम्बन्ध—

ऐसी सुगम और सर्वोपरि विद्याके होनेपर भी लोग उससे लाभ क्यों नहीं उठा रहे हैं ? इसपर अगला श्लोक कहते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

श्लोक—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

अर्थ—

हे परंतप ! इस धर्मके तत्त्वपर श्रद्धा न रखनेवाले पुरुष मेरेको प्राप्त न होकर मृत्युरूपी संसारके रास्तेमें लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं ।

व्याख्या—

'अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप'—धर्म दो तरहका होता है—स्वधर्म और परधर्म । प्राणीका जो अपना स्वतःसिद्ध स्वरूप है, वह उसके लिये स्वधर्म है और प्रकृति तथा प्रकृतिका कार्यमात्र उसके लिये परधर्म है । यहाँ पहले दो श्लोकोंमें भगवान्ने जिस विज्ञानसहित ज्ञानको कहनेकी प्रतिज्ञा की और राजविद्या आदि आठ विशेषण देकर जिसको प्राप्त करनेमें बड़ा सुगम बताया, उसीको यहाँ 'धर्म' कहा गया है । इस धर्मके वास्तविक तत्त्व परमात्मामें दृढ़ आस्था न रखनेवाले अर्थात् उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंको सच्चा मानकर उन्हींमें रचे-पचे रहनेवाले पुरुषोंको ही यहाँ 'अश्रद्दधानाः' कहा गया है ।

यह एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि प्राणी अपने शरीरको, कुटुम्बको, धन-सम्पत्ति-वैभवको निःसन्देहरूपसे उत्पत्ति-विनाशशील और प्रतिक्षण परिवर्तनशील जानते हुए भी उनपर विश्वास करते हैं, श्रद्धा करते हैं, उनका आश्रय लेते हैं । वे ऐसा विचार नहीं करते कि इन शरीरादिके साथ हम कितने दिन रहेंगे और ये हमारे साथ

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jag

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कितने दिन रहेंगे ? श्रद्धा तो स्वधर्मपर होनी चाहिये थी, पर वह हो गयी परधर्मपर !

'अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि'—परधर्मपर श्रद्धा रखनेवालोंके लिये भगवान् कहते हैं कि सब देशमें, सब कालमें, सम्पूर्ण वस्तुओंमें, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें सदा-सर्वदा विद्यमान, सबको नित्यप्राप्त मेरेको प्राप्त न करके प्राणी मृत्युरूप संसारके रास्तेमें लौटते रहते हैं। कहीं जनम गये तो मरना बाकी रहता है और मर गये तो जन्मना बाकी रहता है। ये जिन योनियोंमें जाते हैं, उन्हीं योनियोंमें ये अपनी स्थिति मान लेते हैं अर्थात् 'मैं शरीर हूँ' ऐसी अहंता और 'शरीर मेरा है' ऐसी ममता कर लेते हैं। परन्तु वास्तवमें उन योनियोंसे भी उनका निरन्तर सम्बन्ध-विच्छेद होता रहता है। किसी भी योनिके साथ इनका सम्बन्ध टिक नहीं सकता। देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदिसे भी इनका निरन्तर सम्बन्ध-विच्छेद हो रहा है अर्थात् वहाँसे भी ये हरदम निवृत्त हो रहे हैं, लौट रहे हैं। ये किसीके साथ हरदम रह ही नहीं सकते। ऐसे ही ये ऊर्ध्वगतिमें अर्थात् ऊँची-ऊँची भोग-भूमियोंमें भी चले जायँगे तो वहाँसे भी इनको लौटना ही पड़ेगा (गीता ८। १६, २५; ९। २१)। तात्पर्य हुआ कि मेरेको प्राप्त हुए बिना ये प्राणी जहाँ-कहीं जायँगे, वहाँसे इनको लौटना ही पड़ेगा, बार-बार जन्मना और मरना ही पड़ेगा।

'मृत्युसंसारवर्त्मनि' कहनेका मतलब है कि इस संसारके रास्तेमें मरना-ही-मरना है, विनाश-ही-विनाश है, अभाव-ही-अभाव है

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अर्थात् जहाँ जायँगे, वहाँसे लौटना ही पड़ेगा। इसी बातको भगवान्‌ने बारहवें अध्यायके सातवें श्लोकमें 'मृत्युसंसारसागरात्' कहा है अर्थात् यह संसार मौतका ही समुद्र है। इसमें कहीं भी स्थिरतासे टिक नहीं सकते।

यह मनुष्यशरीर केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। भगवान्‌ने कृपा करके सम्पूर्ण कर्मफलोंको (जो कि सत्-असत् योनियोंके कारण हैं) स्थगित करके मुक्तिका अवसर दिया है। ऐसे मुक्तिके अवसरको प्राप्त करके भी जो जीव जन्म-मरणकी परम्परामें चले जाते हैं, उनको देखकर भगवान् मानो पश्चात्ताप करते हैं कि मैंने अपनी तरफसे इनको जन्म-मरणसे छूटनेका पूरा अवसर दिया था, पर ये उस अवसरको प्राप्त करके भी जन्म-मरणमें जा रहे हैं! केवल साधारण मनुष्योंके लिये ही नहीं, प्रत्युत महान् आसुरी योनियोंमें पड़े हुए जीवोंके लिये भी भगवान् पश्चात्ताप करते हैं कि मेरेको प्राप्त किये बिना ही ये अधम गतिको जा रहे हैं—'मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्' (गीता १६। २०)।

'अप्राप्य माम्' (मेरेको प्राप्त न होकर) पदोंसे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्रको भगवत्प्राप्तिका अधिकार मिला हुआ है। इस वास्ते मनुष्यमात्र भगवान्‌की ओर चल सकता है, भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। सोलहवें अध्यायके बीसवें श्लोकमें 'मामप्राप्यैव' पदसे भी यह सिद्ध होता है कि आसुरी प्रकृतिवाले भी भगवान्‌की ओर चल सकते हैं, भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं। इस वास्ते गीतामें कहा गया है कि दुराचारी-से-दुराचारी भी भक्त बन सकता

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है, धर्मात्मा बन सकता है और भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है (९ । ३०-३१) तथा पापी-से-पापी भी ज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण पापोंसे तर सकता है (४ । ३६)।

एक शहर था। उसके चारों तरफ ऊँची दीवार (परकोटा) बनी हुई थी। शहरसे बाहर निकलनेके लिये एक ही दरवाजा था। एक सूरदास (अन्धा) शहरसे बाहर निकलना चाहता था। वह एक हाथसे लाठीका सहारा और एक हाथसे परकोटेकी दीवारका सहारा लेते हुए चल रहा था। चलते-चलते जब बाहर जानेका दरवाजा आया, तो उसके माथेपर खुजली आयी। वह एक हाथसे खुजलाते और एक हाथसे लाठीके सहारे चलता रहा, तो दरवाजा निकल गया और उसका हाथ फिर परकोटेकी दीवारपर लग गया। इस तरह चलते-चलते जब दरवाजा आता, तब खुजली आती। खुजलानेके लिये वह हाथ माथेपर लगाता, तबतक दरवाजा निकल जाता। इस प्रकार वह चक्कर ही काटता रहा। ऐसे ही यह जीव स्वर्ग, नरक, चौरासी लाख योनियोंमें घूमता रहता है। उन भोग-योनियोंसे यह स्वयं छुटकारा नहीं पा सकता, तो भगवान् कृपा करके जन्म-मरणके चक्रसे छूटनेके लिये मनुष्यशरीर देते हैं। परन्तु मनुष्यशरीरको पाकर उसके मनमें भोगोंकी खुजली चलने लगती है, जिससे वह परमात्माकी तरफ न जाकर सांसारिक पदार्थोंका संग्रह करने और उन पदार्थोंसे सुख लेनेमें ही लगा रहता है। ऐसा करते-करते ही वह मर जाता है और स्वर्ग, नरक आदिकी योनियोंके चक्करमें चला जाता है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

इस प्रकार वह बार-बार उन योनियोंमें लौटता रहता है—यही मृत्युरूप संसार-मार्गमें लौटना है।

यह जीव साक्षात् परमात्माका अंश है। इस वास्ते परमात्मा ही इस जीवका असली घर है। जब यह जीव उस परमात्माको प्राप्त कर लेता है, तो उसको अपना असली स्थान (घर) प्राप्त हो जाता है। फिर वहाँसे इसको लौटना नहीं पड़ता अर्थात् गुणोंके परवश होकर जन्म नहीं लेना पड़ता—इसको गीतामें जगह-जगह कहा गया है; जैसे—'त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन' (४ । ९) 'गच्छन्त्यपुनरावृत्तिम्'(५ । १७); 'यं प्राप्य न निवर्तन्ते' (८ । २१); 'यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः' (१५ । ४); 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते' (१५ । ६) आदि-आदि। श्रुति भी कहती है—'न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते'।

विशेष बात—

प्रायः लोगोंके भीतर यह बात जँची हुई है कि हम संसारी हैं, जन्मने-मरनेवाले हैं, यहाँ ही रहनेवाले हैं, इत्यादि। पर ये बातें बिल्कुल गलत हैं। कारण कि हम सभी परमात्माके अंश हैं, परमात्माकी जातिके हैं, परमात्माके साथी हैं और परमात्माके धामके वासी हैं। हम सभी इस संसारमें आये हैं। हमारा संसारसे साथ हुआ है, पर हम संसारके नहीं हैं। कारण कि संसारके सब पदार्थ जड़ हैं, परिवर्तनशील हैं, जब कि हम स्वयं चेतन हैं और हमारेमें (स्वयंमें) कभी परिवर्तन नहीं होता। अनेक जन्म

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

होनेपर भी हम स्वयं नित्य-निरन्तर वे ही रहते हैं—'भूतग्रामः स एवायम्' (८ । १९) और ज्यों-के-त्यों ही रहते हैं । इस वास्ते हम परमात्माके साथी हैं । परमात्मा जहाँ रहते हैं, वह देश हमारा देश है । और जो परमात्माके साथ रहते हैं, वे हमारे खास परिवारके हैं ।

हम चाहे स्वर्गमें जायँ, चाहे नरकोंमें जायँ, चाहे चौरासी लाख योनियोंमें जायँ, चाहे मनुष्ययोनिमें आयें, तो भी हमारा परमात्मासे वियोग नहीं हुआ है, परमात्माका साथ नहीं छूटा है । परमात्मा सभी योनियोंमें हमारे साथ रहे हैं । परन्तु मनुष्येतर योनियोंमें विवेककी जाग्रति न रहनेसे हम परमात्माको पहचान नहीं सकते । परमात्माको पहचाननेका मौका तो इस मनुष्यशरीरमें ही है । कारण कि भगवान्‌ने कृपा करके इस मनुष्यको ऐसी शक्ति, योग्यता दी है, जिससे वह सत्सङ्ग, विचार, स्वाध्याय आदिके द्वारा विवेक जाग्रत् करके परमात्माको जान सकता है, परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है । इस वास्ते भगवान् यहाँ कहते हैं कि इन प्राणियोंको मनुष्यशरीर प्राप्त हुआ है, तो मेरेको प्राप्त हो ही जाना चाहिये और 'हम भगवान्‌के ही हैं तथा भगवान् ही हमारे हैं' यह बात उनकी समझमें आ ही जानी चाहिये । परन्तु ये इस बातको न समझकर, मेरेपर श्रद्धा-विश्वास न करके, मेरेको प्राप्त न होकर संसाररूपी मौतके मार्गमें पड़ गये हैं—यह बड़े दुःखकी और आश्चर्यकी बात है !

संसारमें आना हमारा काम नहीं है, चौरासी लाख योनियोंमें भटकना हमारा काम नहीं है । ये देश, गाँव, कुटुम्ब, धन,

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

पदार्थ, शरीर आदि हमारे नहीं हैं और हम इनके नहीं हैं। ये देश आदि सभी अपरा प्रकृति हैं और हम परा प्रकृति हैं। परन्तु भूलसे हमने अपनेको यहींके रहनेवाले मान लिया है। इस भूलका त्याग करना चाहिये; क्योंकि हम भगवान्‌के अंश हैं, भगवान्‌के धामके हैं। जहाँसे लौटकर नहीं आना पड़ता, वहाँ जाना हमारा खास काम है। जन्म-मरणसे रहित होना हमारा खास काम है। परन्तु अपने घर जानेको, खुदकी चीजको कठिन मान लिया, उद्योगसाध्य मान लिया। वास्तवमें यह कठिन नहीं है। कठिन तो संसारका रास्ता है, जो कि नया पकड़ना पड़ता है, नया शरीर धारण करना पड़ता है, नये कर्म करने पड़ते हैं। और कर्मोंके फल भोगनेके लिये नये-नये लोकोंमें, नयी-नयी योनियोंमें जाना पड़ता है। भगवान्‌की प्राप्ति तो सुगम है; क्योंकि भगवान् सब देशमें हैं, सब कालमें हैं, सब वस्तुओंमें हैं, सब व्यक्तियोंमें हैं, सब घटनाओंमें हैं, सब परिस्थितियोंमें हैं और सभी भगवान्‌में हैं। हम हरदम भगवान्‌के साथ हैं और भगवान् हरदम हमारे साथ हैं। हम भगवान्‌से और भगवान् हमारेसे कभी अलग हो ही नहीं सकते।

तात्पर्य यह हुआ कि हम यहाँके जन्म-मृत्युवाले संसारके नहीं हैं। यह हमारा देश नहीं है। हम इस देशके नहीं हैं। यहाँकी वस्तुएँ हमारी नहीं हैं। हम इन वस्तुओंके नहीं हैं। हमारे ये कुटुम्बी नहीं हैं। हम इन कुटुम्बियोंके नहीं हैं। हम तो केवल भगवान्‌के हैं और भगवान् ही हमारे हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सम्बन्ध—

इस अध्यायके पहले और दूसरे श्लोकमें जिस राजविद्याकी महिमा कही गयी है, अब अगले दो श्लोकोंमें उसीका वर्णन करते हैं।

श्लोक—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ ४॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥ ५॥

अर्थ—

यह सब संसार मेरे अव्यक्त स्वरूपसे व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मेरेमें स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा वे प्राणी भी मेरेमें स्थित नहीं हैं—मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग-(सामर्थ्य-)को देख। सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला और उनका धारण, भरण-पोषण करनेवाला मेरा स्वरूप उन प्राणियोंमें स्थित नहीं है।

व्याख्या—

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना'—मन-बुद्धि-इन्द्रियोंसे जिसका ज्ञान होता है, वह भगवान्‌का व्यक्तरूप है और जो मन-बुद्धि-इन्द्रियोंका विषय नहीं है अर्थात् मन आदि जिसको नहीं जान सकते, वह भगवानका अव्यक्तरूप है। यहाँ भगवान्‌ने **'मया'** पदसे व्यक्त-(साकार-) स्वरूप और **'अव्यक्तमूर्तिना'** पदसे अव्यक्त-(निराकार-) स्वरूप बताया है। इसका तात्पर्य है कि भगवान् व्यक्तरूपसे भी हैं और अव्यक्तरूपसे भी हैं। इस प्रकार भगवान्‌की यहाँ व्यक्त-अव्यक्त (साकार-निराकार) कहनेकी गूढाभिसन्धि समग्र भगवान्‌से है अर्थात्

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदिका भेद तो सम्प्रदायोंको लेकर है, वास्तवमें परमात्मा एक हैं। ये सगुण-निर्गुण आदि एक ही परमात्माके अलग-अलग विशेषण हैं, अलग-अलग नाम हैं।

गीतामें जहाँ सत्-असत्, शरीर-शरीरीका वर्णन किया गया है, वहाँ जीवके वास्तविक स्वरूपके लिये आया है—'येन सर्वमिदं ततम्' (२। १७) क्योंकि यह परमात्माका साक्षात् अंश होनेसे परमात्माके समान ही सर्वत्र व्यापक है अर्थात् परमात्माके साथ इसका अभेद है। जहाँ सगुण-निराकारकी उपासनाका वर्णन आया है, वहाँ बताया है—'येन सर्वमिदं ततम्' (८। २२), जहाँ कर्मोंके द्वारा भगवान्‌का पूजन बताया है, वहाँ भी कहा है—'येन सर्वमिदं ततम्' (१८। ४६)। इन सबके साथ एकता करनेके लिये ही भगवान् यहाँ कहते हैं—'मया ततमिदं सर्वम्'।

'मत्स्थानि सर्वभूतानि'—सम्पूर्ण प्राणी मेरेमें स्थित हैं अर्थात् परा-अपरा प्रकृतिरूप सारा जगत् मेरेमें ही स्थित है। वह मेरेको छोड़कर रह ही नहीं सकता। कारण कि सम्पूर्ण प्राणी मेरेसे ही उत्पन्न होते हैं, मेरेमें ही स्थित रहते हैं और मेरेमें ही लीन होते हैं अर्थात् उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप जो कुछ परिवर्तन होता है, वह सब मेरेमें ही होता है। इस वास्ते वे सब प्राणी मेरेमें स्थित हैं।

'न चाहं तेष्ववस्थितः'—पहले भगवान्‌ने दो बातें कहीं—पहली 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना' और दूसरी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'मत्स्थानि सर्वभूतानि' । अब भगवान् इन दोनों बातोंके विरुद्ध दो बातें कहते हैं ।

पहली बात (मैं सम्पूर्ण जगत्में स्थित हूँ) के विरुद्ध यहाँ कहते हैं कि मैं उनमें स्थित नहीं हूँ । कारण कि अगर मैं उनमें स्थित होता तो उनमें जो परिवर्तन होता है, वह परिवर्तन मेरेमें भी होता; उनका नाश होनेसे मेरा भी नाश होता और उनका अभाव होनेसे मेरा भी अभाव होता । तात्पर्य है कि उनका तो परिवर्तन, नाश और अभाव होता है; परन्तु मेरेमें कभी किञ्चिन्मात्र भी विकृति नहीं आती । मैं उनमें सब तरहसे व्याप्त रहता हुआ भी उनसे निर्लिप्त हूँ, उनसे सर्वथा सम्बन्धरहित हूँ । मैं तो निर्विकाररूपसे अपने-आपमें ही स्थित हूँ ।

वास्तवमें 'मैं उनमें स्थित हूँ'—ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरी सत्तासे ही उनकी सत्ता है, मेरे होनेपनसे ही उनका होनापन है । अगर मैं उनमें न होता, तो जगत्की सत्ता ही नहीं होती । जगत्का होनापन तो मेरी सत्तासे ही दीखता है । इस वास्ते कहा कि मैं उनमें स्थित हूँ ।

'न च मत्स्थानि भूतानि'*—अब भगवान् दूसरी बात (सम्पूर्ण प्राणी मेरेमें स्थित हैं) के विरुद्ध यहाँ कहते हैं कि वे प्राणी मेरेमें स्थित नहीं हैं । कारण कि अगर वे प्राणी

* 'न च मत्स्थानि भूतानि' का दूसरा भाव यह भी है कि वे प्राणी अपनेको मेरेमें स्थित नहीं मानते, प्रत्युत अपनेको प्रकृतिमें स्थित मानते हैं । इस वास्ते वे मेरेमें स्थित नहीं हैं ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मेरेमें स्थित होते तो मैं जैसा निरन्तर निर्विकाररूपसे ज्यों-का-त्यों रहता हूँ, वैसा संसार भी निर्विकाररूपसे ज्यों-का-त्यों रहता । मेरा कभी उत्पत्ति-विनाश नहीं होता, तो संसारका भी उत्पत्ति-विनाश नहीं होता । एक देशमें हूँ और एक देशमें नहीं हूँ, एक कालमें हूँ और एक कालमें नहीं हूँ, एक व्यक्तिमें हूँ और एक व्यक्तिमें नहीं हूँ—ऐसी परिच्छिन्नता मेरेमें नहीं है, तो संसारमें भी ऐसी परिच्छिन्नता नहीं होती । तात्पर्य है कि निर्विकारता, नित्यता, व्यापकता, अविनाशीपन आदि जैसे मेरेमें हैं, वैसे ही उन प्राणियोंमें भी होते । परन्तु ऐसी बात नहीं है। मेरी स्थिति निरन्तर रहती है और उनकी स्थिति निरन्तर नहीं रहती, तो इससे सिद्ध हुआ कि वे मेरेमें स्थित नही हैं । पर उनमें 'उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि जो कुछ परिवर्तन होता है, वह मेरे बिना कहाँ होगा ? इस वास्ते कहा कि सब प्राणी मेरेमें स्थित हैं ।

अब उपर्युक्त विधिपरक और निषेधपरक चारों बातोंको दूसरी रीतिसे इस प्रकार समझें । संसारमें परमात्मा है और परमात्मामें संसार है; तथा परमात्मा संसारमें नहीं हैं और संसार परमात्मामें नहीं है । जैसे, अगर तरंगकी सत्ता मानी जाय तो तरंगमें जल है और जलमें तरंग है । कारण कि जलको छोड़कर तरंग रह ही नहीं सकती । तरंग जलसे ही पैदा होती है, जलमें ही रहती है और जलमें ही लीन हो जाती है; अतः तरंगका आधार, आश्रय केवल जल ही है । जलके बिना उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

इस वास्ते तरंगमें जल है और जलमें तरंग है। ऐसे ही संसारकी सत्ता मानी जाय तो संसारमें परमात्मा और परमात्मामें संसार है; कारण कि परमात्माको छोड़कर संसार रह ही नहीं सकता। संसार परमात्मासे ही पैदा होता है, परमात्मामें ही रहता है और परमात्मामें ही लीन हो जाता है। परमात्माके सिवाय संसारकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इस वास्ते संसारमें परमात्मा है और परमात्मामें संसार है।

अगर तरंग उत्पन्न और नष्ट होनेवाली होनेसे तथा जलके सिवाय उसकी स्वतन्त्र सत्ता न होनेसे तरंगकी सत्ता न मानी जाय, तो न तरंगमें जल है और न जलमें तरंग है अर्थात् केवल जल-ही-जल है और जल ही तरंगरूपसे दीख रहा है। ऐसे संसार उत्पन्न और नष्ट होनेवाला होनेसे तथा परमात्माके सिवाय उसकी स्वतन्त्र सत्ता न होनेसे संसारकी सत्ता न मानी जाय, तो न संसारमें परमात्मा है और न परमात्मामें संसार है अर्थात् केवल परमात्मा-ही-परमात्मा है और परमात्मा ही संसाररूपसे दीख रहा है। तात्पर्य यह हुआ कि जैसे तत्त्वसे एक जल ही है, तरंग नहीं है, ऐसे ही तत्त्वसे एक परमात्मा ही हैं, संसार नहीं है—'वासुदेवः सर्वम्' (७। १९)।

अब कार्य-कारणकी दृष्टिसे देखें तो जैसे मिट्टीसे बने हुए जितने बर्तन हैं, उन सबमें मिट्टी ही है; क्योंकि वे मिट्टीसे ही बने हैं, मिट्टीमें ही रहते हैं और मिट्टीमें ही लीन होते हैं अर्थात् उनका आधार मिट्टी ही है। इस वास्ते बर्तनोंमें मिट्टी है और

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

मिट्टीमें बर्तन हैं। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो बर्तनोंमें मिट्टी और मिट्टीमें बर्तन नहीं हैं। अगर बर्तनोंमें मिट्टी होती, तो बर्तनोंके मिटनेपर मिट्टी भी मिट जाती। परन्तु मिट्टी मिटती है ही नहीं। अतः मिट्टी मिट्टीमें ही रही अर्थात् अपने-आपमें ही स्थित रही। ऐसे ही अगर मिट्टीमें बर्तन होते, तो मिट्टीके रहनेपर बर्तन हरदम रहते। परन्तु बर्तन हरदम नहीं रहते। इस वास्ते मिट्टीमें बर्तन नहीं हैं। ऐसे ही संसारमें परमात्मा और परमात्मामें संसार रहते हुए भी संसारमें परमात्मा और परमात्मामें संसार नहीं है। कारण कि अगर संसारमें परमात्मा होते तो संसारके मिटनेपर परमात्मा भी मिट जाते। परन्तु परमात्मा मिटते हैं ही नहीं। इस वास्ते संसारमें परमात्मा नहीं है। परमात्मा तो अपने-आपमें ही स्थित है। ऐसे ही परमात्मामें संसार नहीं है। अगर परमात्मामें संसार होता तो परमात्माके रहनेपर संसार भी रहता; परन्तु संसार नहीं रहता। इस वास्ते परमात्मामें संसार नहीं है।

जैसे, किसीने हरिद्वारको याद किया तो उसके मनमें हरि-की पौड़ी दीखने लग गयी। बीचमें घण्टाघर बना हुआ है। उसके दोनों ओर गंगाजी बह रही हैं। सीढ़ियोंपर लोग स्नान कर रहे हैं। । जलमें मछलियाँ उछल-कूद मचा रही हैं। यह सब-का-सब हरिद्वार मनमें है। इस वास्ते हरिद्वारमें बना हुआ सब कुछ (पत्थर, जल, मनुष्य, मछलियाँ आदि) मन ही है। परन्तु जहाँ चिन्तन छोड़ा, वहाँ फिर हरिद्वार नहीं रहा, केवल मन-ही-मन रहा। ऐसे ही परमात्माने 'एकोऽहं बहु स्याम्'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

संकल्प किया, तो संसार प्रकट हो गया। उस संसारके कण-कणमें परमात्मा ही रहे और संसार परमात्मामें ही रहा; क्योंकि परमात्मा ही संसाररूपमें प्रकट हुए हैं। परन्तु जहाँ परमात्माने संकल्प छोड़ा, वहाँ फिर संसार नहीं रहा, केवल परमात्मा-ही-परमात्मा रहे।

तात्पर्य यह हुआ कि परमात्मा है और संसार है—इस दृष्टिसे देखा जाय तो संसारमें परमात्मा और परमात्मामें संसार है। परन्तु तत्त्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो न संसारमें परमात्मा है और न परमात्मामें संसार है; क्योंकि वहाँ संसारकी स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं है। वहाँ तो केवल परमात्मा-ही-परमात्मा है—'वासुदेवः सर्वम्'। यही जीवन्मुक्तोंकी दृष्टि है।

'पश्य मे योगमैश्वरम्'*—मैं सम्पूर्ण जगत्‌में और सम्पूर्ण जगत् मेरेमें होता हुआ भी सम्पूर्ण जगत् मेरेमें नहीं है और मैं सम्पूर्ण जगत्‌में नहीं हूँ अर्थात् मैं संसारसे सर्वथा निर्लिप्त हूँ, अपने

* यहाँ 'योग' शब्द 'युज संयमने' धातुसे बना हुआ लिया गया है; क्योंकि सम्पूर्ण संसारका संयमन भगवान् ही करते हैं। ऐसे तो यमराज भी प्राणियोंके पाप-पुण्योंके अनुसार उनका संयमन करते हैं, परन्तु वे तो एक मृत्युलोकके प्राणियोंका ही संयमन करते हैं, जब कि भगवान् अनन्त ब्रह्माण्डोंका तथा उनमें अलग-अलग नियुक्त किये हुए यमराजोंका भी संयमन करते हैं। इस संयमन करनेकी शक्तिका नाम ही यहाँ योग, सामर्थ्य, प्रभाव है। यह योग, सामर्थ्य, प्रभाव केवल भगवान्‌में ही होता है। ऐसा योग योगियों और मुक्त पुरुषोंमें भी नहीं होता, फिर सामान्य जीवोंमें हो ही कैसे सकता है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आपमें ही स्थित हूँ——मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योगको अर्थात् प्रभाव-(सामर्थ्य-) को देख । तात्पर्य है कि मैं एक ही अनेकरूपसे दीखता हूँ और अनेकरूपसे दीखता हुआ भी मैं एक ही हूँ; अतः केवल मैं-ही-मैं हूँ ।

'पश्य' क्रियाके दो अर्थ होते हैं— जानना और देखना। जानना बुद्धिसे और देखना नेत्रोंसे होता है। भगवान्‌के योग—प्रभाव-को जाननेकी बात यहाँ आयी है और उसे देखनेकी बात ग्यारहवें अध्यायके आठवें श्लोकमें आयी है——'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्' ।

'भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः'—मेरा जो स्वरूप है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंको पैदा करनेवाला, सबको धारण करनेवाला तथा उनका भरण-पोषण करनेवाला है। परन्तु मैं उन प्राणियोंमें स्थित नहीं हूँ अर्थात् मैं उनके आश्रित नहीं हूँ, उनमें लिप्त नहीं हूँ। इसी बातको भगवान्‌ने पंद्रहवें अध्यायमें कहा है कि क्षर (जगत्) और अक्षर (जीवात्मा)—दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जिसको 'परमात्मा' नामसे कहा गया है और जो सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त होकर सबका भरण-पोषण करता हुआ सबका शासन करता है* ।

तात्पर्य यह हुआ कि जैसे मैं सबको उत्पन्न करता हुआ और सबका भरण-पोषण करता हुआ भी अहंता-ममतासे रहित हूँ और

* उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥
(गीता १५ । १७)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सबमें रहता हुआ भी उनके आश्रित नहीं हूँ, उनसे सर्वथा निर्लिप्त हूँ। ऐसे ही मनुष्यको चाहिये कि वह कुटुम्ब-परिवारका भरण-पोषण करता हुआ और सबका प्रबन्ध, संरक्षण करता हुआ उनमें अहंता-ममता न करे और जिस-किसी देश, काल, परिस्थितिमें रहता हुआ भी अपनेको उनके आश्रित न माने अर्थात् सर्वथा निर्लिप्त रहे।

भक्तके सामने जो कुछ परिस्थिति आये, जो कुछ घटना घटे, मनमें जो कुछ संकल्प-विकल्प आये, उन सबमें उसको भगवान्‌की ही लीला देखनी चाहिये। भगवान् ही कभी उत्पत्तिकी लीला, कभी स्थितिकी लीला और कभी संहारकी लीला करते हैं। यह सब संसार स्वरूपसे तो भगवान्‌का ही रूप है और इसमें जो परिवर्तन होता है, वह सब भगवान्‌की ही लीला है—इस तरह भगवान् और उनकी लीलाको देखते हुए भक्तको हरदम प्रसन्न रहना चाहिये।

मार्मिक बात

'सब कुछ परमात्मा ही है'—इस बातको खूब गहरा उतरकर समझनेसे साधकको इसका यथार्थ अनुभव हो जाता है। यथार्थ अनुभव होनेकी कसौटी यह है कि अगर उसकी कोई प्रशंसा करे कि 'आपका सिद्धान्त बहुत अच्छा है' आदि, तो उसको अपनेमें बड़प्पनका अनुभव नहीं होना चाहिये। संसारमें कोई आदर करे या निरादर—इसका भी साधकपर असर नहीं होना चाहिये। अगर कोई कह दे कि 'संसार नहीं है और परमात्मा हैं—यह तो

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आपकी कोरी कल्पना है और कुछ नहीं' आदि, तो ऐसी काट-छाँटसे साधकको किञ्चिन्मात्र भी बुरा नहीं लगना चाहिये। उस बातको सिद्ध करनेके लिये दृष्टान्त देनेकी, प्रमाण खोजनेकी इच्छा ही नहीं होनी चाहिये और कभी भी ऐसा भाव नहीं होना चाहिये कि 'यह हमारा सिद्धान्त है, यह हमारी मान्यता है, इसको हमने ठीक समझा है' आदि। अपने सिद्धान्तके विरुद्ध कोई कितना ही विवेचन करे, तो भी अपने सिद्धान्तमें किसी कमीका अनुभव नहीं होना चाहिये और अपनेमें कोई विकार भी पैदा नहीं होना चाहिये। अपना यथार्थ अनुभव स्वाभाविकरूपसे सदा-सर्वदा अटल और अखण्डरूपसे बना रहना चाहिये। इसके विषयमें साधकको कभी सोचना ही नहीं पड़े।

सम्बन्ध—

अब भगवान् पूर्वके दो श्लोकोंमें कही हुई बातोंको अगले श्लोकमें दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते हैं।

श्लोक—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥ ६॥

अर्थ—

जैसे सब जगह विचरनेवाला वायु नित्य ही आकाशमें स्थित रहता है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मेरेमें ही स्थित रहते हैं— ऐसा तुम मान लो।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

व्याख्या—

'यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्'—जैसे सब जगह विचरनेवाला महान् वायु नित्य ही आकाशमें स्थित रहता है अर्थात् सब जगह घूमनेवाला वायु कहीं निःस्पन्दरूपसे रहता है, कहीं सामान्यरूपसे क्रियाशील रहता है, कहीं बड़े वेगसे चलता है आदि, किसी भी रूपसे चलनेवाला वायु आकाशसे अलग नहीं हो सकता। वह वायु कहीं रुका हुआ मालूम देगा और कहीं चलता हुआ मालूम देगा, तो भी वह आकाशमें ही रहेगा। आकाशको छोड़कर वह कहीं रह ही नहीं सकता। ऐसे ही तीनों लोकों और चौदह भुवनोंमें घूमनेवाले स्थावर-जंगम सम्पूर्ण प्राणी मेरेमें ही स्थित रहते हैं—**'तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि'**।

भगवान्‌ने चौथे श्लोकसे छठे श्लोकतक तीन बार **'मत्स्थानि'** शब्दका प्रयोग किया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ये सम्पूर्ण प्राणी मेरेमें ही स्थित हैं। मेरेको छोड़कर ये कहीं जा सकते ही नहीं। ये प्राणी प्रकृति और प्रकृतिके कार्य शरीर आदिके साथ कितना ही घनिष्ठ सम्बन्ध मान लें, तो भी वे प्रकृति और उसके कार्यसे एक हो सकते ही नहीं; और अपनेको मेरेसे कितना ही अलग मान लें, तो भी वे मेरेसे अलग हो सकते ही नहीं।

वायुके आकाशमें नित्य स्थित बतानेका तात्पर्य यह है कि वायु आकाशसे कभी अलग हो ही नहीं सकता। वायुमें यह किञ्चिन्मात्र भी शक्ति नहीं है कि वह आकाशसे अलग हो जाय; क्योंकि आकाशके साथ उसका नित्य-निरन्तर घनिष्ठ सम्बन्ध अर्थात् अभिन्नता है। वायु

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आकाशका कार्य है और कार्यकी कारणके साथ अभिन्नता होती है। कार्य केवल कार्यकी दृष्टिसे देखनेपर कारणसे भिन्न दीखता है; परन्तु कारणसे कार्यकी अलग सत्ता नहीं होती। जिस समय कार्य कारणमें लीन रहता है, उस समय कार्य कारणमें प्रागभावरूपसे अर्थात् अप्रकटरूपसे रहता है, उत्पन्न होनेपर कार्य भावरूपसे अर्थात् प्रकटरूपसे रहता है और लीन होनेपर कार्य प्रध्वंसाभावरूपसे अर्थात् कारणरूपसे रहता है। कार्यका प्रध्वंसाभाव नित्य रहता है, उसका कभी अभाव नहीं होता; क्योंकि वह कारणरूप ही हो जाता है। इस रीतिसे वायु आकाशसे ही उत्पन्न होता है, आकाशमें ही स्थित रहता है और आकाशमें ही लीन हो जाता है अर्थात् वायुकी स्वतन्त्रता सत्ता न रहकर आकाश ही रह जाता है। ऐसे ही यह जीवात्मा परमात्मासे ही प्रकट होता है, परमात्मामें ही स्थित रहता है और परमात्मामें ही लीन हो जाता है अर्थात् जीवात्माकी स्वतन्त्र सत्ता न रहकर केवल परमात्मा ही रह जाते हैं।

जैसे वायु गतिशील होता है अर्थात् सब जगह घूमता है, ऐसे यह जीवात्मा गतिशील नहीं होता। परंतु जब यह गतिशील प्रकृतिके कार्य शरीरके साथ अपनापन (मैं-मेरापन) कर लेता है, तब शरीरकी गति इसको अपनी गति दीखने लग जाती है। गतिशीलता दीखनेपर भी यह नित्य-निरन्तर परमात्मामें ही स्थित रहता है। इस वास्ते दूसरे अध्यायके चौबीसवें श्लोकमें भगवान्ने जीवात्माको नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचल और सनातन बताया है। यहाँ शरीरोंकी गतिशीलताके कारण इसको 'सर्वगत' बताया है अर्थात्

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यह सब जगह विचरनेवाला दीखता हुआ भी स्थाणु और अचल है। यह स्थिर स्वभाववाला है। इसमें हलन-चलनकी क्रिया नहीं है। इस वास्ते भगवान् यहाँ कह रहे हैं कि सब प्राणी अटलरूपसे नित्य-निरन्तर मेरेमें ही स्थित हैं।

तात्पर्य हुआ कि तीनों लोक और चौदह भुवनोंमें घूमनेवाले जीवोंकी परमात्मासे भिन्न किञ्चिन्मात्र भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है और हो सकती भी नहीं अर्थात् सब योनियोंमें घूमते रहनेपर भी वे प्राणी नित्य-निरन्तर परमात्माके सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। परन्तु प्रकृतिके कार्यके साथ अपना सम्बन्ध माननेसे इसका अनुभव नहीं हो रहा है। अगर ये प्राणी शरीरमें अपनापन न करें, मैं-मेरापन न करें तो इनको असीम आनन्दका अनुभव हो जाय। इस वास्ते प्राणिमात्रको चेतावनी देनेके लिये यहाँ भगवान् कहते हैं कि तुम मेरेमें नित्य-निरन्तर स्थित हो, फिर मेरी प्राप्तिमें परिश्रम और देरी किस बातकी? मेरेमें अपनी स्थिति न माननेसे और न जाननेसे ही मेरेसे दूरी प्रतीत हो रही है।

'इति उपधारय'—यह बात तुम विशेषतासे धारण कर लो, मान लो कि चाहे सर्ग-(सृष्टि-) का समय हो, चाहे प्रलयका समय हो, अनन्त ब्रह्माण्डोंके सम्पूर्ण प्राणी सर्वथा मेरेमें ही रहते हैं; मेरेसे अलग उनकी स्थिति कभी हो ही नहीं सकती। ऐसा दृढ़तासे मान लेनेपर प्रकृतिके कार्यसे विमुखता हो जायगी और वास्तविक तत्त्वका अनुभव हो जायगा।

इस वास्तविक तत्त्वका अनुभव करनेके लिये साधक दृढ़तासे ऐसा मान ले कि जो सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें सर्वथा

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

परिपूर्ण हैं, वे परमात्मा ही मेरे हैं। देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदि कोई भी मेरा नहीं है और मैं उसका नहीं हूँ।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्थिति अपनेमें बतायी, पर उनके महासर्ग और महाप्रलयका वर्णन करना बाकी रह गया। इस वास्ते उसका वर्णन अगले दो श्लोकोंमें करते हैं।

श्लोक—

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥ ७॥

अर्थ—

हे कुन्तीनन्दन! कल्पोंका क्षय होनेपर सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं और कल्पोंके आदिमें मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

व्याख्या—

'सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् कल्पक्षये'— सम्पूर्ण प्राणी मेरे ही अंश हैं और सदा मेरेमें ही स्थित रहनेवाले हैं। परन्तु वे प्रकृति और प्रकृतिके कार्य शरीर आदिके साथ तादात्म्य (मैं-मेरेपनका सम्बन्ध) करके जो कुछ भी कर्म करते हैं उन कर्मों तथा उनके फलोंके साथ उनका सम्बन्ध जुड़ता जाता है, जिससे वे बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं। जब महाप्रलयका समय आता है (जिसमें ब्रह्माजीकी सौ वर्षकी आयु पूरी होनेपर ब्रह्माजी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मी लीन हो जाते हैं); उस समय प्रकृतिके परवश हुए वे सम्पूर्ण प्राणी प्रकृतिजन्य सम्बन्धको लेकर अर्थात् अपने-अपने कर्मोंको लेकर मेरी प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं।

'पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्'—महाप्रलयके समय अपने-अपने कर्मोंको लेकर प्रकृतिमें लीन हुए प्राणियोंके कर्म जब परिपक्व होकर फल देनेके लिये उन्मुख हो जाते हैं, तो प्रभुके मनमें **'एकोऽहं बहु स्याम्'** ऐसा संकल्प हो जाता है। यही महासर्गका आरम्भ है। इसीको आठवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें कहा है—**'भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः'** अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों-का जो होनापन है, उसको प्रकट करनेके लिये भगवान्‌का जो संकल्प है, यही विसर्ग (त्याग) है और यही आदिकर्म है। चौदहवें अध्यायमें इसीको **'गर्भं दधाम्यहम्'** (१४। ३) और **'अहं बीजप्रदः पिता'** (१४। ४) कहा है।

तात्पर्य यह हुआ कि कल्पोंके आदिमें अर्थात् महासर्गके आदिमें ब्रह्माजीके प्रकट होनेपर मैं पुनः प्रकृतिमें लीन हुए, प्रकृतिके परवश हुए उन जीवोंको उनके कर्मोंके अनुसार उन-उन योनियों-(शरीरों-) के साथ विशेष सम्बन्ध करा देता हूँ—यह मेरा उनको रचना है। इसीको भगवान्‌ने चौथे अध्यायके तेरहवें श्लोकमें कहा है—**'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'** अर्थात् मेरे द्वारा गुणों और कर्मोंके विभागपूर्वक चारों वर्णोंकी रचना की गयी है।

ब्रह्माजीके एक दिनका नाम 'कल्प' है, जो मानवीय एक हजार चतुर्युगीका होता है। इतने ही समयकी ब्रह्माजीकी एक रात

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

होती है। इस हिसाबसे ब्रह्माजीकी आयु सौ वर्षोंकी होती है। ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर जब ब्रह्माजी लीन हो जाते हैं, उस महाप्रलयको यहाँ 'कल्पक्षये' पदसे कहा गया है। जब ब्रह्माजी पुनः प्रकट होते हैं, उस महासर्गको यहाँ 'कल्पादौ' पदसे कहा गया है।

यहाँ 'सर्वभूतानि प्रकृतिं यान्ति' महाप्रलयमें तो जीव स्वयं प्रकृतिको प्राप्त होते हैं और 'तानि कल्पादौ विसृजामि' महासर्गके आदिमें मैं उनकी रचना करता हूँ—ये दो प्रकारकी क्रियाएँ देनेका तात्पर्य है कि क्रियाशील होनेसे प्रकृति स्वयं लयकी तरफ जाती है अर्थात् क्रिया करते-करते थकावट होती है तो प्रकृतिका परमात्मामें लय होता है। ऐसी प्रकृतिके साथ सम्बन्ध रखनेसे महाप्रलयके समय प्राणी भी स्वयं प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं और प्रकृति परमात्मामें लीन हो जाती है। महासर्गके आदिमें उनके परिपक्व कर्मोंका फल देकर उनको शुद्ध करनेके लिये मैं उनके शरीरोंकी रचना करता हूँ। रचना उन्हीं प्राणियोंकी करता हूँ, जो कि प्रकृतिके परवश हुए हैं। जैसे मकानका निर्माण तो किया जाता है, पर वह धीरे-धीरे स्वतः गिर जाता है, ऐसे ही सृष्टिकी रचना तो भगवान् करते हैं, पर प्रलय स्वतः होता है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रकृतिके कार्य (संसार-शरीर) की रचनामें तो भगवान्‌का हाथ होता है; पर प्रकृतिका कार्य ह्रासकी तरफ स्वतः जाता है। ऐसे ही भगवान्‌का अंश होनेके कारण जीव स्वतः भगवान्‌की तरफ, उत्थानकी तरफ जाता है। परन्तु जब वह कामना, ममता, आसक्ति करके स्वतः पतन (ह्रास) की तरफ जानेवाले नाशवान् शरीर-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

संसारके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, तो वह पतनकी तरफ चला जाता है। इस वास्ते मनुष्यको अपने विवेकको महत्त्व देकर तत्परतासे अपना उत्थान करना चाहिये अर्थात् कामना, ममता, आसक्तिका त्याग करके केवल भगवान्‌के ही सम्मुख हो जाना चाहिये।

श्लोक—

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्॥ ८॥

अर्थ—

प्रकृतिके वशमें होनेसे परतन्त्र हुए इस प्राणिसमुदायको मैं (कल्पोंके आदिमें) अपनी प्रकृतिको वशमें करके बार-बार रचता हूँ।

व्याख्या—

'भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्'—यहाँ 'प्रकृति' शब्द समष्टि प्रकृतिका वाचक है; क्योंकि यहाँ महासर्ग और महाप्रलयका वर्णन चल रहा है। महासर्गके समय ये सभी प्राणी अपनी व्यष्टि प्रकृति-(कारणशरीर-) में लीन हो जाते हैं, व्यष्टि प्रकृति समष्टि प्रकृतिमें लीन होती है और समष्टि प्रकृति परमात्मामें लीन हो जाती है। परन्तु जब महासर्गका समय आता है तो जीवोंके कर्म फल देनेके लिये उन्मुख हो जाते हैं। उस उन्मुखताके कारण भगवान्‌में 'एकोऽहं बहु स्याम्'—यह संकल्प होता है, जिससे समष्टि प्रकृतिमें क्षोभ (हलचल) पैदा हो जाता है। जैसे, दहीको बिलोया जाय तो उसमें मक्खन और छाछ—

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ये दो चीजें पैदा हो जाती हैं। मक्खन तो ऊपर आ जाता है और छाछ नीचे रह जाती है। यहाँ मक्खन सात्त्विक है, छाछ तामस है और विलोनारूप क्रिया राजस है। भगवान्‌के संकल्पसे दहीरूप प्रकृतिमें क्षोभ हुआ तो प्रकृतिसे सात्त्विक, राजस और तामस—ये तीनों गुण पैदा हो गये। उन तीनों गुणोंसे स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—ये तीनों लोक पैदा हुए। उन तीनों लोकोंमें भी अपने-अपने गुण, कर्म और स्वभावसे सात्त्विक, राजस और तामस जीव पैदा हुए अर्थात् कोई सत्त्वप्रधान हैं, कोई रजःप्रधान हैं और कोई तमःप्रधान हैं।

इसी महासर्गका वर्णन चौदहवें अध्यायके तीसरे और चौथे श्लोकोंमें भी किया गया है। वहाँ परमात्माकी प्रकृतिको 'महद्‌ब्रह्म' कहा गया है और परमात्माके अंश जीवोंका अपने-अपने गुण, कर्म और स्वभावके अनुसार प्रकृतिके साथ विशेष सम्बन्ध करा देनेको बीज स्थापन करना कहा गया है*।

ये जीव महाप्रलयके समय प्रकृतिमें लीन हुए थे, तो तत्त्वतः प्रकृतिका कार्य प्रकृतिमें लीन हुआ था और परमात्माका अंश—चेतन-समुदाय परमात्मामें लीन हुआ था। परन्तु वह चेतन-समुदाय

* मम योनिर्महद्‌ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥
(गीता १४। ३-४)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अपने गुणों और कर्मोंके संस्कारोंको साथ लेकर ही परमात्मामें लीन हुआ था, इस वास्ते परमात्मामें लीन होनेपर भी वह मुक्त नहीं हुआ। अगर वह लीन होनेसे पहले गुणोंका त्याग कर देगा, तो परमात्मामें लीन होनेपर सदाके लिये मुक्त हो जाता, जन्म-मरणरूप बन्धनसे छूट जाता। उन गुणोंका त्याग न करनेसे ही उसका महासर्गके आदिमें अलग-अलग योनियोंके शरीरोंके साथ सम्बन्ध हो जाता है अर्थात् अलग-अलग योनियोंमें जन्म हो जाता है।

अलग-अलग योनियोंमें जन्म होनेमें इस चेतन-समुदायकी व्यष्टि प्रकृति अर्थात् गुण, कर्म आदिसे माने हुए स्वभावकी परवशता ही कारण है, व्यष्टि प्रकृतिका समष्टि प्रकृतिके साथ सम्बन्ध है, इस वास्ते यहाँ समष्टि प्रकृतिकी परवशता बतायी गयी है। आठवें अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें जो परवशता बतायी गयी है, वह व्यष्टि प्रकृतिकी है, क्योंकि वहाँ सर्ग और प्रलयका वर्णन है। तीसरे अध्यायके पाँचवें श्लोकमें जो अवशता बतायी गयी है, वह जन्म होनेके बादकी परवशता है। यह परवशता तीनों लोकोंमें है। इसी परवशताका चौदहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें गुणोंकी परवशताके रूपमें वर्णन हुआ है।*

'प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य'—प्रकृति परमात्माकी एक अनिर्वचनीय अलौकिक विलक्षण शक्ति है। उसको परमात्मासे भिन्न भी नहीं

* सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥
(गीता १४। ५)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कह सकते और अभिन्न भी नहीं कह सकते। ऐसी अपनी प्रकृतिको स्वीकार करके महासर्गके आदिमें प्रकृतिके परवश हुए जीवोंकी रचना करते हैं।

परमात्मा प्रकृतिको लेकर ही सृष्टिकी रचना करते हैं, प्रकृतिके विना नहीं। कारण कि सृष्टिमें जो परिवर्तन होता है, उत्पत्ति-विनाश होता है, वह सब प्रकृतिमें ही होता है, भगवान्में नहीं। इस वास्ते भगवान् क्रियाशील प्रकृतिको लेकर ही सृष्टिकी रचना करते हैं। इसमें भगवान्‌की कोई असमर्थता, पराधीनता, अभाव, कमजोरी आदि नहीं है।

जैसे मनुष्यके द्वारा विभिन्न कार्य होते हैं, तो वे विभिन्न करण, उपकरण, इन्द्रियों और वृत्तियोंसे होते हैं। पर यह मनुष्यकी कमजोरी नहीं है, प्रत्युत यह उसका इन करण, उपकरण आदिपर आधिपत्य है, जिससे वह इनके द्वारा कर्म करा लेता है। (हाँ, मनुष्यमें यह कमी है कि वह उन कर्मोंको अपना और अपने लिये मान लेता है, जिससे वह लिप्त हो जाता है अर्थात् अधिपति होता हुआ भी गुलाम हो जाता है।) ऐसे ही भगवान् सृष्टिकी रचना करते हैं तो उनका प्रकृतिपर आधिपत्य ही सिद्ध होता है। पर आधिपत्य होनेपर भी भगवान्में लिप्तता आदि नहीं होती।

'विसृजामि पुनः पुनः'*— यहाँ 'वि' उपसर्गपूर्वक 'सृजामि' क्रिया देनेका तात्पर्य है कि भगवान् जिन जीवोंकी

* यहाँ 'विसृजामि' पदसे उत्पत्तिका, 'मत्स्थानि' पदसे स्थितिका और 'प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् कल्पक्षये' पदोंसे प्रलयका वर्णन आ गया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

रचना करते हैं, वे विविध (अनेक प्रकारके) कर्मोंवाले ही होते हैं। इस वास्ते भगवान् उनकी विविध प्रकारसे रचना करते हैं अर्थात् स्थावर-जंगम, स्थूल-सूक्ष्म आदि भौतिक शरीरोंमें भी कई पृथ्वीप्रधान, कई तेजप्रधान, कई वायुप्रधान आदि अनेक प्रकारके शरीर होते हैं, उन सबकी भगवान् रचना करते हैं।

यहाँ यह बात समझनेकी है कि भगवान् उन्हीं जीवोंकी रचना करते हैं, जो व्यष्टि प्रकृतिके साथ 'मैं' और 'मेरा' करके प्रकृतिके वशमें हो गये हैं। व्यष्टि प्रकृतिके परवश होनेसे ही जीव समष्टि प्रकृतिके परवश होता है। समष्टि प्रकृतिके परवश न होनेसे महासर्गमें उसका जन्म नहीं होता।

सम्बन्ध—

आसक्ति और कर्तृत्वाभिमानपूर्वक कर्म करनेसे प्राणी कर्मोंसे बँध जाता है। भगवान् बार-बार सृष्टि-रचनारूप कर्म करनेसे भी क्यों नहीं बँधते? इसका उत्तर देते हुए भगवान् अगले श्लोकमें पहले आसक्तिका निषेध करते हैं।

श्लोक—

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥ ९॥

अर्थ—

हे धनञ्जय! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मोंमें अनासक्त और उदासीनकी तरह रहते हुए मेरेको वे कर्म नहीं बाँधते।

JangamwadiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

व्याख्या—

'उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु'—महासर्गके आदिमें प्रकृतिके परवश हुए प्राणियोंकी उनके कर्मोंके अनुसार विविध प्रकारसे रचना करनारूप जो कर्म है, उसमें मेरी आसक्ति नहीं है। कारण कि मैं उनमें उदासीनकी तरह रहता हूँ अर्थात् प्राणियोंके उत्पन्न होनेपर मैं हर्षित नहीं होता और उनके प्रकृतिमें लीन होनेपर मैं खिन्न नहीं होता।

यहाँ 'उदासीनवत्' पदमें जो 'वत्' (वति) प्रत्यय है, उसका अर्थ 'तरह' होता है; अतः इस पदका अर्थ हुआ—उदासीनकी तरह। भगवान्‌ने अपनेको उदासीनकी तरह क्यों कहा? कारण कि मनुष्य उसी वस्तुसे उदासीन होता है, जिस वस्तुकी वह सत्ता मानता है। परन्तु जिस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है, उसकी भगवान्‌के सिवाय कोई स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं है। इस वास्ते भगवान् उस संसारकी रचनारूप कर्मसे उदासीन क्या रहें? वे तो उदासीनकी तरह रहते हैं; क्योंकि भगवान्‌की दृष्टिमें संसारकी कोई सत्ता ही नहीं है। तात्पर्य है कि वास्तवमें यह सब मेरा ही स्वरूप है, इनकी स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं, तो अपने स्वरूपसे मैं क्या उदासीन रहूँ? इस वास्ते मैं उदासीनकी तरह हूँ।

'न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति'—पिछले श्लोकमें भगवान्‌ने कहा कि मैं प्राणियोंको बार-बार रचता हूँ, उन रचनारूप कर्मोंको ही यहाँ 'तानि' कहा गया है। वे कर्म मेरेको नहीं

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बाँधते; क्योंकि उन कर्मों और उनके फलोंके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा कहकर भगवान् मनुष्यमात्रको यह शिक्षा देते हैं, कर्म-बन्धनसे छूटनेकी युक्ति बताते हैं कि जैसे मैं कर्मोंमें आसक्त न होनेसे बँधता नहीं हूँ, ऐसे ही तुमलोग भी कर्मोंमें और उनके फलोंमें आसक्ति न रखो, तो सब कर्म करते हुए भी उनसे बँधोगे नहीं। अगर तुमलोग कर्मोंमें और उनके फलोंमें आसक्ति रखोगे, तो तुमको दुःख पाना ही पड़ेगा, बार-बार जन्मना-मरना ही पड़ेगा। कारण कि कर्मोंका आरम्भ और अन्त होता है तथा फल भी उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं, पर कर्मफलकी इच्छाके कारण मनुष्य बँध जाता है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि कर्म और उसका फल तो नहीं रहता, पर (फलेच्छाके कारण) बन्धन रह जाता है! ऐसे ही वस्तु नहीं रहती, पर वस्तुका सम्बन्ध (बन्धन) रह जाता है! सम्बन्धी नहीं रहता, पर उसका सम्बन्ध रह जाता है! मूर्खताकी बलिहारी है!!

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें आसक्तिका निषेध करके अब भगवान् अगले श्लोकमें कर्तृत्वाभिमानका निषेध करते हैं।

श्लोक—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

अर्थ—

प्रकृति मेरी अध्यक्षतामें सम्पूर्ण चराचर जगत्को रचती है। हे कुन्तीनन्दन! इसी हेतुसे जगत्का विविध प्रकारसे परिवर्तन होता है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

व्याख्या—

'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'—मेरेसे सत्ता-स्फूर्ति पाकर ही प्रकृति चर-अचर, जड़-चेतन आदि भौतिक सृष्टिको रचती है। जैसे बिजलीके द्वारा विभिन्न-विभिन्न कार्य होते हैं—बर्फका जमना, हीटरका जलना, ट्राम और रेलका आना-जाना, लिफ्टका चढ़ना-उतरना, हजारों मील दूरीपर बोले जानेवाले शब्दोंको सुनना, हजारों मील दूरीपर होनेवाले नाटक आदिको देखना, शरीरके भीतरका चित्र लेना, अल्पसमयमें ही बड़े-से-बड़ा हिसाब कर लेना, आदि-आदि ये सभी कार्य विभिन्न-विभिन्न यन्त्रोंके द्वारा होते हैं। परन्तु उन सभी यन्त्रोंमें शक्ति बिजलीकी ही होती है ? बिजलीकी शक्तिके बिना वे यन्त्र स्वयं काम कर ही नहीं सकते; क्योंकि उन यन्त्रोंमें बिजलीको छोड़कर कोई सामर्थ्य नहीं है। ऐसे ही संसारमें जो कुछ परिवर्तन हो रहा है अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डोंका सर्जन, पालन और संहार, स्वर्गादि लोकोंमें और नरकोंमें पुण्य-पापके फलका भोग, तरह-तरहकी विचित्र परिस्थितियाँ और घटनाएँ, तरह-तरहकी आकृतियाँ, वेष-भूषा, स्वभाव आदि जो कुछ हो रहा है, वह सब-का-सब प्रकृतिके द्वारा ही हो रहा है; पर वास्तवमें हो रहा है भगवान्की अध्यक्षता अर्थात् सत्ता-स्फूर्तिसे ही। भगवान्की सत्ता स्फूर्तिके बिना प्रकृति ऐसे विचित्र काम कर ही नहीं सकती; क्योंकि भगवान्को छोड़कर प्रकृतिमें ऐसी स्वतन्त्र सामर्थ्य ही नहीं है कि जिससे वह ऐसे-ऐसे काम कर सके ? तात्पर्य यह हुआ कि जैसे बिजलीमें सब शक्तियाँ हैं, पर वे मशीनोंके द्वारा ही प्रकट होती हैं,

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ऐसे ही भगवान्‌में अनन्त शक्तियाँ मौजूद हैं, पर वे प्रकृतिके द्वारा ही प्रकट होती हैं।

भगवान् संसारकी रचना प्रकृतिको लेकर करते हैं; और प्रकृति संसारकी रचना भगवान्‌की अध्यक्षतामें करती है। 'भगवान् अध्यक्ष हैं'—इसी हेतुसे जगत्‌का विविध परिवर्तन होता है—'हेतुनानेन जगद्विपरिवर्तते'। वह विविध परिवर्तन क्या है? जबतक प्राणियोंका प्रकृति और प्रकृतिके कार्य शरीरोंके साथ 'मैं' और 'मेरा'-पन बना हुआ है, तबतक उनका विविध परिवर्तन होता ही रहता है अर्थात् कभी किसी लोकमें तो कभी किसी लोकमें, कभी किसी शरीरमें तो कभी किसी शरीरमें परिवर्तन होता ही रहता है। तात्पर्य हुआ कि भगवत्प्राप्तिके बिना उन प्राणियोंकी कहीं भी स्थायी स्थिति नहीं होती। प्रकृति उनको जन्म-मरणके चक्करमें हरदम घुमाती ही रहती है (गीता ९। ३)

सभी प्राणी भगवान्‌में स्थित होनेसे भगवान्‌को तो प्राप्त हैं, पर जब वे अपनेको भगवान्‌में न मानकर प्रकृतिमें मान लेते हैं अर्थात् प्रकृतिके कार्यके साथ 'मैं' और 'मेरा'-पनका सम्बन्ध मान लेते हैं, तो वे प्रकृतिको प्राप्त हो जाते हैं। फिर भगवान्‌की अध्यक्षतामें प्रकृति उनके शरीरोंको उत्पन्न और लीन करती रहती है। वास्तवमें देखा जाय तो उन प्राणियोंको उत्पन्न और लीन करनेकी शक्ति प्रकृतिमें नहीं है; क्योंकि वह जड़ है। यह स्वयं भी जन्मता-मरता नहीं है; क्योंकि परमात्माका अंश होनेसे स्वयं अविनाशी है, चेतन है, निर्विकार है। परन्तु प्रकृतिजन्य पदार्थोंके

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

साथ मैं-मेरापनका सम्बन्ध जोड़कर, उनके परवश होकर इसको जन्मना-मरना पड़ता है अर्थात् नये-नये शरीर धारण करने और छोड़ने पड़ते हैं।

जगत्-मात्रकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका जो संचालन होता है, वह सब प्रकृतिसे ही होता है, प्रकृतिमें ही होता है और प्रकृतिका ही होता है। परन्तु उस प्रकृतिको परमात्मासे ही सत्ता-स्फूर्ति मिलती है। परमात्मासे सत्ता-स्फूर्ति मिलनेपर भी परमात्मामें कर्तृत्व नहीं आता। जैसे, सूर्यके प्रकाशमें सभी प्राणी सब कर्म करते हैं और उनके कर्मोंमें विहित तथा निषिद्ध सब तरहकी क्रियाएँ होती हैं। उन कर्मोंके अनुसार ही प्राणी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंका अनुभव करते हैं अर्थात् कोई सुखी है तो कोई दुःखी है; कोई ऊँचा है तो कोई नीचा है, कोई किसी लोकमें है तो कोई किसी लोकमें है, कोई किस वर्ण-आश्रममें है तो कोई किस वर्ण-आश्रममें है आदि -तरह-तरहका परिवर्तन होता है। परन्तु सूर्य और उसका प्रकाश ज्यों-का-त्यों ही रहता है। उसमें कभी किञ्चिन्मात्र भी कोई अन्तर नहीं आता। ऐसे ही संसारमें विविध प्रकारका परिवर्तन हो रहा है, पर परमात्मा और उनका अंश जीवात्मा ज्यों-के-त्यों ही रहते हैं। वास्तवमें अपने स्वरूपमें किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन न है, न हुआ, न होगा और न हो ही सकता है। केवल परिवर्तनशील संसारके साथ अपना सम्बन्ध माननेसे अर्थात् तादात्म्य, ममता और कामना करनेसे ही संसारका परिवर्तन अपनेमें होता हुआ प्रतीत होता है। अगर यह प्राणी

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja ga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिन भगवान्‌की अध्यक्षतामें सब परिवर्तन होता है, उनके साथ अपनी वास्तविक एकता मान ले (जो कि स्वतःसिद्ध है), तो भगवान्‌के साथ इसका जो वास्तविक प्रेम है, वह स्वतः प्रकट हो जायगा।

सम्बन्ध—

जो नित्य-निरन्तर अपने-आपमें ही स्थित रहते हैं, जिसके आश्रयसे प्रकृति घूम रही है और संसारमात्रका परिवर्तन हो रहा है, ऐसे परमात्माकी तरफ दृष्टि न डालकर जो उल्टे चलते हैं, उनका वर्णन अगले दो श्लोकोंमें करते हैं।

श्लोक—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ ११॥

अर्थ—

मूर्खलोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियोंके महान् ईश्वररूप परमभाव-को न जानते हुए मेरेको मनुष्यशरीरके आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर मेरी अवज्ञा करते हैं।

व्याख्या—

'परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्'—जिसकी सत्ता-स्फूर्ति पाकर प्रकृति अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना करती है, चर-अचर, स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको पैदा करती है, जो प्रकृति और उसके कार्यमात्रका संचालक, प्रवर्तक, शासक और संरक्षक है; जिसकी इच्छाके बिना वृक्षका पत्ता भी नहीं हिलता; प्राणी अपने कर्मोंके अनुसार जिन-जिन लोकोंमें जाते हैं, उन-उन लोकोंमें

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

प्राणियोंपर शासन करनेवाले जितने ईश्वरकोटिके प्राणी हैं, उसका भी जो ईश्वर (मालिक) है और जो सबको जाननेवाला है—ऐसा वह मेरा भूतमहेश्वररूप सर्वोत्कृष्ट भाव (स्वरूप) है।

'परं भावम्' कहनेका तात्पर्य है कि मेरे सर्वोत्कृष्ट प्रभावको अर्थात् करनेमें, न करनेमें और उलट-फेर करनेमें जो सर्वथा स्वतन्त्र है; जो कर्म, क्लेश, विपाक आदि किसी भी विकारसे कभी आबद्ध नहीं है; जो क्षरसे अतीत और अक्षरसे भी उत्तम है तथा वेदों और शास्त्रोंमें पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध है (गीता १५। १८)—ऐसे मेरे परमभावको मूढ़लोग नहीं जानते, इसीसे वे मेरेको मनुष्य-जैसा मानकर मेरी अवज्ञा करते हैं।

'मानुषीं तनुमाश्रितम्'—भगवान्‌को मनुष्य मानना क्या है? जैसे साधारण मनुष्य अपनेको शरीर, कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति, पद-अधिकार आदिके आश्रित मानते हैं अर्थात् शरीर, कुटुम्ब आदिकी इज्जत-प्रतिष्ठाको अपनी इज्जत-प्रतिष्ठा मानते हैं; उन पदार्थोंके अधिकारसे अपनेको बड़ा मानते हैं और उनके घटनेसे अपनेको छोटा मानते हैं; और जैसे साधारण प्राणी पहले प्रकट नहीं थे, बीचमें प्रकट हो जाते हैं तथा अन्तमें पुनः अप्रकट हो जाते हैं (गीता २। २८), ऐसे ही वे मेरे प्रभावको न जानते हुए मेरेको साधारण मनुष्य मानते हैं। वे मेरेको मनुष्यशरीरके परवश मानते हैं अर्थात् जैसे साधारण मनुष्य होते हैं, ऐसे ही साधारण मनुष्य कृष्ण हैं—ऐसा मानते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भगवान् तनु अर्थात् शरीरके आश्रित नहीं होते। शरीरके आश्रित तो वे ही होते हैं, जिनको कर्मफलभोगके लिये पूर्वकृत कर्मोंके अनुसार शरीर मिलता है। परन्तु भगवान्का मानवीय शरीर कर्मजन्य नहीं होता। वे अपनी इच्छासे ही प्रकट होते हैं—'इच्छयाऽऽत्तवपुषः' (श्रीमद्भा० १० । ३३ । ३५) और स्वतन्त्रतापूर्वक मत्स्य, कच्छप, वराह आदि अवतार लेते हैं। इस वास्ते उनको न तो कर्मबन्धन होता है और न वे शरीरके आश्रित होते हैं, प्रत्युत शरीर उनके आश्रित होता है—'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवामि' (गीता ४ । ६) अर्थात् वे प्रकृतिको अधिकृत करके प्रकट होते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि सामान्य प्राणी तो प्रकृतिके परवश होकर जन्म लेते हैं तथा प्रकृतिके आश्रित होकर ही कर्म करते हैं, पर भगवान् स्वेच्छासे, स्वतन्त्रतासे अवतार लेते हैं और प्रकृति भी उनकी अध्यक्षतामें काम करती है।

मूढ़लोग मेरे अवतारके तत्त्वको न जानकर मेरेको मनुष्यशरीरके आश्रित (शरण) मानते हैं अर्थात् उनको होना तो चाहिये मेरे शरण, पर मानते हैं मेरेको मनुष्यशरीरके शरण! तो वे मेरे शरण कैसे होंगे? हो ही नहीं सकते। यही बात भगवान्ने सातवें अध्यायमें कही है कि बुद्धिहीन लोग मेरे अज-अविनाशी परमभावको न जानते हुए मेरेको साधारण मनुष्य मानते हैं (७ । २४-२५)। इस वास्ते वे मेरे शरण न होकर देवताओंके शरण होते हैं (७ । २०)।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

'अवजानन्ति मां* मूढाः'— जिसकी अध्यक्षतामें प्रकृति अनन्त ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न और लीन करती है, जिसकी सत्ता-स्फूर्तिसे संसारमें सब कुछ हो रहा है और जिसने कृपा करके अपनी प्राप्तिके लिये मनुष्यशरीर दिया है—ऐसे मुझ सत्य-तत्त्वकी मूढ़लोग अवहेलना करते हैं। वे मेरेको न मानकर उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंको ही सत्य मानकर उनका संग्रह करने और भोग भोगनेमें ही लगे रहते हैं—यही मेरी अवज्ञा, अवहेलना करना है।

सम्बन्ध—

अब भगवान् अगले श्लोकमें अपनी अवज्ञाका फल बताते हैं।

श्लोक—

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥ १२॥

अर्थ—

जिनकी सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभ-कर्म व्यर्थ होते हैं और सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् जिनकी आशाएँ, कर्म और ज्ञान सत्-फल देनेवाले नहीं होते, ऐसे अविवेकी मनुष्य आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेते हैं।

व्याख्या—

'मोघाशाः'—जो लोग भगवान्‌से विमुख होते हैं, वे सांसारिक भोग चाहते हैं, स्वर्ग चाहते हैं, तो उनकी ये सब कामनाएँ व्यर्थ

* इस अध्यायके चौथे श्लोकसे दसवें श्लोकतक जिस परमात्माका वर्णन हुआ है, उसीको यहाँ **'माम्'** पदसे कहा गया है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ही होती हैं। कारण कि नाशवान् और परिवर्तनशील वस्तुकी कामना पूरी ही होगी—यह कोई नियम नहीं है। अगर कभी पूरी हो भी जाय, तो भी वह टिकेगी नहीं अर्थात् फल देकर नष्ट हो जायगी। जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती तबतक कितनी ही सांसारिक वस्तुओंकी इच्छाएँ की जायँ और उनका फल भी मिल जाय, तो भी वह सब व्यर्थ ही है (गीता ७ । २३, ८ । १६, ९ । ३)।

'मोघकर्माणः'—भगवान्‌से विमुख हुए प्राणी शास्त्रविहित कितने ही शुभ-कर्म करें, पर वे सभी व्यर्थ हो जायँगे। कारण कि मनुष्य अगर सकामभावसे शास्त्रविहित यज्ञ, दान आदि कर्म भी करेंगे, तो उन कर्मोंका आदि और अन्त होगा और उनके फलका भी आदि और अन्त होगा। वे उन कर्मोंके फलस्वरूप ऊँचे-ऊँचे लोकोंमें भी चले जायँगे, तो भी वहाँसे उनको फिर जन्म-मरणमें आना ही पड़ेगा। इस वास्ते उन्होंने कर्म करके केवल अपना समय बरबाद किया, अपनी बुद्धि बरबाद की और मिला कुछ नहीं ! अन्तमें रीते-के-रीते रह गये अर्थात् जिसके लिये मनुष्यशरीर मिला था, उस लाभसे सदा ही रीते रह गये। इसलिये उनके सब कर्म व्यर्थ, निष्फल ही हैं।

तात्पर्य यह हुआ कि ये प्राणी साक्षात् परमात्माके अंश हैं, सदा रहनेवाले हैं और कर्म तथा उनका फल आदि-अन्तवाला है; अतः जबतक प्राणीको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी, तबतक वे सकामभावपूर्वक कितने ही कर्म करें और उनका फल भोगें, पर अन्तमें दुःख और अशान्तिके सिवाय कुछ नहीं मिलेगा।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जो शास्त्रविहित कर्म अनुकूल परिस्थिति प्राप्त करनेकी इच्छासे सकामभावपूर्वक किये जाते हैं, वे ही कर्म व्यर्थ होते हैं अर्थात् सत्-फल देनेवाले नहीं होते। परन्तु जो कर्म भगवान्‌के लिये, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं और जो कर्म भगवान्‌के अर्पण किये जाते हैं, वे कर्म निष्फल नहीं होते अर्थात् नाशवान् फल देनेवाले नहीं होते, प्रत्युत सत्-फल देनेवाले हो जाते हैं—'कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते' (गीता १७ । २७)।

सत्रहवें अध्यायके अट्ठाईसवें श्लोकमें भी भगवान्‌ने कहा है कि जिनकी मेरेमें श्रद्धा नहीं है अर्थात् जो मेरेसे विमुख हैं, उनके द्वारा किये गये यज्ञ, दान, तप आदि सभी कर्म असत् होते हैं अर्थात् मेरी प्राप्ति करानेवाले नहीं होते। उन कर्मोंका इस जन्ममें और मरनेके बाद भी (परलोकमें) स्थायी फल नहीं मिलता अर्थात् जो कुछ फल मिलता है, विनाशी ही मिलता है*। इस वास्ते उनके वे सब कर्म व्यर्थ ही हैं।

'मोघज्ञानाः'—उनके सब ज्ञान व्यर्थ हैं। भगवान्‌से विमुख होकर उन्होंने संसारकी सब भाषाएँ सीख लीं, सब लिपियाँ सीख लीं, तरह-तरहकी कलाएँ सीख लीं, तरह-तरहकी विद्याओंका ज्ञान प्राप्त कर लिया, कई तरहके आविष्कार कर लिये, अनन्त प्रकारके ज्ञान प्राप्त कर लिये, पर इससे उनका कल्याण नहीं होगा, जन्म-मरण नहीं छूटेगा। इस वास्ते वे सब ज्ञान निष्फल हैं।

---

* अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥
(गीता १७ । २८)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'विचेतसः'—उनको सार-असार, नित्य-अनित्य, लाभ-हानि, कर्तव्य-अकर्तव्य, मुक्ति-बन्धन आदि बातोंका ज्ञान नहीं है। इस प्रकारकी बेहोशीमें वे संसारका कितना ही ज्ञान-सम्पादन करें, वह सब निरर्थक ही होगा। जैसे, हिसाब करते समय एक अंककी भी भूल हो जाय तो हिसाब कभी सही नहीं आता, सब गलत हो जाता है, ऐसे ही जो भगवान्‌से विमुख हो गये हैं, वे कुछ भी ज्ञान-सम्पादन करें, वह सब गलत होगा और पतनकी तरफ ही ले जायगा।

'राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः—ऐसे वे अविवेकी और भगवान्‌से विमुख मनुष्य आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति अर्थात् स्वभावका आश्रय लेते हैं।

जो मनुष्य अपना स्वार्थ सिद्ध करनेमें, अपनी कामनापूर्ति करनेमें ही लगे रहते हैं, अपने प्राणोंका पोषण करनेमें ही लगे रहते हैं, दूसरोंको कितना दुःख हो रहा है, दूसरोंका कितना नुक्सान हो रहा है—इसकी परवा ही नहीं करते, वे 'आसुरी' स्वभाववाले होते हैं।

जिनके स्वार्थमें, कामना-पूर्तिमें बाधा लग जाती है, उनको गुस्सा आ जाता है और गुस्सेमें आकर वे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये दूसरोंका नुक्सान कर देते हैं, दूसरोंका नाश कर देते हैं, वे 'राक्षसी' स्वभाववाले होते हैं।

जिसमें अपना न स्वार्थ है, न परमार्थ है और न वैर है, फिर भी विना किसी कारणके जो दूसरोंका नुक्सान कर देते हैं, दूसरों-

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

को कष्ट देते हैं (जैसे, उड़ते हुए पक्षीको गोली मार दी, सोते हुए कुत्तेको लाठी मार दी और फिर राजी हो गये), वे 'मोहिनी' स्वभाववाले होते हैं।

परमात्मासे विमुख होकर केवल अपने प्राणोंको रखनेकी अर्थात् सुखपूर्वक जीनेकी जो इच्छा होती है, वह आसुरी प्रकृति है। उपर्युक्त जो तीन प्रकारकी प्रकृति (आसुरी, राक्षसी और मोहिनी) बतायी गयी है, उसके मूलमें आसुरी प्रकृति ही है अर्थात् आसुरी-सम्पत्ति ही सबका मूल है। एक आसुरी-सम्पत्तिके आश्रित होनेपर राक्षसी और मोहिनी प्रकृति भी स्वाभाविक आ जाती है। कारण कि उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंका ध्येय होनेसे सब अनर्थ-परम्परा आ ही जाती है। उसी आसुरी-सम्पत्तिके तीन भेद यहाँ बताये गये हैं—कामनाकी प्रधानतावालोंकी 'आसुरी', क्रोधकी प्रधानतावालोंकी 'राक्षसी' और मोह-(मूढ़ता-) की प्रधानतावालोंकी 'मोहिनी' प्रकृति होती है। तात्पर्य है कि कामनाकी प्रधानता होनेसे आसुरी प्रकृति आती है। जहाँ कामनाकी प्रधानता होती है, वहाँ राक्षसी प्रकृति-क्रोध आ ही जाता है—'कामात्क्रोधोऽभिजायते' (गीता २। ६२) और जहाँ क्रोध आता है, वहाँ मोहिनी प्रकृति (मोह) आ ही जाती है—'क्रोधाद्भवति सम्मोहः' (२। ६३)। यह सम्मोह लोभसे भी होता है और मूर्खतासे भी होता है।

सम्बन्ध—

चौथे श्लोकसे लेकर दसवें श्लोकतक भगवान्‌ने अपने प्रभाव, सामर्थ्य आदिका वर्णन किया। उस प्रभावको न माननेवालोंका

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वर्णन तो ग्यारहवें और बारहवें श्लोकमें कर दिया । अब उस प्रभावको जानकर भजन करनेवालोंका वर्णन अगले श्लोकमें करते हैं ।

श्लोक—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

अर्थ—

परन्तु हे पृथानन्दन ! दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्मालोग मेरेको सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि और अविनाशी समझकर अनन्यमनसे मेरा भजन करते हैं ।

व्याख्या—

'महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः'—पूर्वश्लोकमें जिन आसुरी, राक्षसी और मोहिनी स्वभावके आश्रित मूढ़लोगोंका वर्णन किया था, उनसे दैवी-सम्पत्तिके आश्रित महात्माओंकी विलक्षणता बतानेके लिये ही यहाँ 'तु' पद आया है ।

'दैवीं प्रकृतिम्' अर्थात् दैवी-सम्पत्तिमें 'देव' नाम परमात्माका है, और परमात्माकी सम्पत्ति दैवी-सम्पत्ति कहलाती है । परमात्मा 'सत्' हैं इस वास्ते परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले जितने गुण और आचरण हैं, उनके साथ 'सत्' शब्द लगता है अर्थात् वे सद्गुण और सदाचार कहलाते हैं । जितने भी सद्गुण-सदाचार हैं, वे सब-के-सब भगवत्स्वरूप हैं अर्थात् वे सभी भगवान्के ही स्वभाव हैं और स्वभाव होनेसे ही उनको 'प्रकृति' कहा गया है । इस वास्ते

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

दैवी प्रकृतिका आश्रय लेना भी भगवान्‌का ही आश्रय लेना है।

दैवी-सम्पत्तिके जितने भी गुण हैं (गीता १६ । १—३), वे सभी सामान्य गुण हैं और स्वतः सिद्ध हैं अर्थात् इन गुणोंपर सभी प्राणियोंका पूरा अधिकार है। अब कोई इन गुणोंका आश्रय ले या न ले—यह तो प्राणियोंपर निर्भर है; परन्तु जो इनका आश्रय लेकर परमात्माकी तरफ चलते हैं, वे अपना कल्याण कर लेते हैं।

एक खोज होती है और एक उत्पत्ति होती है। खोज नित्य-तत्त्वकी होती है, जो कि पहलेसे ही है। जिस वस्तुकी उत्पत्ति होती है, वह नष्ट होनेवाली होती है। दैवी-सम्पत्तिके जितने सद्गुण-सदाचार हैं, उनको भगवान्‌के और भगवत्स्वरूप समझकर धारण करना, उनका आश्रय लेना 'खोज' है। कारण कि ये किसीके उत्पन्न किये हुए नहीं हैं अर्थात् ये किसीकी व्यक्तिगत उपज, बपौती नहीं हैं। जो इन गुणोंको अपने पुरुषार्थके द्वारा उपार्जित मानता है अर्थात् स्वाभाविक न मानकर अपने बनाये हुए मानता है, उसको इन गुणोंका अभिमान होता है। यह अभिमान ही वास्तवमें प्राणीकी व्यक्तिगत उपज है, जो उत्पन्न और नष्ट होनेवाली है।

जब मनुष्य दैवी गुणोंको अपने बलके द्वारा उपार्जित मानता है, और 'मैं सत्य बोलता हूँ, दूसरे सत्य नहीं नहीं बोलते'—इस तरह दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें विशेषता मानता है, तब उसमें इन गुणोंका अभिमान पैदा हो जाता है। परन्तु इन गुणोंको केवल

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भगवान्‌के ही गुण माननेसे और भगवत्स्वरूप समझकर इनका आश्रय लेनेसे अभिमान पैदा नहीं होता।

दैवी-सम्पत्तिके अधूरेपनमें ही अभिमान पैदा होता है। दैवी-सम्पत्तिके (अपनेमें) पूर्ण होनेपर अभिमान पैदा नहीं होता। जैसे, किसीको 'मैं सत्यवादी हूँ'—इसका अभिमान होता है, तो उसमें सत्यभाषणके साथ-साथ आंशिक असत्यभाषण भी है। अगर सर्वथा सत्यभाषण हो तो 'मैं सत्य बोलनेवाला हूँ'—इसका अभिमान नहीं हो सकता, प्रत्युत उसका यह भाव रहेगा कि 'मैं सत्यवादी हूँ तो मैं असत्य कैसे बोल सकता हूँ!'

मनुष्यमें दैवी-सम्पत्ति तभी प्रकट होती है, जब उसका उद्देश्य केवल भगवत्प्राप्तिका हो जाता है। भगवत्प्राप्तिके लिये दैवी गुणोंका आश्रय लेकर ही वह परमात्माकी तरफ बढ़ सकता है। दैवी गुणोंका आश्रय लेनेसे उसमें अभिमान नहीं आता; प्रत्युत नम्रता, सरलता, निरभिमानता आती है और साधनमें नित्य नया उत्साह बढ़ता रहता है।

जो मनुष्य भगवान्‌से विमुख होकर उत्पत्ति-विनाशशील भोगों और उनके संग्रहमें लगे हुए हैं, वे 'अल्पात्मा' हैं अर्थात् मूढ़ हैं; परन्तु जिन्होंने भगवान्‌का आश्रय लिया है, जिनकी मूढ़ता चली गयी है और जिन्होंने केवल प्रभुके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है, तो महान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़नेसे, सत्य-तत्त्वकी तरफ ही लक्ष्य होनेसे वे 'महात्मा' हैं अर्थात् महान्, उदार आत्मावाले हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

'भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्'—मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि हूँ और अविनाशी हूँ। तात्पर्य है कि संसार उत्पन्न नहीं हुआ था, उस समयमें मैं था और सब संसार लीन हो जायगा; उस समयमें भी मैं रहूँगा—ऐसा मैं अनादि-अनन्त हूँ। अनन्त ब्रह्माण्ड, अनन्त सृष्टियाँ, अनन्त स्थावर-जङ्गम प्राणी मेरेसे उत्पन्न होते हैं, मेरेमें ही स्थित रहते हैं, मेरे द्वारा ही पालित होते हैं और मेरेमें ही लीन होते हैं; परन्तु मैं ज्यों-का-त्यों निर्विकार रहता हूँ अर्थात् मेरेमें कभी किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं आती।

सांसारिक वस्तुओंका यह नियम है कि किसी वस्तुसे कोई चीज उत्पन्न होती है, तो उस वस्तुमें कमी आ जाती है; जैसे—मिट्टीसे घड़े पैदा होनेपर मिट्टीमें कमी आ जाती है, सोनेसे गहने पैदा होनेपर सोनेमें कमी आ जाती है, आदि। परन्तु मेरेसे अनन्त सृष्टियाँ पैदा होनेपर भी मेरेमें किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं आती; क्योंकि मैं सबका अव्यय बीज हूँ (गीता ९। १८)। जिन पुरुषोंने मेरेको अनादि और अव्यय जान लिया है, वे अनन्यमनसे मेरा ही भजन करते हैं।

जो जिसके महत्त्वको जितना अधिक जानता है, वह उतना ही अधिक उसमें लग जाता है। जिन्होंने भगवान्‌को सर्वोपरि जान लिया है, वे भगवान्‌में ही लग जाते हैं। उनकी पहचानके लिये यहाँ **'अनन्यमनसः'** पद आया है। उनका मन भगवान्‌में ही लीन हो जानेसे उनकी वृत्ति इस लोकके और परलोकके भोगोंकी तरफ कभी नहीं जाती। भोगोंमें उनकी महत्त्वबुद्धि नहीं रहती।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'अनन्य मनवाला' होनेका तात्पर्य है कि उनके मनमें अन्यका आश्रय नहीं है, सहारा नहीं है, भरोसा नहीं है, अन्य किसीमें आकर्षण नहीं है और केवल भगवान्‌में ही अपनापन है। इस प्रकार अनन्यमनसे वे भगवान्‌का भजन करते हैं।

भगवान्‌का भजन किसी तरहसे किया जाय, तो उससे लाभ होता है। परन्तु भगवान्‌के साथ अनन्य होकर 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं' ऐसा सम्बन्ध जोड़कर थोड़ा भी भजन किया जाय, तो उससे बहुत लाभ होता है। कारण कि अपनेपनका सम्बन्ध (भावरूप होनेसे) नित्य-निरन्तर रहता है, जब कि क्रियाका सम्बन्ध नित्य-निरन्तर नहीं रहता, क्रिया छूटते ही उसका सम्बन्ध छूट जाता है। इस वास्ते सबके आदि और अविनाशी परमात्मा मेरे हैं और मैं उनका हूँ—ऐसा जिसने मान लिया है, वह अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित करके शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिसे जो कुछ भी शारीरिक, व्यावहारिक, लौकिक, वैदिक, पारमार्थिक कार्य करता है वह सब भजनरूपसे प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही होता है—यही उसका अनन्यमनसे भजन करना है। इसका वर्णन गीतामें जगह-जगह हुआ है*।

---

* अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८।१४)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(९।२२)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

श्लोक—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

अर्थ—

नित्य-(मेरेमें) युक्त पुरुष दृढ़व्रती होकर लगनपूर्वक साधनमें लगे हुए और भक्तिपूर्वक कीर्तन करते हुए तथा नमस्कार करते हुए निरन्तर मेरी उपासना करते हैं !

व्याख्या—

'नित्ययुक्ताः'— मात्र मनुष्य भगवान्‌में ही नित्ययुक्त रह सकते हैं, हरदम लगे रह सकते हैं, सांसारिक भोगों और संग्रहमें नहीं। कारण कि समय-समयपर भोगोंसे भी ग्लानि होती है और संग्रहसे भी उपरति होती है। परन्तु भगवान्‌की प्राप्तिका, भगवान्‌की तरफ चलनेका जो एक उद्देश्य बनता है, एक दृढ़ विचार होता है, उसमें कभी भी फरक नहीं पड़ता।

भोग और संग्रहमें लगे हुए मनुष्य तो भगवान्‌के भक्त बन सकते हैं, पर भगवान्‌के अनन्य भक्त भी भोगी और संग्रही नहीं बनते। किसी विशेष घटनाके कारण कभी वे भोगी और संग्रही

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
(१२ । ६)

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
(१४ । २६)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वन भी जायँ, तो भी वे भोग और संग्रहमें टिक नहीं सकेंगे। उनको बड़े जोरसे धक्का लगेगा तो वे भगवान्‌को पुकार उठेंगे, और तत्परतासे पुनः साधनमें लग जायँगे। इसका कारण यह है कि भगवान्‌का अंश होनेसे प्राणीका भगवान्‌के साथ अखण्ड सम्बन्ध है। प्राणी जबतक उस सम्बन्धको नहीं पहचानता, तभीतक वह भगवान्‌से विमुख रहता है, अपनेको भगवान्‌से अलग मानता है। परन्तु जब वह भगवान्‌के साथ अपने नित्य-सम्बन्धको पहचान लेता है, तो फिर वह भगवान्‌के सम्मुख हो जाता है, भगवान्‌से अलग नहीं रह सकता और उसको भगवान्‌के सम्बन्धकी विस्मृति भी नहीं होती—यही उसका 'नित्ययुक्त' रहना है।

इस प्राणीका भगवान्‌के साथ 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—ऐसा जो स्वयंका सम्बन्ध है, वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन अवस्थाओंमें, एकान्तमें भजन-ध्यान करते हुए अथवा सेवारूपसे संसारके सब काम करते हुए भी कभी खण्डित नहीं होता, अटलरूपसे सदा ही बना रहता है। जैसे मनुष्य अपनेको जिस माँ-बापका मान लेता है, सब काम करते हुए भी उसका 'मैं अमुकका लड़का हूँ' यह भाव सदा बना रहता है। उसको याद रहे चाहे न रहे, वह याद करे चाहे न करे, पर यह भाव हरदम रहता है; क्योंकि 'मैं अमुकका लड़का हूँ, यह भाव उसके 'मैं' पनमें बैठ गया है। ऐसे ही जो 'अनादि, अविनाशी, सर्वोपरि भगवान् ही मेरे हैं और मैं उनका ही हूँ इस वास्तविकताको

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

जान लेता है, मान लेता है, तो यह भाव हरदम बना रहता है। इस प्रकार भगवान्‌के साथ अपना वास्तविक सम्बन्ध मान लेना ही 'नित्ययुक्त' होना है।

'दृढव्रताः'*—जो सांसारिक भोग और संग्रहमें लगे हुए हैं, वे जो कुछ नियम लेते हैं, वे नियम दृढ़ नहीं होते। परन्तु जिन्होंने भीतरसे ही अपने 'मैं'-पनको बदल दिया है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं', उनका यह दृढ़ निश्चय हो जाता है कि भगवान्‌को प्राप्त करना ही हमारा मुख्य काम है। दूसरे जितने काम हैं, उनमेंसे जो काम भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं, उनको तो करना है, पर जो सहायक नहीं हैं, उनको नहीं करना है। तात्पर्य है कि हमें केवल भगवान्‌की तरफ ही चलना है, भगवान्‌का ही भजन करना है, संसारके भोगोंमें कभी जाना ही नहीं है। इस प्रकार उनके नियय बहुत दृढ़ होते हैं। इन नियमोंसे वे कभी विचलित नही होते; क्योंकि उनका उद्देश्य भगवान्‌का है और स्वयं भी भगवान्‌के अंश हैं। उनके नियमोंमें अदृढ़ता आनेका प्रश्न ही नहीं है। अदृढ़ता तो सांसारिक नियमोंमें ही आती है।

'यतन्तश्च'—जैसे सांसारिक मनुष्य कुटुम्बका पालन करते हैं तो स्नेहपूर्वक करते हैं, रुपये कमाते हैं तो लोभपूर्वक कमाते हैं, ऐसे ही भगवान्‌के भक्त भगवत्प्राप्तिके लिये यत्न (साधन) करते हैं तो लगनपूर्वक ही करते हैं। उनके प्रयत्न सांसारिक दीखते हुए

* सातवें अध्यायके अट्ठाईसवें श्लोकमें आया हुआ 'दृढव्रताः' पद भी इसीका वाचक है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भी वास्तवमें सांसारिक नहीं होते; क्योंकि उनके प्रयत्नमात्रका उद्देश्य भगवान् ही होते हैं।

'भक्त्या कीर्तयन्तो माम्'—वे भक्त प्रेमपूर्वक कभी भगवान्के नामका कीर्तन करते हैं, कभी नाम-जप करते हैं, कभी पाठ करते हैं, कभी नित्यकर्म करते हैं, कभी भगवत्सम्बन्धी बातें सुनाते हैं; आदि-आदि जो कुछ वाणी-सम्बन्धी क्रियाएँ करते हैं, वह सब भगवान्का स्तोत्र ही होता है—**'स्तोत्राणि सर्वा गिरः'**।

'नमस्यन्तश्च'—वे भक्तिपूर्वक भगवान्को नमस्कार करते हैं अर्थात् उनमें सद्गुण-सदाचार आते हैं, उनके द्वारा भगवान्के अनुकूल कोई चेष्टा होती है, तो वे इस भावसे भगवान्को नमस्कार करते हैं कि 'हे नाथ ! यह सब आपकी कृपासे ही हो रहा है। आपकी तरफ इतनी अभिरुचि और तत्परता मेरे उद्योगसे नहीं हुई है। इस वास्ते इन सद्गुण-सदाचारोंको, इस साधनको आपकी कृपासे हुआ समझकर मैं तो आपको केवल नमस्कार ही कर सकता हूँ।'

'सततं मां उपासते'—इस प्रकार मेरे अनन्यभक्त निरन्तर मेरी उपासना करते हैं। निरन्तर उपासना करनेका तात्पर्य है कि वे कीर्तन-नमस्कार आदिके सिवाय जो भी खाना-पीना, सोना-जगना तथा व्यापार करना, खेती करना आदि साधारण क्रियाएँ करते हैं, उन सबको भी मेरे लिये ही करते हैं। उनकी सम्पूर्ण लौकिक, पारमार्थिक क्रियाएँ केवल मेरे उद्देश्यसे, मेरी प्रसन्नताके लिये ही होती हैं।

सम्बन्ध—

अनित्य संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करके नित्य-तत्त्वकी तरफ चलनेवाले साधक कई प्रकारके होते हैं। उनमेंसे भक्तिके साधकोंका

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

वर्णन पिछले दो श्लकोंमें कर दिया, अब दूसरे साधकोंका वर्णन अगले श्लोकमें करते हैं।

श्लोक—

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ १५॥

अर्थ—

दूसरे साधक ज्ञानयज्ञके द्वारा एकीभावसे (अभेदभावसे) मेरा पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे कई साधक अपनेको पृथक् मानकर (सेव्य-सेवकभावसे) चारों तरफ मुखवाले मेरे विराट्‌रूपकी अर्थात् संसारको मेरा विराट्‌रूप मानकर मेरी अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं।

व्याख्या—

[जैसे, भूखे आदमियोंकी भूख एक होती हैं और भोजन करने-पर सबकी तृप्ति भी एक होती है; परन्तु उनकी भोजनके पदार्थोंकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है। ऐसे ही परिवर्तनशील अनित्य संसारकी तरफ लगे हुए लोग कुछ भी करते हैं, पर उनकी तृप्ति नहीं होती, वे अभावग्रस्त ही रहते हैं। इस वास्ते जब वे संसारसे विमुख होकर केवल परमात्माकी तरफ ही चलते हैं, तो परमात्माकी प्राप्ति होनेपर उन सबकी तृप्ति हो जाती है अर्थात् वे कृतकृत्य, ज्ञात-ज्ञातव्य और प्राप्त-प्राप्तव्य हो जाते हैं। परन्तु उनकी रुचि, योग्यता, श्रद्धा, विश्वास आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। इस वास्ते उनकी उपासनाएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं।]

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते एकत्वेन'—कई ज्ञानयोगी साधक ज्ञानयज्ञसे अर्थात् विवेकपूर्वक असत्का त्याग करते हुए सर्वत्र व्यापक परमात्मतत्त्वको और अपने वास्तविक स्वरूपको एक मानते हुए मेरे निर्गुण-निराकार स्वरूपकी उपासना करते हैं।

इस परिवर्तनशील संसारकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है; क्योंकि यह संसार पहले अभावरूपसे था और अब भी अभावमें जा रहा है। अतः यह अभावरूप ही है। जिससे संसार उत्पन्न हुआ है, जिसके आश्रित है और जिससे प्रकाशित होता है, उस परमात्माकी सत्तासे ही इसकी सत्ता प्रतीत हो रही है। उस परमात्माके साथ हमारी एकता है—इस प्रकार उस परमात्माकी तरफ नित्य-निरन्तर दृष्टि रखना ही एकीभावसे मेरी उपासना करना है।

यहाँ **'यजन्तः'** पदका तात्पर्य है कि उनके भीतर केवल परमात्मतत्त्वका ही आदर है—यही उनका पूजन है।

'पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्'—ऐसे ही कई कर्मयोगी साधक अपनेको सेवक मानकर और मात्र संसारको भगवान्‌का विराट् रूप मानकर अपने शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदिकी सम्पूर्ण क्रियाओंको तथा पदार्थोंको संसारकी सेवामें ही लगा देते हैं। इन सबको सुख कैसे हो, सबका दुःख कैसे मिटे, इनकी सेवा कैसे बने—ऐसी विचारधारासे वे अपने तन, मन, धन आदिसे जनता-जनार्दनकी सेवामें ही लगे रहते हैं। भगवत्कृपासे उनको पूर्णताकी प्राप्ति हो आती है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

सम्बन्ध—

जब सभी उपासनाएँ अलग-अलग हैं, तो फिर सभी उपासनाएँ आपकी कैसे हुईं ? इसपर अगले चार श्लोक कहते हैं ।

श्लोक—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥*
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७ ॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

अर्थ—

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं हूँ । जानने-योग्य, पवित्र, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत्‌का पिता, धाता, माता, पितामह, गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद्, उत्पत्ति-प्रलय-स्थान, निधान तथा अविनाशी बीज भी मैं ही हूँ ।

---

* सातवें अध्यायसे बारहवें अध्यायतकके इस मध्यम षट्‌कमें भगवान्‌ने अपनी भक्तिका (उपासनाका) वर्णन किया है और उसमें 'असत्' अर्थात् 'अहम्', 'मम्', 'मया', 'मत्' आदि शब्दोंका प्रयोग किया है । परन्तु यहाँ सोलहवें श्लोकमें 'असत्' अर्थात् 'अहम्' शब्दका प्रयोग आठ बार किया गया है । 'अहम्' शब्दका इतना अधिक प्रयोग इस षट्‌कके दूसरे किसी भी श्लोकमें नहीं किया गया है ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

व्याख्या—

[अपनी रुचि, श्रद्धा-विश्वासके अनुसार किसीको भी साक्षात् परमात्माका स्वरूप मानकर उसके साथ सम्बन्ध किया जाय, तो वास्तवमें वह सम्बन्ध सत्‌के साथ ही है; केवल अपने मन-बुद्धिमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह न हो। जैसे ज्ञानके द्वारा मनुष्य सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें एक परमात्मतत्त्वको ही जानता है। परमात्माके सिवाय दूसरी किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, क्रिया आदिकी किञ्चिन्मात्र भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है—इसमें उसको किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं होता। ऐसे ही भगवान् विराट्‌रूपसे अनेक रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं; अतः सब कुछ भगवान्-ही-भगवान् हैं—इसमें अपनेको किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं होना चाहिये। कारण कि 'यह सब भगवान् कैसे हो सकते हैं', यह सन्देह साधकको वास्तविक तत्त्वसे, मुक्तिसे वञ्चित कर देता है और महान् आफतमें फँसा देता है। इस वास्ते यह बात दृढ़तासे मान लें कि कार्य-कारणरूपसे, स्थूल-सूक्ष्मरूपसे जो कुछ देखने, सुनने, समझने और माननेमें आता है, वह सब केवल भगवान् ही हैं। इसी कार्य-कारणरूपसे भगवान्‌की सर्वव्यापकताका वर्णन सोलहवेंसे उन्नीसवें श्लोकतक करते हैं।]

'अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्'—जो वैदिक रीतिसे किया जाय, वह 'क्रतु' होता है। वह क्रतु मैं ही हूँ। जो स्मार्त (पौराणिक) रीतिसे किया जाय, वह 'यज्ञ' होता है, जिसको पञ्चमहायज्ञ आदि स्मार्त-कर्म कहते हैं। वह यज्ञ मैं

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हूँ । पितरोंके लिये जो अन्न अर्पण किया जाता है, उसको 'स्वधा' कहते हैं। वह स्वधा मैं ही हूँ । उन क्रतु, यज्ञ और स्वधाके लिये आवश्यक जो शाकल्य है अर्थात् वनस्पतियाँ हैं, बूटियाँ हैं, तिल, चावल, जौं, छुहारा आदि औषध है, वह औषध भी मैं ही हूँ ।

'मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्'—जिस मन्त्रसे क्रतु, यज्ञ और स्वधा किये जाते हैं, वह मन्त्र भी मैं ही हूँ। यज्ञ आदिके लिये गो-घृत आवश्यक होता है, वह घृत भी मैं ही हूँ। जिस आहवनीय अग्निमें होम किया जाता है, वह अग्नि भी मैं ही हूँ और हवन करनेकी क्रिया भी मैं ही हूँ ।

'वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च'— वेदोंकी बतायी हुई जो विधि है, उसका ठीक तरहसे जानना 'वेद्य' है। तात्पर्य है कि कामनापूर्तिके लिये अथवा कामना-निवृत्तिके लिये वैदिक और शास्त्रीय जो कुछ क्रतु, यज्ञ आदिका अनुष्ठान किया जाता है, वह विधि-विधानसहित साङ्गोपाङ्ग होना चाहिये; अतः विधि-विधानको जाननेयोग्य सब बातें 'वेद्य' कहलाती हैं, वह वेद्य मेरा स्वरूप है।

यज्ञ, दान और तप—ये तीनों निष्काम पुरुषोंको महान् पवित्र करनेवाले हैं—**'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्'** (१८ । ५)। इनमें जो हव्य आदि वस्तुएँ खर्च होती हैं, वे भी पवित्र हो जाती हैं और इनमें जो क्रिया की जाती है, वह भी पवित्र हो जाती है । यह पवित्रता मेरा स्वरूप है ।

क्रतु, यज्ञ आदिका अनुष्ठान करनेके लिये जिन ऋचाओंका उच्चारण किया जाता है, उन सबमें सबसे पहले 'ॐ' का ही उच्चारण

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

किया जाता है। इसका उच्चारण करनेसे ही ऋचाएँ अभीष्ट फल देती हैं। इस वास्ते ऋचाओंको गायें और 'ॐ' अर्थात् प्रणवको साँड़ बताया गया है। गीतामें भी कहा है कि वेदवादियोंकी यज्ञ, दान, तप आदि सभी क्रियाएँ 'ॐ' का उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं (१७। २४)। वैदिकोंके लिये प्रणवका उच्चारण मुख्य है। इस वास्ते भगवान्ने प्रणवको अपना स्वरूप बताया है।

उन क्रतु, यज्ञ आदिकी विधि बतानेवाले ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद—ये तीनों वेद हैं। जिसमें नियताक्षरवाले मन्त्रोंकी ऋचाएँ होती हैं, उन ऋचाओंके समुदायको 'ऋग्वेद' कहते हैं। जिसमें स्वरोंसहित गानेमें आनेवाले मन्त्र होते हैं, वे सब मन्त्र 'सामवेद' कहलाते हैं। जिसमें अनियताक्षरवाले मन्त्र होते हैं, वे मन्त्र 'यजुर्वेद' कहलाते हैं।* ये तीनों वेद भगवान्के ही स्वरूप हैं।

'पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः'—इस जड़-चेतन, स्थावर-जङ्गम आदि सम्पूर्ण संसारको मैं ही उत्पन्न करता हूँ—'अहं बीजप्रदः पिता' (गीता १४। ४) और बार-बार अवतार लेकर मैं ही इसकी रक्षा करता हूँ। इस वास्ते मैं 'पिता' हूँ।

* जिन मन्त्रोंमें अस्त्र-शस्त्र, भवन आदि निर्माण करनेवाली लौकिक विद्याओंका वर्णन है, वे सब मन्त्र 'अथर्ववेद' कहलाते हैं। यद्यपि अनु-समुच्चयार्थ 'च' अव्ययसे अथर्ववेदका ग्रहण किया जा सकता है, तथापि उसमें लौकिक विद्याओंका वर्णन होनेसे यहाँ क्रतु, यज्ञ आदिके अनुष्ठानमें उसका नाम नहीं लिया गया। इसी कारणसे आगे बीसवें-इक्कीसवें श्लोकोंमें आये 'त्रैविद्याः' और 'त्रयीधर्ममनुप्रपन्नाः' पदोंमें भी ऋक्, साम, यजुः—इन तीनोंका ही संकेत किया गया है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ग्यारहवें अध्यायके तैंतालीसवें श्लोकमें अर्जुनने भी कहा है कि 'आप ही इस चराचर जगत्‌के पिता हैं'—**'पितासि लोकस्य चराचरस्य'**।

इस संसारको सब तरहसे मैं ही धारण करता हूँ और संसारमात्रका जो कुछ विधान बनता है, उस विधानको बनानेवाला भी मैं हूँ। इस वास्ते मैं 'धाता' हूँ।

जीवोंको अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जिस-जिस योनिमें, जैसे-जैसे शरीरोंकी आवश्यकता पड़ती है, उस-उस योनिमें वैसे-वैसे शरीरोंको पैदा करनेवाली 'माता' मैं हूँ अर्थात् मैं सम्पूर्ण जगत्‌की माता हूँ।

प्रसिद्धिमें ब्रह्माजी सम्पूर्ण सृष्टिको पैदा करनेवाले हैं—इस दृष्टिसे ब्रह्माजी प्रजाके पिता हैं। वे ब्रह्माजी भी मेरेसे प्रकट होते हैं—इस दृष्टिसे मैं ब्रह्माजीका पिता और प्रजाका 'पितामह' हूँ। अर्जुनने भी भगवान्‌को ब्रह्माके भी आदिकर्ता कहा है—**'ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे'** (११ । ३७)।

'गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्'—प्राणियोंके लिये जो सर्वोपरि प्रापणीय तत्त्व है, वह 'गति'-स्वरूप मैं ही हूँ। संसारमात्रका भरण-पोषण करनेवाला 'भर्ता' और संसारका मालिक 'प्रभु' मैं ही हूँ। सब समयमें सबको ठीक तरहसे जाननेवाला 'साक्षी' मैं हूँ। जिसमें सब प्राणी रहते हैं, वह 'निवास'-स्थान और जिसका आश्रय लिया जाता है, वह 'शरण' अर्थात् शरणागतवत्सल मैं ही हूँ। बिना कारण प्राणिमात्रका हित करनेवाला 'सुहृद्' अर्थात् हितैषी भी मैं हूँ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्'—सम्पूर्ण संसार मेरेसे ही उत्पन्न होता है और मेरेमें ही लीन होता है, इस वास्ते मैं 'प्रभव' और 'प्रलय' हूँ अर्थात् मैं ही संसारका निमित्तकारण और उपादानकारण हूँ (गीता ७ । ६) ।

प्रलय होनेपर प्रकृतिसहित सारा संसार मेरेमें ही रहता है, इस वास्ते मैं संसारका 'स्थान'* हूँ ।

संसारकी चाहे सर्ग-अवस्था हो, चाहे प्रलय-अवस्था हो, इन सब अवस्थाओंमें प्रकृति, संसार, जीव तथा जो कुछ देखने, सुनने, समझनेमें आता है, वह सब-का-सब मेरेमें ही रहता है, इस वास्ते मैं 'निधान' हूँ ।

सांसारिक बीज तो वृक्षसे पैदा होता है और वृक्षको पैदा करके नष्ट हो जाता है; परन्तु ये दोनों ही दोष मेरेमें नहीं हैं । मैं अनादि हूँ अर्थात् पैदा होनेवाला नहीं हूँ और अनन्त सृष्टियाँ पैदा करके भी जैसा-का-तैसा ही रहता हूँ । इस वास्ते मैं 'अव्यय बीज' हूँ ।

श्लोक—

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

अर्थ—

हे अर्जुन ! (संसारके हितके लिये) मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ, जलको ग्रहण करता हूँ और फिर उस जलको वर्षारूपसे बरसा

---

* सर्ग-अवस्थामें सम्पूर्ण प्राणी जिसमें रहते हैं, वह 'निवास' है और प्रलय-अवस्थामें प्रकृतिसहित सारा जिसमें रहता है, वह 'स्थान' है । यही निवास और स्थानमें अन्तर है ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

देता हूँ। (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् भी मैं ही हूँ।

व्याख्या—

'तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च'—पृथ्वीपर जो कुछ अशुद्ध, गन्दी चीजें हैं, जिनसे रोग पैदा होते हैं, उनका शोषण करके प्राणियोंको नीरोग करनेके लिये* अर्थात् ओषधियों, जड़ी-बूटियोंमें जो जहरीला भाग है, उसका शोषण करनेके लिये और पृथ्वीका जो जलीय भाग है, जिससे अपवित्रता होती है, उसको सुखानेके लिये मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ। सूर्यरूपसे उन सबके जलीय भागको ग्रहण करके और उस जलको शुद्ध तथा मीठा बना करके समय आनेपर वर्षारूपसे प्राणिमात्रके हितके लिये बरसा देता हूँ, जिससे प्राणिमात्रका जीवन चलता है।

'अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन'—मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ अर्थात् मात्र जीवोंका प्राण धारण करते हुए जीवित रहना (न मरना) और सम्पूर्ण जीवोंके पिण्ड-प्राणोंका वियोग होना (मरना) भी मैं ही हूँ।

और तो क्या कहूँ, सत्-असत्, नित्य-अनित्य, कारण-कार्यरूपसे जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ। तात्पर्य है कि जैसे महात्माकी दृष्टिमें सब कुछ वासुदेव (भगवत्स्वरूप) ही है—'वासुदेवः सर्वम्' ऐसे ही भगवान्‌की दृष्टिमें सत्-असत्, कारण-कार्य सब कुछ मैं ही हूँ। परन्तु सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें सब एक-एकसे विरुद्ध दीखते हैं,

* नीरोगता सूर्यसे ही होती है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जैसे जीना और मरना अलग-अलग दीखता है, उत्पत्ति और विनाश अलग-अलग दीखता है, स्थूल और सूक्ष्म अलग-अलग दीखते हैं, सत्त्व-रज-तम—ये तीनों अलग-अलग दीखते हैं, कारण और कार्य अलग-अलग दीखते हैं, जल और बर्फ अलग-अलग दीखते हैं। परन्तु वास्तवमें संसाररूपमें भगवान् ही प्रकट होनेसे, भगवान् ही बने हुए होनेसे सब कुछ भगवत्स्वरूप ही है। भगवान्के सिवाय उसकी स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं। जैसे सूतसे बने हुए सब कपड़ोंमें केवल सूत-ही-सूत है, ऐसे ही वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ आदि सब कुछ केवल भगवान्-ही-भगवान् हैं।

सम्बन्ध—

जगत्की रचना तथा विविध परिवर्तन मेरी अध्यक्षतामें ही होता है; परन्तु मेरे इस प्रभावको न जाननेवाले मूढ़ लोग आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेकर मेरी अवहेलना करते हैं, इस वास्ते वे पतनकी ओर जाते हैं। जो भक्त मेरे प्रभावको जानते हैं, वे मेरे दैवी गुणोंका आश्रय लेकर अनन्यमनसे मेरी विविध प्रकारसे उपासना करते हैं, इस वास्ते उनको सत्-असत् सब कुछ एक परमात्मा ही हैं—ऐसा यथार्थ अनुभव हो जाता है। परन्तु जिनके अन्तःकरणमें सांसारिक भोग और संग्रहकी कामना होती है, वे वास्तविक तत्त्वको न जानकर, भगवान्से विमुख होकर स्वर्गादि लोकोंके भोगोंकी प्राप्तिके लिये सकामभावपूर्वक यज्ञादि अनुष्ठान किया करते हैं, इस वास्ते वे आवागमनको प्राप्त होते हैं—इसका वर्णन भगवान् अगले दो श्लोकोंमें करते हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

श्लोक—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥

अर्थ—

वेदत्रयीमें कहे हुए सकाम अनुष्ठान करनेवाले और सोमरसको पीनेवाले जो पापरहित पुरुष यज्ञोंके द्वारा इन्द्ररूपसे मेरा पूजन करके स्वर्ग-प्राप्तिकी प्रार्थना करते हैं, वे पुण्यके फलस्वरूप इन्द्रलोकको प्राप्त करके वहाँ स्वर्गमें देवताओंके दिव्य भोगोंको भोगते हैं।

व्याख्या—

'त्रैविद्या मां सोमपाः·······दिव्यान्दिवि देवभोगान्'— संसारके प्राणी प्रायः यहाँके भोगोंमें ही लगे रहते हैं। उनमें भी जो विशेष बुद्धिमान् कहलाते हैं, उनके हृदयमें भी उत्पत्ति-विनाशशील वस्तुओंका महत्त्व रहनेके कारण जब वे ऋक्, साम और यजुः— इन तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मोंका तथा उनके फलका वर्णन सुनते हैं, तो वे (वेदोंमें आस्तिकभाव होनेके कारण) यहाँके भोगोंकी इतनी परवाह न करके स्वर्गके भोगोंके लिये ललचा उठते हैं और स्वर्गप्राप्तिके लिये वेदोंमें कहे हुए यज्ञोंके अनुष्ठानमें लग जाते हैं। ऐसे पुरुषोंके लिये ही यहाँ 'त्रैविद्याः' पद आया है।

सोमलता अथवा सोमवल्ली नामकी एक लता होती है। उसके विषयमें सुना जाता है कि जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी प्रतिदिन

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

एक-एक कला बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमाको कळाएँ पूर्ण हो जाती हैं और कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक-एक कला क्षीण होते-होते अमावस्याको कलाएँ सर्वथा क्षीण हो जाती हैं, ऐसे ही उस सोमलताका भी शुक्लपक्षमें प्रतिदिन एक-एक पत्ता निकलते-निकलते पूर्णिमातक पन्द्रह पत्ते निकल आते हैं और कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक-एक पत्ता गिरते-गिरते अमावस्यातक पूरे पत्ते गिर जाते हैं। उस सोमलताके रसको सोमरस कहते हैं। उस सोमरसको वैदिक मन्त्रोंके द्वारा अभिमन्त्रित करके यज्ञ करनेवालोंको पिलाते हैं, इस वास्ते उनको 'सोमपाः' कहा गया है।

वेदोंमें वर्णित यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित सोमरसको पीनेवाले पुरुषोंके स्वर्गके प्रतिबन्धक पाप नष्ट हो जाते हैं। इस वास्ते उनको 'पूतपापाः' कहा गया है।

भगवान्‌ने पूर्वश्लोकमें कहा है कि सत्-असत् सब कुछ मैं ही हूँ, तो इन्द्र भी भगवत्स्वरूप ही हुए। इस वास्ते यहाँ 'माम्' पदसे इन्द्रको ही लेना चाहिये; क्योंकि सकाम यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे स्वर्गके अधिपति इन्द्रका ही पूजन करते हैं और इन्द्रसे ही स्वर्गप्राप्तिकी प्रार्थना करते हैं।

स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे स्वर्गके अधिपति इन्द्रकी स्तुति करना और उस इन्द्रसे स्वर्गलोककी याचना करना—इन दोनोंका नाम 'प्रार्थना' है। वैदिक और पौराणिक विधि-विधानसे किये गये सकाम यज्ञोंके द्वारा इन्द्रका पूजन करने और प्रार्थना करनेके फलस्वरूप वे लोग स्वर्गमें जाकर देवताओंके दिव्य भोगोंको भोगते

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

हैं। वे दिव्य भोग मनुष्यलोकके भोगोंकी अपेक्षा बहुत विलक्षण हैं। वहाँ वे दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचों विषयोंका भोग (अनुभव) करते हैं। इनके सिवाय दिव्य नन्दनवन आदिमें घूमना, सुख-आराम लेना, आदर-सत्कार पाना, महिमा पाना आदि भोगोंको भी भोगते हैं।

श्लोक—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥

अर्थ—

वे उस विशाल स्वर्गलोकके भोगोंको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकमें आ जाते हैं। इस प्रकार तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम धर्मका आश्रय लिये हुए भोगोंकी कामना करनेवाले पुरुष आवागमनको प्राप्त होते हैं।

व्याख्या—

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं····· कामकामा लभन्ते'—स्वर्गलोक भी विशाल (विस्तृत) है, वहाँकी आयु भी विशाल (लम्बी) है और वहाँकी भोग सामग्री भी विशाल (बहुत) है। इस वास्ते इन्द्रलोकको 'विशाल' कहा गया है।

स्वर्गकी प्राप्ति चाहनेवाले न तो भगवान्का आश्रय लेते हैं और न भगवत्प्राप्तिके किसी साधनका ही आश्रय लेते हैं। वे तो केवल तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम धर्मों-(अनुष्ठानों-) का ही आश्रय लेते हैं। इस वास्ते उनको त्रयीधर्मके शरण बताया गया है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'गतागतम्' का अर्थ है—जाना और आना। सकाम अनुष्ठान करनेवाले स्वर्गके प्रापक जिन पुण्योंके फलस्वरूप स्वर्गमें जाते हैं, उन पुण्योंके समाप्त होनेपर वे पुनः मृत्युलोकमें लौट आते हैं। इस प्रकार उनका घटयन्त्रकी तरह बार-बार सकाम शुभकर्म करके स्वर्गमें जाने और फिर लौटकर मृत्युलोकमें आनेका चक्कर चलता ही रहता है। इस चक्करसे वे कभी छूट नहीं पाते।

अगर पूर्वश्लोकमें आये 'पूतपापाः' पदसे जिनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं और यहाँ आये 'क्षीणे पुण्ये' पदोंसे जिनके सम्पूर्ण पुण्य क्षीण हो गये हैं—ऐसा लिया जाय, तो उनको (पाप-पुण्य दोनों क्षीण होनेसे) मुक्त हो जाना चाहिये ? परन्तु वे मुक्त नहीं होते, प्रत्युत आवागमनको प्राप्त होते हैं। इस वास्ते यहाँ 'पूतपापाः' पदसे वे लिये गये हैं, जिनके स्वर्गके प्रतिबन्धक पाप यज्ञ करनेसे नष्ट हो गये हैं और 'क्षीणे पुण्ये' पदोंसे वे लिये गये हैं, जिनके स्वर्गके प्रापक पुण्य वहाँका सुख भोगनेसे समाप्त हो गये हैं। अतः सम्पूर्ण पापों और पुण्योंके नाशकी बात यहाँ नहीं आयी है।

सम्बन्ध—

जो त्रयीधर्मका आश्रय लेते हैं, उनको तो देवताओंसे प्रार्थना—याचना करनी पड़ती है; परन्तु जो केवल मेरा ही आश्रय लेते हैं, उनको अपने योगक्षेमके लिये मनमें चिन्ता, संकल्प अथवा याचना नहीं करनी पड़ती—यह बात भगवान् अगले श्लोकमें बताते हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

श्लोक—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ २२॥

अर्थ—

जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, मेरेमें निरन्तर लगे हुए उन भक्तोंका योगक्षेम (अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षा) मैं वहन करता हूँ।

व्याख्या—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते'—जो कुछ देखने, सुनने और समझनेमें आ रहा है, वह सब-का-सब भगवान्‌का स्वरूप ही है और उसमें जो कुछ परिवर्तन तथा चेष्टा हो रही है, वह सब-की-सब भगवान्‌की लीला है—ऐसा जो दृढ़तासे मान लेते हैं, समझ लेते हैं, उनकी फिर भगवान्‌के सिवाय कहीं भी महत्त्वबुद्धि नहीं होती। वे भगवान्‌में ही लगे रहते हैं। इस वास्ते वे 'अनन्य' हैं। केवल भगवान्‌में ही महत्ता और प्रियता होनेसे उनके द्वारा स्वतः भगवान्‌का ही चिन्तन होता है।

'अनन्याः' कहनेका दूसरा भाव यह है कि उनके साधन और साध्य केवल भगवान् ही हैं अर्थात् केवल भगवान्‌के ही शरण होना है, उन्हींका चिन्तन करना है, उन्हींकी उपासना करनी है और उन्हींको प्राप्त करना है—ऐसा उनका दृढ़ भाव है। भगवान्‌के सिवाय उनका कोई अन्य भाव है ही नहीं; क्योंकि भगवान्‌के सिवाय अन्य सब नाशवान् है। इस वास्ते उनके मनमें भगवान्‌के सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं है; अपने जीवन-निर्वाहकी भी इच्छा नहीं है। इस वास्ते वे अनन्य हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वे खाना-पीना, चलना-फिरना, बातचीत करना, व्यवहार करना आदि जो कुछ भी काम करते हैं, वह सब भगवान्‌की ही उपासना है; क्योंकि वे सब काम भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करते हैं।

'तेषां नित्याभियुक्तानाम्'—जो अनन्य होकर भगवान्‌का ही चिन्तन करते हैं और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही सब काम करते हैं, उन्हींके लिये यहाँ **'नित्याभियुक्तानाम्'** पद आया है।

इसको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार समझें कि वे संसारसे विमुख हो गये—यह उनका 'अनन्य' होना है, वे केवल भगवान्‌के सम्मुख हो गये—यह उनका 'चिन्तन' है और सक्रिय-अक्रिय सभी अवस्थाओंमें भगवत्सेवापरायण हो गये—यह उनकी 'उपासना' है। ये तीनों बातें जिनमें हो जाती हैं, वे ही 'नित्याभियुक्त' हैं।

'योगक्षेमं वहाम्यहम्'—अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति करा देना 'योग' है और प्राप्त सामग्रीकी रक्षा करना 'क्षेम' है। भगवान् कहते हैं कि मेरेमें नित्य-निरन्तर लगे हुए भक्तोंका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।

वास्तवमें देखा जाय तो अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति करानेमें भी 'योग' का वहन है और प्राप्ति न करानेमें भी 'योग'का वहन है। कारण कि भगवान् तो अपने भक्तका हित देखते हैं और वही काम करते हैं, जिसमें भक्तका हित होता हो। ऐसे ही प्राप्त वस्तुकी रक्षा करनेमें भी 'क्षेम' का वहन है और रक्षा न करनेमें भी 'क्षेम' का वहन है। अगर भक्तकी भक्ति बढ़ती हो, उसका कल्याण होता हो

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तो भगवान् प्राप्तकी रक्षा करेंगे; क्योंकि उसीमें उसका 'क्षेम' है। अगर प्राप्तकी रक्षा करनेसे उसकी भक्ति न बढ़ती हो, उसका हित न होता हो तो भगवान् उस प्राप्त वस्तुको नष्ट कर देंगे; क्योंकि नष्ट करनेमें ही उसका 'क्षेम' है। इस वास्ते भगवान्‌के भक्त अनुकूल और प्रतिकूल—दोनों परिस्थितियोंमें परम प्रसन्न रहते हैं। भगवान्‌पर निर्भर रहनेके कारण उनका यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि जो भी परिस्थिति आती है, वह भगवान्‌की ही भेजी हुई है। इस वास्ते 'अनुकूल परिस्थिति ठीक है और प्रतिकूल परिस्थिति बेठीक है—उनका यह भाव मिट जाता है। उनका भाव रहता है कि भगवान्‌ने जो किया है, वही ठीक है और भगवान्‌ने जो नहीं किया है, वही ठीक है, उसीमें हमारा कल्याण है।'

ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—यह सोचनेकी हमें किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। कारण कि हम सदा भगवान्‌के हाथमें ही हैं और भगवान् सदा ही हमारा वास्तविक हित करते रहते हैं। इस वास्ते हमारा अहित कभी हो ही नहीं सकता। तात्पर्य है कि भक्तका मनचाहा हो जाय तो उसमें भी कल्याण है और मनचाहा न हो तो उसमें भी कल्याण है। भक्तका चाहा और न चाहा कोई मूल्य नहीं रखता, मूल्य तो भगवान्‌के विधानका है। इस वास्ते अगर कोई अनुकूलतामें प्रसन्न और प्रतिकूलतामें खिन्न होता है, तो वह भगवान्‌का दास नहीं है, प्रत्युत अपने मनका दास है।

वास्तवमें तो 'योग' नाम भगवान्‌के साथ सम्बन्धका है और 'क्षेम' नाम जीवके कल्याणका है। इस दृष्टिसे भगवान् भक्तके

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सम्बन्धको अपने साथ दृढ़ करते हैं—यह तो भक्तका 'योग' हुआ और भक्तके कल्याणकी चेष्टा करते हैं—यह भक्तका 'क्षेम' हुआ। इसी बातको लेकर दूसरे अध्यायके पैंतालीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने अर्जुनके लिये आज्ञा दी कि 'तू निर्योगक्षेम हो जा' अर्थात् तू योग और क्षेम-सम्बन्धी किसी प्रकारकी चिन्ता मत कर।

'वहाम्यहम्' का तात्पर्य है कि जैसे छोटे बच्चेके लिये माँ किसी वस्तुकी आवश्यकता समझती है, तो बड़ी प्रसन्नता और उत्साहके साथ स्वयं वह वस्तु लाकर देती है। ऐसे ही मेरेमें निरन्तर लगे हुए भक्तोंके लिये मैं किसी वस्तुकी आवश्यकता समझता हूँ, तो वह वस्तु मैं स्वयं ढोकर लाता हूँ अर्थात् भक्तोंके सब काम मैं स्वयं करता हूँ।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें अपनी उपासनाकी बात कह करके अब भगवान् अगले श्लोकमें अन्य देवताओंकी उपासनाकी बात कहते हैं।

श्लोक—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥ २३॥

अर्थ—

हे कुन्तीनन्दन! जो भी भक्त (मनुष्य) श्रद्धापूर्वक अन्य देवताओंका पूजन करते हैं, वे भी करते तो हैं मेरा ही पूजन, पर करते हैं अविधिपूर्वक।

व्याख्या—

'येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः'—देवताओंके जिन भक्तोंको 'सब कुछ मैं ही हूँ' ('सदसच्चाहम्' ९। १९)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

—यह समझमें नहीं आया है, और जिनकी श्रद्धा अन्य देवताओंपर है, वे उन देवताओंका ही श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं। वे देवताओंको भगवान्‌से अलग और बड़ा मानकर अपनी-अपनी श्रद्धाभक्तिके अनुसार अपने-अपने इष्ट देवताके नियमोंको धारण करते हैं। इन देवताओंकी कृपासे ही हमको सब कुछ मिल जायगा—ऐसा समझकर नित्य-निरन्तर देवताओंकी ही सेवा-पूजामें लगे रहते हैं।

'तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्'— देवताओंका पूजन करनेवाले भी वास्तवमें मेरा ही पूजन करते हैं; क्योंकि तत्त्वसे मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं। मेरेसे अलग उन देवताओंकी सत्ता ही नहीं है। वे मेरे ही स्वरूप हैं। इस वास्ते उनके द्वारा किया गया देवताओंका पूजन भी वास्तवमें मेरा ही पूजन है, पर है अविधिपूर्वक। अविधिपूर्वक कहनेका मतलब यह नहीं है कि पूजन-सामग्री कैसी होनी चाहिये? उनके मन्त्र कैसे होने चाहिये? उनका पूजन कैसे होनी चाहिये? आदि-आदि विधियोंका उनको ज्ञान नहीं है। इसका मतलब है—भगवान्‌को उन देवताओंसे अलग मानना। जैसे कामनाके कारण ज्ञान हरा जानेसे वे देवताओंके शरण होते हैं (गीता ७। २०), ऐसे ही यहाँ भगवान्‌से देवताओंकी अलग (स्वतन्त्र) सत्ता मानकर जो देवताओंका पूजन करना है, यही अविधिपूर्वक पूजन करना है।

इस श्लोकका निष्कर्ष यह निकला कि (१) अपनेमें किसी प्रकारकी किञ्चिन्मात्र भी कामना न हो और उपास्यमें भगवद्‌बुद्धि हो, तो अपनी-अपनी रुचिके अनुसार किसी भी प्राणीको,

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

मनुष्यको और किसी भी देवताको अपना उपास्य मानकर उसकी पूजा की जाय, तो वह सब भगवान्‌का ही पूजन हो जायगा और उसका फल भगवान्‌की ही प्राप्ति होगा; और (२) अपनेमें किञ्चिन्मात्र भी कामना हो और उपास्यरूपमें साक्षात् भगवान् हों तो वह अर्थार्थी, आर्त आदि भक्तोंकी श्रेणीमें आ जायगा, जिनको भगवान्‌ने उदार कहा है (७। १८)।

वास्तवमें सब कुछ भगवान् ही हैं। अतः जिस किसीकी उपासना की जाय, सेवा की जाय, हित किया जाय, वह प्रकारान्तरसे भगवान्‌की ही उपासना है। जैसे आकाशसे बरसा हुआ पानी नदी, नाला, झरना आदि बनकर अन्तमें समुद्रको ही प्राप्त होता है (क्योंकि वह जल समुद्रका ही है), ऐसे ही मनुष्य जिस किसीका भी पूजन करे, वह तत्त्वसे भगवान्‌का ही पूजन होता है*। परन्तु पूजकको लाभ तो अपनी-अपनी भावनाके अनुसार ही होता है।

सम्बन्ध—

देवताओंका पूजन करनेवालोंका अविधिपूर्वक पूजन करना क्या है ? इसपर अगला श्लोक कहते हैं।

श्लोक—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥ २४॥

---

* आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अर्थ—

क्योंकि मैं ही सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी हूँ; परन्तु वे मेरेको तत्त्वसे नहीं जानते, इस कारण उनका पतन होता है।

व्याख्या—

[दूसरे अध्यायमें भगवान्‌ने कहा है कि जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, वे 'मेरेको केवल परमात्माकी तरफ ही चलना है'—ऐसा निश्चय नहीं कर सकते*। अतः परमात्माकी तरफ चलनेमें दो बाधाएँ मुख्य हैं—अपनेको भोगोंका भोक्ता मानना और अपनेको संग्रहका मालिक मानना। इन दोनोंसे ही मनुष्यकी बुद्धि उल्टी हो जाती है, जिससे वह परमात्मासे सर्वथा विमुख हो जाता है। जैसे, बचपनमें बालक माँके बिना रह नहीं सकता; पर बड़ा होनेपर जब उसका विवाह हो जाता है, तो वह स्त्रीसे 'मेरी स्त्री है' ऐसा सम्बन्ध जोड़कर उसका भोक्ता और मालिक बन जाता है। फिर उसको माँ उतनी अच्छी नहीं लगती, सुहाती नहीं। ऐसे ही जब यह जीव भोग और ऐश्वर्यमें लग जाता है अर्थात् अपनेको भोगोंका भोक्ता और संग्रहका मालिक मानकर उनका दास बन जाता है और भगवान्‌से सर्वथा विमुख हो जाता है, तो फिर उसको यह बात याद ही नहीं रहती कि सबके भोक्ता और मालिक भगवान् हैं। इसीसे उसका पतन हो जाता है। परन्तु जब इस जीवको चेत हो जाता है कि वास्तवमें मात्र भोगोंके भोक्ता और मात्र ऐश्वर्यके मालिक

* भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥
(गीता २।४४)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भगवान् ही हैं, तो फिर वह भगवान्में लग जाता है, ठीक रास्ते-पर आ जाता है। फिर उसका पतन नहीं होता।]

'अहं हि सर्वयज्ञानां* भोक्ता च प्रभुरेव च'—शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार मनुष्य यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत आदि जितने शुभकर्म करते हैं तथा अपने वर्ण-आश्रमकी मर्यादाके अनुसार व्यावहारिक और शारीरिक कर्तव्य-कर्म करते हैं, उन सब कर्मोंका भोक्ता अर्थात् फलभागी मैं हूँ। कारण कि वेदोंमें, शास्त्रोंमें, पुराणोंमें, स्मृति-ग्रन्थोंमें प्राणियोंके लिये शुभकर्मोंका जो विधान किया गया है, वह सब-का-सब मेरा ही बनाया हुआ है और मेरेको देनेके लिये ही बनाया हुआ है, जिससे ये प्राणी सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मोंसे और उनके फलोंसे सर्वथा निर्लिप्त रहें, कभी अपने स्वरूपसे च्युत न होवें और अनन्यभावसे केवल मेरेमें ही लगे रहें। इस वास्ते उन सम्पूर्ण शुभकर्मोंका और व्यावहारिक तथा शारीरिक कर्मोंका भोक्ता मैं ही हूँ।

जैसे सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता (फलभागी) मैं ही हूँ, ऐसे ही सम्पूर्ण संसारका अर्थात् सम्पूर्ण लोक, पदार्थ, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, क्रिया और प्राणियोंके शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि-का मालिक भी मैं ही हूँ। कारण कि अपनी प्रसन्नताके लिये ही

* यहाँ बहुवचन 'यज्ञानाम्' शब्दके अन्तर्गत सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्म आ जाते हैं, फिर भी इसके साथ 'सर्व' शब्द लगानेका तात्पर्य है कि कोई भी कर्तव्यकर्म बाकी न रहे अर्थात् शास्त्रीय, शारीरिक, व्यावहारिक आदि कोई भी कर्तव्य-कर्म छूट न जाय।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मैंने अपनेमेंसे इस सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना की है; अतः इन सबकी रचना करनेवाला होनेसे इनका मालिक मैं ही हूँ ।

विशेष बात—

भगवान्‌का भोक्ता बनना क्या है ?

भगवान्‌ने कहा है कि महात्माओंकी दृष्टिमें सब कुछ वासुदेव ही है (७ । १९) और मेरी दृष्टिमें भी सत्-असत् सब कुछ मैं ही हूँ (९ । १९) । जब सब कुछ मैं ही हूँ, तो कोई किसी देवताकी पुष्टिके लिये यज्ञ करता है, उस यज्ञके द्वारा देवतारूपमें मेरी ही पुष्टि होती है । कोई किसीको दान देता है, तो दान लेने-वालेके रूपमें मेरा ही अभाव दूर होता है, उससे मेरी ही सहायता होती है । कोई तप करता है, तो उस तपसे तपस्वीके रूपमें मेरेको ही सुख-शान्ति मिलती है । कोई किसीको भोजन कराता है, तो उस भोजनसे प्राणोंके रूपमें मेरी ही तृप्ति होती है । कोई शौच-स्नान करता है, तो उससे उस मनुष्यके रूपमें मेरेको ही प्रसन्नता होती है । कोई पेड़-पौधोंको खाद देता है, उनको जलसे सींचता है तो वह खाद और जल पेड़-पौधोंके रूपमें मेरेको ही मिलता है और उनसे मेरी ही पुष्टि होती है । कोई किसी दीन-दुःखी, अपा-हिजकी तन-मन-धनसे सेवा करता है, तो वह मेरी ही सेवा होती है । कोई वैद्य-डाक्टर किसी रोगीका इलाज करता है, तो वह इलाज मेरा ही होता है । कोई कुत्तोंको रोटी डालता है; कबूतरोंको दाना डालता है; गायोंकी सेवा करता है; भूखोंको अन्न देता है;

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्यासोंको जल पिलाता है; तो उन सबके रूपमें मेरी ही सेवा होती है। उन सब वस्तुओंको मैं ही ग्रहण करता हूँ*। जैसे, कोई किसी मनुष्यकी सेवा करे, उसके किसी अङ्गकी सेवा करे, उसके कुटुम्बकी सेवा करे, तो वह सब सेवा उस मनुष्यकी ही होती है। ऐसे ही मनुष्य जहाँ-कहीं सेवा करे, जिस किसीकी सहायता करे; वह सेवा और सहायता मेरेको ही मिलती है। कारण कि मेरे बिना अन्य कोई है ही नहीं। मैं ही अनेक रूपोंमें प्रकट हुआ हूँ—'एकोऽहं बहु स्याम्'। तात्पर्य यह हुआ कि अनेक रूपोंमें सब कुछ ग्रहण करना ही भगवान्‌का भोक्ता बनना है†।

भगवान्‌का मालिक बनना क्या है ?

---

* एक कथा सुनी है कि एक बार श्रीनामदेवजी महाराज तीर्थयात्रामें गये थे। यात्रामें कहींपर एक वृक्षके नीचे उन्होंने रोटियाँ बनायीं और सामानमेंसे घी लेने के लिये पीछे घूमे तो इतनेमें ही एक कुत्ता आकर मुँहमें रोटी लेकर भागा। नामदेवजी महाराजने घी लेकर इधर देखा कि कुत्ता रोटी लेकर भाग रहा है तो वे भी हाथमें घीका पात्र लिये उसके पीछे भागते हुए कहने लगे—'हे नाथ! आपको ही तो भोग लगाना है, फिर रूखी रोटी लेकर क्यों भाग रहे हो? रोटीको थोड़ा घी तो लगाने दीजिये।' नामदेवजीके ऐसा कहते ही कुत्तेमेंसे भगवान् प्रकट हो गये। कुत्तेमें भगवान्‌के सिवाय और था ही कौन? नामदेवजी जान गये तो वे प्रकट हो गये। इस प्रकार प्राणिमात्रमें तत्त्वसे भगवान् ही हैं। इस वास्ते जिस किसीको जो कुछ दिया जाता है, वह भगवान्‌को ही मिलता है।

† आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भगवत्तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंकी दृष्टिमें अपरा और परा-प्रकृति रूपमात्र संसारके मालिक भगवान् ही हैं। संसारमात्रपर उनका ही अधिकार है। सृष्टिकी रचना करें (या न करें,) संसारकी स्थिति रखें या न रखें, प्रलय करें या न करें; प्राणियोंको चाहे जहाँ रखें, उनका चाहे जैसा संचालन करें, चाहे जैसा उपभोग करें; अपनी मरजीके मुताबिक चाहे जैसा परिवर्तन करें, आदि मात्र परिवर्तन-परिवर्द्धन करनेमें भगवान्‌की बिल्कुल स्वतन्त्रता है। तात्पर्य यह हुआ कि जैसे भोगी पुरुष भोग और संग्रहका चाहे जैसा उपभोग करनेमें स्वतंत्र है (जबकि उसकी स्वतन्त्रता मानी हुई है, वास्तवमें नहीं है), ऐसे ही भगवान् मात्र संसारका चाहे जैसा परिवर्तन-परिवर्द्धन करनेमें सर्वथा स्वतंत्र हैं। भगवान्‌की यह स्वतन्त्रता वास्तविक है। यही भगवान्‌का मालिक बनना है।

'न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते'—वास्तवमें सत्-असत्, जड़-चेतन आदि सब कुछ मैं ही हूँ। इस वास्ते जो भी कर्तव्य-कर्म किये जायँ उन कर्मोंका और उनके फलोंका भोक्ता मैं ही हूँ, तथा सम्पूर्ण सामग्रीका मालिक भी मैं ही हूँ। परन्तु जो मनुष्य इस तत्त्वको नहीं जानते, वे तो यही समझते हैं कि हम जिस किसीको जो कुछ देते हैं, खिलाते हैं, पिलाते हैं, वह सब उन-उन प्राणियोंको ही मिलता है; जैसे—हम यज्ञ करते हैं, तो उस यज्ञके भोक्ता देवता बनते हैं; दान देते हैं, तो दानका भोक्ता वह लेनेवाला बनता है; कुत्तेको रोटी और गायको घास देते हैं, तो उस रोटी और घासके भोक्ता कुत्ता और गाय बनती है; हम भोजन करते हैं, तो भोजनके भोक्ता हम स्वयं बनते हैं, आदि-आदि। तात्पर्य यह

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हुआ कि वे सब रूपोंमें मेरेको न जानकर अन्यको ही मानते हैं, इसीसे उनका पतन होता है। इस वास्ते मनुष्यको चाहिये कि वह किसी अन्यको भोक्ता और मालिक न मानकर केवल भगवान्‌को ही भोक्ता और मालिक मानें अर्थात् जो कुछ चीज दी जाय, उसको भगवान्‌की ही समझकर भगवान्‌के अर्पण करे—'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'

दूसरा भाव यह है कि मनुष्यके पास जो कुछ भोग और ऐश्वर्य है, वह सब मेरा ही है और मेरे विराट्‌रूप संसारकी सेवाके लिये ही है। परन्तु भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त पुरुष उस तत्त्वको न जाननेके कारण उस भोग और ऐश्वर्यको अपना और अपने लिये मान लेता है, जिससे वह यही समझता है कि ये सब चीजें हमारे उपभोगमें आनेवाली हैं और हम इनके अधिपति हैं, मालिक हैं। पर वास्तवमें वे उन चीजोंके गुलाम हो जाते हैं। वे जितना ही उन चीजोंको अपनी और अपने लिये मानते हैं, उतने ही उनके पराधीन हो जाते हैं। फिर वे उन चीजोंके बनने-बिगड़नेसे अपना बनना-बिगड़ना मानते हैं। इस वास्ते उनका पतन हो जाता है। तात्पर्य यह हुआ कि भगवान्‌को सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और मालिक जाननेसे मुक्ति हो जाती है और न जाननेसे पतन हो जाता है।

'च्यवन्ति' पदका तात्पर्य है कि भगवान्‌को प्राप्त न होनेसे उनका पतन हो जाता है। वे शुभकर्म करके ऊँचे-ऊँचे लोकोंमें चले जायँ, तो यह भी उनका पतन है; क्योंकि वहाँसे उनको पीछे

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

लौटकर आना ही पड़ता है (९ । २१)। वे आवागमनको प्राप्त होते ही रहते हैं; मुक्त नहीं हो सकते।

सम्बन्ध—

जो भगवान्‌को सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और मालिक न मानकर देवता आदिका सकामभावसे पूजन करते हैं, उनकी गतियोंका वर्णन अगले श्लोकमें करते हैं।

श्लोक—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ २५ ॥

अर्थ—

(सकामभावसे) देवताओंका पूजन करनेवाले (शरीर छोड़नेपर) देवताओंको प्राप्त होते हैं। पितरोंका पूजन करनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं। भूत-प्रेतोंका पूजन करनेवाले भूत-प्रेतोंको प्राप्त होते हैं। परन्तु मेरा पूजन करनेवाले मेरेको ही प्राप्त होते हैं।

व्याख्या—

[पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने यह बताया कि मैं ही सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता हूँ और सम्पूर्ण संसारका मालिक हूँ, परन्तु जो प्राणी मेरेको भोक्ता और मालिक न मानकर स्वयं भोक्ता और मालिक बन जाते हैं, उनका पतन हो जाता है। अब इस श्लोकमें उनके पतनका विवेचन करते हैं।]

'यान्ति देवव्रता देवान्'—भगवान्‌को ठीक तरहसे न जाननेके कारण भोग और ऐश्वर्यको चाहनेवाले पुरुष वेदों और

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

शास्त्रोंमें वर्णित नियमों, व्रतों, मन्त्रों, पूजन-विधियों आदिके अनुसार अपने-अपने उपास्य देवताओंका विधि-विधानसे साङ्गोपाङ्ग पूजन करते हैं, अनुष्ठान करते हैं; और सर्वथा उन देवताओंके परायण हो जाते हैं (गीता ७ । २०) । वे उपास्य देवता अपने उन भक्तोंको अधिक-से-अधिक और ऊँचे-से-ऊँचा फल यही देंगे कि उनको अपने-अपने लोकोंमें ले जायँगे, जिन लोकोंके लिये भगवान्ने 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनः' (८ । १६) कहा है ।

तेईसवें श्लोकमें भगवान्ने बताया कि देवताओंका पूजन भी मेरा ही पूजन है; परन्तु वह पूजन अविधिपूर्वक है । उस पूजन-में विधिरहितपना यह है कि 'सब कुछ भगवान् ही हैं' इस बातको वे जानते नहीं, मानते नहीं तथा देवता आदिका पूजन करके भोग और ऐश्वर्यको चाहते हैं । इस वास्ते उनका पतन होता है । अगर वे देवता आदिके रूपमें मेरेको ही मानते और उन भगवत्स्वरूप देवताओंसे कुछ भी नहीं चाहते, तो वे देवता अथवा स्वयं मैं भी उनको कुछ देना चाहता, तो भी वे ऐसा ही कहते कि 'हे प्रभो ! आप हमारे हैं और हम आपके हैं—आपके साथ इस अपनेपनसे भी बढ़कर कुछ और (भोग तथा ऐश्वर्य) होता, तो हम आपसे चाहते भी और माँगते भी । अब आप ही बताइये, उससे बढ़कर कुछ है ?' इस तरहके भाववाले वे मेरेको ही आनन्द देनेवाले बन जाते, तो फिर वे तुच्छ और क्षणभंगुर देवलोकोंको प्राप्त नहीं होते ।

'पितॄन्यान्ति पितृव्रताः'—जो सकामभावसे पितरोंका पूजन करते हैं, उनको पितरोंसे कई तरहकी सहायता मिलती है । इस

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

वास्ते लौकिक सिद्धि चाहनेवाले मनुष्य पितरोंके व्रतोंका, नियमोंका, पूजन-विधियोंका साङ्गोपाङ्ग पालन करते हैं और पितरोंको अपना इष्ट मानते हैं। उनको अधिक-से-अधिक और ऊँचा-से-ऊँचा फल यह मिलेगा कि पितर उनको अपने लोकमें ले जायँगे। इस वास्ते यहाँ कहा गया कि पितरोंका पूजन करनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं।

'भूतानि यान्ति भूतेज्याः'—तामस स्वभाववाले मनुष्य सकामभावपूर्वक भूत-प्रेतोंका पूजन करते हैं और उनके नियमोंको धारण करते हैं। जैसे, मन्त्रजपके लिये गधेकी पूँछके बालोंका धागा बनाकर उसमें ऊँटके दाँतोंकी मणियाँ पिरोना, रात्रिमें श्मशानमें जाकर और मुर्देपर बैठकर भूत-प्रेतोंके मन्त्रोंको जपना, मांस-मदिरा आदि महान् अपवित्र चीजोंसे भूत-प्रेतोंका पूजन करना आदि-आदि। उनको अधिक-से-अधिक फल यह मिलेगा कि उनकी सांसारिक कामनाएँ सिद्ध हो सकती हैं। मरनेके बाद तो उनकी दुर्गति होगी ही अर्थात् उनको भूत-प्रेतकी योनि प्राप्त होगी। इस वास्ते यहाँ कहा गया कि भूतोंका पूजन करनेवाले भूत-प्रेतोंको प्राप्त होते हैं।

'यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्'—जो अनन्यभावसे किसी भी तरह मेरे भजन, पूजन और चिन्तनमें लग जाते हैं, वे निश्चितरूपसे मेरेको ही प्राप्त होते हैं।

विशेष बात

सांसारिक भोग और ऐश्वर्यकी कामनावाले मनुष्य अपने-अपने इष्टके पूजन आदिमें तत्परतासे लगे रहते हैं और इष्टकी

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

प्रसन्नताके लिये सब काम करते हैं; परन्तु भगवान्‌के भजन-ध्यानमें लगनेवाले जिस तत्त्वको प्राप्त होते हैं, उसको प्राप्त न होकर वे बार-बार सांसारिक तुच्छ भोगोंको और नरकों तथा चौरासी लाख योनियोंको प्राप्त होते रहते हैं। इस तरह जो मनुष्य जन्म पाकर भगवान्‌के साथ प्रेमका सम्बन्ध जोड़कर उनको भी आनन्द देनेवाले हो सकते थे, वे सांसारिक तुच्छ कामनाओंमें फँसकर और तुच्छ देवता, पितर आदिके फेरेमें पड़कर कितनी अनर्थ-परम्पराको प्राप्त होते हैं! इस वास्ते मनुष्यको बड़ी सावधानीसे केवल भगवान्‌में ही लग जाना चाहिये।

देवता, पितर, ऋषि, मुनि, मनुष्य आदिमें *भगवद्बुद्धि* हो और निष्कामभावपूर्वक केवल उनकी पुष्टिके लिये, उनके हितके लिये ही उनकी सेवा-पूजा की जाय, तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। इन देवता आदिको भगवान्‌से अलग मानना और अपना सकाम भाव रखना ही पतनका कारण है।

भूत, प्रेत, पिशाच आदि योनि ही अशुद्ध है और उनकी पूजा विधि, सामग्री, आराधना आदि भी अत्यन्त अपवित्र है। इनका पूजन करनेवाले इनमें न तो भगवद्बुद्धि कर सकते हैं और न निष्काम भाव ही रख सकते हैं। इस वास्ते उनका तो सर्वथा पतन ही होता है। इस विषयमें थोड़े वर्ष पहलेकी एक सच्ची घटना है। कोई 'कर्णपिशाचिनी' की उपासना करनेवाला था। उसके पास कोई भी कुछ पूछने आता, तो वह उसके बिना पूछे ही बता देता कि यह तो तुम्हारा प्रश्न है और यह उसका उत्तर है। इससे उसने बहुत रुपये कमाये।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अब उस विद्याके चमत्कारको देखकर एक सज्जन उसके पीछे पड़ गये कि 'मेरेको भी यह विद्या सिखाओ, मैं भी इसको सीखना चाहता हूँ'। तो उसने सरलतासे कहा कि 'यह विद्या चमत्कारी तो बहुत है, पर वास्तविक हित, कल्याण करनेवाली नहीं है'। उससे यह पूछा गया कि 'आप दूसरेके बिना कहे ही उसके प्रश्नको और उत्तरको कैसे जान जाते हो?' तो उसने कहा कि 'मैं अपने कानमें विष्ठा लगाये रखता हूँ। जब कोई पूछने आता है, तो उस समय कर्णपिशाचिनी आकर मेरे कानमें उसका प्रश्न और प्रश्नका उत्तर सुना देती है, और मैं वैसा ही कह देता हूँ'। फिर उससे पूछा गया कि 'आपका मरना कैसे होगा—इस विषयमें आपने कुछ पूछा है कि नहीं?' इसपर उसने कहा कि 'मेरा मरना तो नर्मदाके किनारे होगा'। उसका शरीर शान्त होनेके बाद पता लगा कि जब वह (अपना अन्त-समय जानकर) नर्मदामें जाने लगा, तो कर्णपिशाचिनी सूकरी बनकर उसके सामने आ गयी। उसको देखकर वह नर्मदाकी तरफ भागा, तो कर्णपिशाचिनीने उसको नर्मदामें जानेसे पहले ही किनारेपर मार दिया। कारण यह था कि अगर वह नर्मदामें मरता तो उसकी सद्गति हो जाती। परन्तु कर्णपिशाचिनीने उसकी सद्गति नहीं होने दी और उसको नर्मदाके किनारेपर ही मारकर अपने लोकमें ले गयी।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि देवता, पितर आदिकी उपासना स्वरूपसे त्याज्य नहीं है; परन्तु भूत, प्रेत, पिशाच आदिकी उपासना स्वरूपसे ही त्याज्य है। कारण कि देवताओंमें भगवद्भाव और निष्काम-

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भाव हो, तो उसकी उपासना भी कल्याण करनेवाली है। परन्तु भूत, प्रेत आदिकी उपासना करनेवालोंकी कभी सद्गति होती ही नहीं, दुर्गति ही होती है।

हाँ, पारमार्थिक साधक भूत-प्रेतोंके उद्धारके लिये उनका श्राद्ध-तर्पण कर सकते हैं। कारण कि उन भूत-प्रेतोंको अपना इष्ट मान कर उनकी उपासना करना ही पतनका कारण है। उनके उद्धार-के लिये श्राद्ध-तर्पण करना अर्थात् उनको पिण्ड-जल देना कोई दोष-की बात नहीं है। सन्त-महात्माओंके द्वारा भी भूत-प्रेतोंका उद्धार हुआ है।

सम्बन्ध—

देवताओंके पूजनमें तो बहुत-सी सामग्री, नियमों और विधियोंकी आवश्यकता होती है फिर आपके पूजनमें तो और भी ज्यादा कठिनता होती होगी? इसका उत्तर भगवान् अगले श्लोक-में देते हैं।

श्लोक—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

अर्थ—

जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य प्राप्त वस्तु) को भक्तिपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस भगवान्में तल्लीन हुए अन्तःकरणवाले भक्तके द्वारा भक्तिपूर्वक दिये हुए उपहार (भेंट) को मैं खा लेता हूँ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

व्याख्या—

[भगवान्‌की अपरा प्रकृतिके दो कार्य हैं—पदार्थ और क्रिया। इन दोनोंके साथ अपनी एकता मानकर ही यह जीव अपनेको उनका भोक्ता और मालिक मानने लग जाता है और इन पदार्थों और क्रियाओंके भोक्ता और मालिक भगवान् हैं—इस बातको वह भूल जाता है। इस भूलको दूर करनेके लिये ही भगवान् यहाँ कहते हैं कि पत्र, पुष्प, फल आदि जो कुछ पदार्थ हैं और जो कुछ क्रियाएँ हैं (९।२७)' उन सबको मेरे अर्पण कर दो, तो तुम सदा-सदाके लिये आफतसे छूट जाओगे (९।२८)।

दूसरी बात, देवताओंके पूजनमें विधि-विधानकी, मन्त्रों आदिकी आवश्यकता है। परन्तु मेरा तो जीवके साथ स्वतः स्वाभाविक अपनेपनका सम्बन्ध है, इस वास्ते मेरी प्राप्तिमें विधियोंकी मुख्यता नहीं है। जैसे, बालक माँकी गोदीमें जाय, तो उसके लिये किसी विधिकी जरूरत नहीं है। वह तो अपनेपनके सम्बन्धसे ही माँकी गोदमें जाता है। ऐसे ही मेरी प्राप्तिके लिये विधि, मन्त्र आदिकी आवश्यकता नहीं है, केवल अपनेपनके दृढ़ भावकी आवश्यकता है।

'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति'—जो भक्त अनायास यथासाध्य प्राप्त पत्र (तुलसीदल आदि), पुष्प, फल, जल आदि भी प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, तो मैं उसको खा जाता हूँ। जैसे, द्रौपदीसे पत्ता लेकर भगवान्‌ने खा लिया, और त्रिलोकीको तृप्त कर दिया। गजेन्द्रने सरोवरका एक पुष्प भगवान्‌के अर्पण करके नमस्कार किया, तो भगवान्‌ने गजेन्द्रका उद्धार कर दिया।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

शबरीके दिये हुए फल पाकर भगवान् इतने प्रसन्न हुए कि जहाँ कहीं भोजन करनेका अवसर आया, वहाँ शबरीके फलोंकी प्रशंसा करते रहे।* रन्तिदेवने अन्त्यज-रूपसे आये भगवान्‌को जल पिलाया तो उनको भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो गये।

जब भक्तका भगवान्‌को देनेका भाव बहुत अधिक बढ़ जाता है, तो वह अपने-आपको भूल जाता है। भगवान् भी भक्तके प्रेममें इतने मस्त हो जाते हैं कि अपने-आपको भूल जाते हैं। प्रेमकी अधिकतामें भक्तको इसका ख्याल नहीं रहता कि मैं क्या दे रहा हूँ, तो भगवान्‌को भी यह ख्याल नहीं रहता कि मैं क्या खा रहा हूँ! जैसे, विदुरानी प्रेमके आवेशमें भगवान्‌को केलोंकी गिरी न देकर छिलके देती है, तो भगवान् उन छिलकोंको भी गिरीकी तरह ही खा लेते हैं†।

'तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः'—भक्तके द्वारा प्रेमपूर्वक दिये गये उपहारको भगवान् स्वीकार ही नहीं कर लेते, प्रत्युत उसको खा लेते हैं—'अश्नामि'। जैसे, पुष्प सूँघनेकी चीज है, पर भगवान् यह नहीं देखते कि यह खानेकी चीज है या नहीं; वे तो उसको खा ही लेते हैं। उसको आत्मसात् कर लेते हैं, अपनेमें मिला लेते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि भक्तका देनेका भाव रहता

---

* घर गुरु गृह प्रियसदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी, रुचि माधुरी न पाई॥
(विनयपत्रिका १६४।४)

† 'ततवेता' तिहुँ लोकमें, भोजन कियो अपार।
इक शबरी इक विदुरघर, रुच पायो दो बार॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है, तो भगवान्‌का भी लेनेका भाव हो जाता है ! भक्तमें भगवान्‌को खिलानेका भाव आता है, तो भगवान्‌को भी भूख लग जाती है।

'प्रयतात्मनः' का तात्पर्य है कि जिसका अन्तःकरण भगवान्‌में तल्लीन हो गया है, जो केवल भगवान्‌के ही परायण है, ऐसे प्रेमी भक्तके दिये हुए उपहार-(भेंट-)को भगवान् स्वयं खा लेते हैं।

यहाँ पत्र, पुष्प, फल और जल—इन चारोंका नाम लेनेका तात्पर्य यह है कि पत्र, पुष्प और फल—ये तीनों जलसे पैदा होनेके कारण जलके कार्य हैं और जल इनका कारण है। इस वास्ते ये पत्र, पुष्प आदि कार्य-कारणरूप मात्र पदार्थोंके उपलक्षण हैं; क्योंकि मात्र सृष्टि जलका कार्य है और जल उसका कारण है। अतः मात्र पदार्थोंको भगवान्‌के अर्पण करना चाहिये।

इस श्लोकमें 'भक्त्या' और 'भक्त्युपहृतम्'—इस रूपमें 'भक्ति' शब्द दो बार आया है। इनमें 'भक्त्या' पदसे भक्तका भक्तिपूर्वक देनेका भाव है और 'भक्त्युपहृतम्' पद भक्तिपूर्वक दी हुई वस्तुका विशेषण है। तात्पर्य यह हुआ कि भक्तिपूर्वक देनेसे वह वस्तु भक्तिरूप, प्रेमस्वरूप हो जाती है, तो भगवान् उसको आत्मसात् कर लेते हैं, अपनेमें मिला लेते हैं; क्योंकि वे प्रेमके भूखे हैं।

विशेष बात—

इस श्लोकमें पदार्थोंकी मुख्यता नहीं है, प्रत्युत भक्तके भावकी मुख्यता है; क्योंकि भगवान् भावके भूखे हैं, पदार्थोंके नहीं। इस

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वास्ते अर्पण करनेवालेका भाव मुख्य (भक्तिपूर्ण) होना चाहिये। जैसे, कोई अत्यधिक गुरुभक्त शिष्य हो, तो गुरुकी सेवामें उसका जितना समय, वस्तु, क्रिया लगती है, उतना ही उसको आनन्द आता है, प्रसन्नता होती है। इसी तरह पतिकी सेवामें समय, वस्तु, क्रिया लगनेपर पतिव्रता स्त्रीको बड़ा आनन्द आता है; क्योंकि पतिकी सेवामें ही उसको अपने जीवनकी और वस्तुकी सफलता दीखती है। ऐसे ही भक्तका भगवान्‌के प्रति प्रेम-भाव होता है, तो वस्तु चाहे छोटी हो या बड़ी हो, साधारण हो या कीमती हो, उसको भगवान्‌के अर्पण करनेमें भक्तको बड़ा आनन्द आता है। उसका भाव यह रहता है कि वस्तुमात्र भगवान्‌की ही है। मेरेको भगवान्‌ने सेवा-पूजाका अवसर दे दिया है—यह मेरेपर भगवान्‌की विशेष कृपा हो गयी है! इस कृपाको देख-देखकर वह प्रसन्न होता रहता है।

भावपूर्वक लगाये हुए भोगको भगवान् स्वीकार करते हैं, चाहे हमें दीखे या न दीखे। इस विषयमें एक आचार्य कहते थे कि हमारे मन्दिरमें दीवालीसे होलीतक अर्थात् सरदीके दिनोंमें ठाकुरजीको पिस्ता, बादाम, अखरोट, काजू, चिरौंजी आदिका भोग लगाया करते थे; परन्तु जब यह बहुत मँहगा हो गया, तो हमने मूँगफलीका भोग लगाना शुरू कर दिया। एक दिन रातमें ठाकुरजीने स्वप्नमें कहा—'अरे यार! तू मूँगफली ही खिलायेगा क्या ?' उस दिनके बाद फिर मेवाका भोग लगाना शुरू कर दिया। उनको यह विश्वास हो गया कि जब ठाकुरजीको भोग लगाते हैं, तो वे उसे स्वीकार करते हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भोग लगानेपर जिन चीजोंको भगवान् स्वीकार कर लेते हैं, उन वस्तुओंमें विलक्षणता आ जाती है अर्थात् उन वस्तुओंमें स्वाद बढ़ जाता है; उनमें सुगन्ध आने लगती है; उनको खानेपर विलक्षण तृप्ति होती है; वे चीजें कितने ही दिनोंतक पड़ी रहनेपर भी खराब नहीं होतीं; आदि-आदि । परन्तु यह कसौटी नहीं है कि ऐसा होता ही है । कभी भक्तका ऐसा भाव बन जाय तो भोग लगायी हुई वस्तुओंमें ऐसी विलक्षणता आ जाती है—ऐसा हमने सन्तोंसे सुना है ।

मनुष्य जब पदार्थोंकी आहुति देते हैं तो वह यज्ञ हो जाता है; चीजोंको दूसरोंको दे देते हैं तो वह दान कहलाता है; संयमपूर्वक अपने काममें न लेनेसे वह तप हो जाता है और भगवान्के अर्पण करनेसे भगवान्के साथ योग (सम्बन्ध) हो जाता है—ये सभी एक 'त्याग' के ही अलग-अलग नाम हैं ।

सम्बन्ध—

संसारमात्रके दो रूप हैं—पदार्थ और क्रिया । इनमें आसक्ति होनेसे ये दोनों ही पतन करनेवाले हैं । इस वास्ते 'पदार्थ' अर्पण करनेकी बात पूर्वश्लोकमें कह दी और अब आगेके श्लोकमें 'क्रिया' अर्पण करनेकी बात कहते हैं ।

श्लोक—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अर्थ—

हे कुन्तीपुत्र ! तू जो कुछ करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।

व्याख्या—

[भगवान्‌का यह नियम है कि जो जैसे मेरा भजन करते हैं, मैं वैसे ही उनका भजन करता हूँ (गीता ४ । ११) । जो भक्त अपनी वस्तु मेरे अर्पण करता है, मैं उसको अपनी वस्तु देता हूँ । भक्त तो सीमित ही वस्तु देता है, पर मैं अनन्त गुणा करके देता हूँ । परन्तु जो अपने-आपको ही मेरेको दे देता है, मैं अपने-आपको उसको दे देता हूँ । वास्तवमें मैंने अपने-आपको संसारमात्रको दे रक्खा है (गीता ९ । ४), और सबको सब कुछ करनेकी स्वतन्त्रता दे रखी है। अगर मनुष्य मेरी दी हुई स्वतन्त्रताको मेरे अर्पण कर दे, तो मैं भी अपनी स्वतन्त्रताको उसके अर्पण कर देता हूँ अर्थात् मैं उसके अधीन हो जाता हूँ । इस वास्ते भगवान् उस स्वतन्त्रताको अपने अर्पण करनेके लिये अर्जुनसे कहते हैं ।]

'यत्करोषि'—यह पद ऐसा विलक्षण है कि इसमें शास्त्रीय, शारीरिक, व्यावहारिक, सामाजिक, पारमार्थिक आदि यावन्मात्र क्रियाएँ आ जाती हैं। भगवान् कहते हैं, कि तू इन सम्पूर्ण क्रियाओंको मेरे अर्पण कर दे अर्थात् तू खुद ही मेरे अर्पित हो जा, तो तेरी सम्पूर्ण क्रियाएँ स्वतः मेरे अर्पित हो जायँगी।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अब आगे भगवान् उन्हीं क्रियाओंका विभाग करते हैं—

'यदश्नासि'—इस पदके अन्तर्गत सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाएँ लेनी चाहिये अर्थात् शरीरके लिये तू जो भोजन करता है, जल पीता है, कुपथ्यका त्याग और पथ्यका सेवन करता है, ओषधि सेवन करता है, कपड़ा पहनता है, सरदी-गरमीसे शरीरकी रक्षा करता है, स्वास्थ्यके लिये समयानुसार सोता और जागता है, घूमता-फिरता है, शौच-स्नान करता है आदि सभी क्रियाओंको तू मेरे अर्पण कर दे।

यह शारीरिक क्रियाओंका पहला विभाग है।

'यज्जुहोषि'—इस पदमें यज्ञ-सम्बन्धी सभी क्रियाएँ आ जाती हैं अर्थात् शाकल्य-सामग्री इकट्ठी करना, अग्नि प्रकट करना, मन्त्र पढ़ना, आहुति देना आदि सभी शास्त्रीय क्रियाएँ मेरे अर्पण कर दे।

'ददासि यत्'—तू जो कुछ देता है अर्थात् दूसरोंकी सेवा करता है, दूसरोंकी सहायता करता है, दूसरोंकी आवश्यकता-पूर्ति करता है आदि जो कुछ शास्त्रीय क्रिया करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।

'यत्तपस्यसि'—तू जो कुछ तप करता है अर्थात् विषयोंसे अपनी इन्द्रियोंका संयम करता है, अपने कर्तव्यका पालन करते हुए अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंको प्रसन्नतापूर्वक सहता है और तीर्थ, व्रत, भजन-ध्यान, जप-कीर्तन, श्रवण-मनन, समाधि आदि जो कुछ पारमार्थिक क्रिया करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उपर्युक्त तीनों पद शास्त्रीय और पारमार्थिक क्रियाओंका दूसरा विभाग है।

'तत्कुरुष्व मदर्पणम्'— यहाँ भगवान्‌ने परस्मैपदी 'कुरु' क्रिया-पद न देकर आत्मनेपदी 'कुरुष्व' क्रिया-पद दिया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तू सब कुछ मेरे अर्पण कर देगा, तो मेरी कमीकी पूर्ति हो जायगी—यह बात नहीं है; किन्तु सब कुछ मेरे अर्पण करनेपर तेरे पास कुछ नहीं रहेगा अर्थात् तेरा 'मैं' और 'मेरा'-पन सब खत्म हो जायगा, जो कि बन्धनकारक है। सब कुछ मेरे अर्पण करनेके फलस्वरूप तेरेको पूर्णताकी प्राप्ति हो जायगी अर्थात् जिस लाभसे बढ़कर दूसरा कोई लाभ सम्भव ही नहीं है और जिस लाभमें स्थित होनेपर बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता अर्थात् जहाँ दुःखोंके संयोगका ही अत्यन्त वियोग है (गीता ६। २२-२३)—ऐसा लाभ तेरेको हो जायगा।

इस श्लोकमें 'यत्' पद पाँच वार कहनेका तात्पर्य है कि एक-एक क्रिया अर्पण करनेका भी अपार माहात्म्य है, फिर सम्पूर्ण क्रियाएँ अर्पण की जायँ, तब तो कहना ही क्या है!

विशेष बात

छब्बीसवें श्लोकमें तो भगवान्‌ने पत्र, पुष्प आदि अर्पण करनेकी बात कही, जो कि अनायास अर्थात् बिना परिश्रमके प्राप्त होते हैं। परन्तु इसमें कुछ-न-कुछ उद्योग तो करना ही पड़ेगा अर्थात् सुगम-से-सुगम वस्तुको भी भगवान्‌के अर्पण करनेका नया

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

उद्योग करना पड़ेगा । परन्तु सत्ताईसवें श्लोकमें भगवान्‌ने उससे भी विलक्षण बात बतायी है कि कोई नये पदार्थ नहीं देने हैं, कोई नयी क्रिया नहीं करनी है और कोई नया उद्योग भी नहीं करना है, प्रत्युत हमारे द्वारा जो लौकिक, पारमार्थिक आदि स्वाभाविक क्रियाएँ होती हैं, उनको भगवान्‌के अर्पण कर देना है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भगवान्‌के लिये किसी वस्तु और क्रियाविशेष अर्पण करनेकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत खुदको ही अर्पण करनेकी जरूरत है । खुद अर्पित होनेसे सब क्रियाएँ स्वाभाविक भगवान्‌के अर्पित हो जायँगी, भगवान्‌की प्रसन्नताका हेतु हो जायँगी। जैसे, बालक अपनी माँके सामने खेलता है, कभी दौड़कर दूर चला जाता है और फिर दौड़कर गोदमें आ जाता है, कभी पीठपर चढ़ जाता है आदि जो कुछ क्रिया बालक करता है, उस क्रियासे माँ प्रसन्न होती है । माँकी इस प्रसन्नतामें बालकका माँके प्रति अपनेपनका भाव ही हेतु है। ऐसे ही शरणागत भक्तका भगवान्‌के प्रति अपनेपनका भाव होनेसे भक्तकी प्रत्येक क्रियासे भगवान्‌को प्रसन्नता होती है ।

यहाँ 'करोषि' क्रियाके साथ सामान्य 'यत्' पद होनेसे अर्थात् 'तू जो कुछ करता है'—ऐसा कहनेसे निषिद्ध क्रिया भी आ सकती है । परन्तु अन्तमें 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्' 'वह मेरे अर्पण कर दे'—ऐसा आया है । अतः जो चीज या क्रिया भगवान्‌के अर्पण की जायगी, वह भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार, भगवान्‌के अनुकूल ही होगी । जैसे किसी त्यागी पुरुषको कोई वस्तु दी

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जायगी तो उसके अनुकूल ही दी जायगी, निषिद्ध वस्तु नहीं दी जायगी; ऐसे ही भगवान्‌को कोई वस्तु या क्रिया अर्पित की जायगी तो उनके अनुकूल, विहित वस्तु या क्रिया ही अर्पित की जायगी, निषिद्ध नहीं। कारण कि जिसका भगवान्‌के प्रति अर्पण करनेका भाव है, उसके द्वारा न तो निषिद्ध क्रिया होनेकी सम्भावना है और न निषिद्ध क्रिया अर्पण करनेकी सम्भावना है।

अगर कोई कहे कि 'हम तो चोरी आदि निषिद्ध क्रिया भी भगवान्‌के अर्पण करेंगे' तो यह नियम है कि भगवान्‌को दिया हुआ अनन्त गुणा हो करके मिलता है। इस वास्ते अगर चोरी आदि निषिद्ध क्रिया भगवान्‌के अर्पण करोगे, तो उसका फल भी अनन्त गुणा हो करके मिलेगा अर्थात् उसका साङ्गोपाङ्ग दण्ड भोगना ही पड़ेगा!

सम्बन्ध—

पहलेके दो श्लोकोंमें पदार्थों और क्रियाओंको भगवान्‌के अर्पण करनेका वर्णन करके अब आगेके श्लोकमें उस अर्पणका फल बताते हैं।

श्लोक—

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

अर्थ—

इस प्रकार मेरे अर्पण करनेसे जिनसे कर्मबन्धन होता है, ऐसे शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंसे

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

तू मुक्त हो जायगा । ऐसे अपनेसहित सब कुछ मेरे अर्पण करनेवाला और सबसे मुक्त हुआ तू मेरेको प्राप्त हो जायगा ।

व्याख्या—

'शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः'—पूर्वोक्त प्रकारसे सब पदार्थ और क्रियाएँ मेरे अर्पण करनेसे अर्थात् तेरे स्वयंके मेरे अर्पित हो जानेसे अनन्त जन्मोंके जो शुभ-अशुभ कर्मोंके फल हैं, उन सबसे तू मुक्त हो जायगा । वे कर्म-फल तेरेको जन्म-मरण देनेवाले नहीं होंगे ।

यहाँ शुभ और अशुभ-कर्मोंसे अनन्त जन्मोंके किये हुए संचित शुभ-अशुभ कर्म लेने चाहिये । कारण कि भक्त वर्तमानमें भगवदाज्ञाके अनुसार किये हुए कर्म ही भगवान्के अर्पण करता है। भगवदाज्ञाके अनुसार किये हुए कर्म शुभ ही होते हैं, अशुभ होते ही नहीं । हाँ, अगर किसी रीतिसे, किसी परिस्थितिके कारण, किसी पूर्वाभ्यासके प्रवाहके कारण भक्तके द्वारा कदाचित् किञ्चिन्मात्र भी कोई आनुषङ्गिक अशुभ-कर्म बन जाय, तो उसके हृदयमें विराजमान भगवान् उस अशुभ-कर्मको नष्ट कर देते हैं* ।

* स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । ५ । ४२)

'जो भगवत्प्रेमी भक्त अन्य भावोंका त्याग करके, अनन्यभावसे अपने प्रियतम प्रभुके चरणोंका भजन करता है, उससे यदि कभी किसी प्रकारसे पापकर्म भी बन जायँ, तो भी हृदयमें विराजित परमपुरुष भगवान् श्रीहरि उन सबको नष्ट कर देते है ।'

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जितने भी कर्म किये जाते हैं, वे सभी बाह्य होते हैं अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदिके द्वारा ही होते हैं। इस वास्ते उन शुभ और अशुभ कर्मोंका अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिके रूपमें जो फल आता है, वह भी बाह्य ही होता है। मनुष्य भूलसे उन परिस्थितियोंके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर सुखी-दुःखी होता रहता है। यह सुखी-दुःखी होना ही कर्मबन्धन है और इसीसे वह जन्मता-मरता रहता है। परन्तु भक्तकी दृष्टि अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों पर न रहकर भगवान्‌की कृपापर रहती है अर्थात् भक्त उनको भगवान्‌का विधान ही मानता है, कर्मोंका फल मानता ही नहीं। इस वास्ते वह अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

'संन्यासयोगयुक्तात्मा'—सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करनेका नाम 'संन्यासयोग' है। इस संन्यासयोग अर्थात् समर्पणयोगसे युक्त होनेवालेको यहाँ 'संन्यासयोगयुक्तात्मा' कहा गया है। ऐसे तो गीतामें बहुत जगह 'संन्यास' शब्द सांख्ययोगका वाचक आता है, पर इसका प्रयोग भक्तिमें भी होता है; जैसे—'मयि संन्यस्य' (१८।५७)

जैसे सांख्ययोगी सम्पूर्ण कर्मोंको मनसे नवद्वारवाले शरीरमें रखकर स्वयं सुखपूर्वक अपने स्वरूपमें स्थित रहता है*, ऐसे ही भक्त कर्मोंके साथ अपने माने हुए सम्बन्धको भगवान्‌में रख देता है तात्पर्य यह हुआ कि जैसे कोई सज्जन अपनी धरोहरको कहीं रख देता है, ऐसे ही भक्त अपनेसहित अनन्त जन्मोंके संचित कर्मोंको,

* सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥ (गीता ५।१३)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उनके फलोंको और उनके सम्बन्धको भगवान्‌में रख देता है। इस वास्ते इसको 'संन्यासयोग' कहा गया है।

'विमुक्तो मामुपैष्यसि'—पूर्वश्लोकमें 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्' कहकर अर्पण करनेकी आज्ञा दी। यहाँ कहते हैं कि 'इस प्रकार अर्पण करनेसे तू शुभ-अशुभ कर्मफलोंसे मुक्त हो जायगा। शुभ-अशुभ कर्मफलोंसे मुक्त होनेपर तू मेरेको प्राप्त हो जायगा। तात्पर्य यह हुआ कि सम्पूर्ण कर्मफलोंसे मुक्त होना तो प्रेम-प्राप्तिका साधन है और भगवान्‌की प्राप्ति होना प्रेमकी प्राप्ति होना है।

विशेष बात

वास्तवमें शुभ* और अशुभ-कर्मोंका बन्धन क्या है?

शुभ अथवा अशुभ किसी भी कर्मको किया जाय, उस कर्मका आरम्भ और अन्त होता है। ऐसे ही उन कर्मोंके फलरूपमें जो परिस्थिति आती है, उसका भी संयोग और वियोग होता है। तात्पर्य यह हुआ कि जब कर्म और उनके फल निरन्तर नहीं रहते तो फिर उनके साथ सम्बन्ध निरन्तर कैसे रह सकता है? परन्तु जब कर्ता कर्म (करनेवाला) कर्मोंके साथ अपनापन कर लेता है, तो उसका फलके साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। यद्यपि कर्म और फलके साथ सम्बन्ध कभी रह नहीं सकता, तथापि कर्ता उस सम्बन्धको अपनेमें मान लेता है। कर्ता

*जैसे अशुभ कर्म बन्धनकारक हैं, ऐसे ही शुभ-कर्म भी बन्धनकारक हैं। जैसे, बेड़ी लोहेकी हो चाहे सोनेकी, पर बन्धन दोनोंसे ही होता है। शुभ-कर्म भी जन्मारम्भके होनेसे बन्धनकारक होता है और अशुभ-कर्म तो जबरदस्ती बन्धनकारक होता ही है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

स्वयं नित्य है, इस वास्ते उस सम्बन्धको अपनेमें स्वीकार करनेसे वह सम्बन्ध भी नित्य प्रतीत होने लगता है।

कर्ता शुभ-कर्मोंका फल चाहता है, जो कि अनुकूल परिस्थितिके रूपमें सामने आता है। उस परिस्थितिमें यह सुख मानता है। जबतक इस सुखकी चाहना रहती है, तबतक वह दुःखसे कभी बच नहीं सकता। कारण कि सुखके आदिमें और अन्तमें दुःख ही रहता है तथा सुखसे भी प्रतिक्षण स्वाभाविक वियोग होता रहता है। जिसके वियोगको यह प्राणी नहीं चाहता, उसका वियोग तो हो ही जाता है, यह नियम है। तात्पर्य यह हुआ, सुखकी इच्छाको यह नही छोड़ता और दुःख इसको नहीं छोड़ता।

जीव जब अपने-आपको प्रभुके समर्पित कर देता है, तो (साक्षात् परमात्माका ही अंश होनेसे) इसकी परमात्माके साथ स्वतः अभिन्नता हो जाती है; और शरीरके साथ भूलसे माना हुआ सम्बन्ध मिट जाता है। यह परमात्माके साथ अभिन्न तो पहले से ही था। केवल अपने लिये कर्म करनेसे इस अभिन्नताका अनुभव नहीं होता था। अब अपनेसहित कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करनेसे उसकी अपने लिये कर्म करनेकी मान्यता मिट जाती है, तो उसको स्वाभाविक प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। इसीको भगवान्‌ने यहाँ 'विमुक्तो मामुपैष्यसि' कहा है।

जब यह जीव अपने-आपको भगवान्‌के समर्पित कर देता है तो फिर उसके सामने जो कुछ अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति आती

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

है, वह सब दया और कृपाके रूपमें परिणत हो जाती है। तात्पर्य है कि जब इसके सामने अनुकूल परिस्थिति आती है, तो वह उसमें भगवान्‌की 'दया' को मानता है, और जब प्रतिकूल परिस्थिति आती है, तो वह उसमें भगवान्‌की 'कृपा' को मानता है। दया और कृपामें भेद यह है कि कभी भगवान् प्यार, स्नेह करके जीवको कर्म-बन्धनसे मुक्त करते हैं—यह 'दया' है और कभी शासन करके, ताड़ना करके उसके पापोंका नाश करते हैं—यह 'कृपा' है। इस प्रकार दया और कृपा करके भगवान् भक्तको सबल, सहिष्णु बनाते हैं। परन्तु भक्त तो दोनोंमें ही प्रसन्न रहता है। कारण कि उसकी दृष्टि अनुकूलता-प्रतिकूलताकी तरफ न रहकर केवल भगवान्‌की तरफ ही रहता है। इस वास्ते उसकी दृष्टिमें भगवान्‌की दया और कृपा दो रूपसे नहीं होती, प्रत्युत एक ही रूपसे होती है। जैसे कि कहा है—

लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथार्भके।
तद्वदेव महेशस्य नियन्तुर्गुणदोषयोः॥

'जिस प्रकार बालकका पालन करने और ताड़ना करने—दोनोंमें माँकी कहीं अकृपा नहीं होती, उसी प्रकार जीवोंके गुण-दोषोंका नियन्त्रण करनेवाले परमेश्वरकी कहीं किसीपर अकृपा नहीं होती।'

सम्बन्ध—

अब एक शंका होती है कि जो भगवान्‌के समर्पित होते हैं, उनको तो भगवान् मुक्त कर देते हैं और जो भगवान्‌के समर्पित नहीं होते, उनको भगवान् मुक्त नहीं करते—इसमें तो भगवान्‌की दयालुता

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

और समता नहीं हुई, प्रत्युत विषम-दृष्टि और पक्षपात हुआ ? इसपर अगला श्लोक कहते हैं।

श्लोक—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

अर्थ—

मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हूँ। उन प्राणियोंमें न तो कोई मेरा द्वेषी है और न कोई प्रिय है। परन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मेरेमें हैं और मैं उनमें हूँ।*

व्याख्या—

'समोऽहं सर्वभूतेषु'—मैं स्थावर-जंगम आदि सम्पूर्ण प्राणियोंमें व्यापकरूपसे और कृपादृष्टिसे सम हूँ। तात्पर्य है कि मैं सबमें समानरूपसे व्यापक, परिपूर्ण हूँ—**'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना'** (गीता ९ । ४), और मेरी सबपर समानरूपसे कृपादृष्टि है—**'सुहृदं सर्वभूतानाम्'** (गीता ५ । २९)

मैं कहीं कम हूँ और कहीं अधिक हूँ अर्थात् चींटीके छोटी होनेसे उसमें कम हूँ और हाथीके बड़े होनेसे उसमें अधिक हूँ; अन्त्यजमें कम हूँ और ब्राह्मणमें अधिक हूँ; जो मेरे प्रतिकूल चलते हैं, उनमें मैं कम हूँ और जो मेरे अनुकूल चलते हैं, उनमें मैं अधिक हूँ—यह बात है ही नहीं। कारण कि सब-के-सब प्राणी मेरे अंश हैं, मेरे स्वरूप हैं। मेरे स्वरूप होनेसे वे मेरेसे कभी अलग

* इस श्लोकके दो विभाग हैं—पूर्वार्धमें तो भजन न करनेवालोंका वर्णन है और उत्तरार्धमें भजन करनेवालोंका वर्णन है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

नहीं हो सकते और मैं भी उनसे कभी अलग नहीं हो सकता। इस वास्ते मैं सबमें समान हूँ, मेरा कहीं कोई पक्षपात नहीं है। तात्पर्य यह हुआ कि प्राणियोंमें जन्मसे, कर्मसे, परिस्थितिसे, घटनासे, संयोगसे, वियोगसे आदि अनेक तरहसे विषमता होनेपर भी मैं सर्वथा सर्वदा सबमें समान रीतिसे व्यापक हूँ, कहीं कम और कहीं ज्यादा नहीं हूँ।

'न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः'* —पहले भगवान्‌ने कहा कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हूँ, अब उसीका विवेचन करते हुए कहते हैं कि कोई भी प्राणी मेरे राग-द्वेषका विषय नहीं है। तात्पर्य है कि मेरेसे विमुख हो करके कोई प्राणी शास्त्रीय यज्ञ, दान आदि कितने ही शुभकर्म करे, तो भी वह मेरे 'राग' का विषय नहीं है और दूसरा शास्त्रनिषिद्ध अन्याय, अत्याचार आदि कितने ही अशुभ-कर्म करे, तो भी वह मेरे 'द्वेष' का विषय नहीं है। कारण कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान रीतिसे व्याप्त हूँ, सबपर मेरी समान रीतिसे कृपा है और सब प्राणी मेरे अंश होनेसे मेरेको समान रीति-से प्यारे हैं। हाँ, यह बात जरूर है कि जो सकामभावपूर्वक शुभ-कर्म करेगा, वह ऊँची गतिमें जायगा और जो अशुभ-कर्म

* यहाँ 'प्रिय' शब्दको रागका ही वाचक मानना चाहिये; क्योंकि प्राणिमात्रपर भगवान्‌की समान रीतिसे प्रियता है—'सब मम प्रिय सब मम उपजाए' (मानस ७ । ८५ । २); अतः भगवान् इसका निषेध कैसे कर सकते हैं ! दूसरी बात, 'द्वेष्य' शब्दके साथ 'राग' शब्द ही ठीक बैठ सकता है, क्योंकि राग और द्वेष—यह द्वन्द्व है। इसी द्वन्द्वका यहाँ निषेध किया गया है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करेगा, वह नीची गतिमें अर्थात् नरकों तथा चौरासी लाख योनियोंमें जायगा। परन्तु वे दोनों पुण्यात्मा और पापात्मा होनेपर भी मेरे राग-द्वेषके विषय नहीं हैं।

मेरे रचे हुए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये भौतिक पदार्थ भी प्राणियोंके अच्छे-बुरे आचरणों तथा भावोंको लेकर उनको रहनेका स्थान देनेमें, उनकी प्यास बुझानेमें, उनको प्रकाश देनेमें, उनको प्राणवायु देनेमें और उनको चलने-फिरनेके लिये अवकाश देनेमें राग-द्वेषपूर्वक विषमता नहीं करते, प्रत्युत सबको समान रीतिसे देते हैं। फिर प्राणी अपने अच्छे-बुरे आचरणोंको लेकर मेरे राग-द्वेषके विषय कैसे बन सकते हैं? अर्थात् नहीं बन सकते। कारण कि वे साक्षात् मेरे ही अंश हैं, मेरे ही स्वरूप हैं।

जैसे, किसी व्यक्तिके एक हाथमें पीड़ा हो रही है, वह हाथ शरीरके किसी काममें नहीं आता, दर्द होनेसे रातमें नींद नहीं लेने देता, काम करनेमें बाधा डालता है और दूसरा हाथ सब प्रकारसे शरीरके काम आता है। परन्तु उसका किसी हाथके प्रति राग-द्वेष नहीं होता कि यह तो अच्छा है और यह मन्दा है; क्योंकि दोनों ही हाथ उसके अङ्ग हैं और यह कायदा है कि अपने अङ्गके प्रति किसीके राग-द्वेष नहीं होते। ऐसे ही कोई मेरे वचनों, सिद्धान्तोंके अनुसार चलनेवाला हो, पुण्यात्मा-से-पुण्यात्मा हो और दूसरा कोई मेरे वचनों, सिद्धान्तोंका खण्डन करनेवाला हो, मेरे विरुद्ध चलनेवाला हो, पापी-से-पापी हो, तो

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उन दोनोंको लेकर मेरे राग-द्वेष नहीं होते। उनके अपने-अपने बर्तावों-में, आचरणोंमें भेद है, इस वास्ते उनके परिणाम-(फल-) में भेद होगा, पर मेरा किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं है। अगर किसीके प्रति राग-द्वेष होता; तो 'समोऽहं सर्वभूतेषु' यह कहना ही नहीं बनता; क्योंकि विषमताके कारण ही राग-द्वेष होते हैं।

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्'—परन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं अर्थात् जिनकी संसारमें आसक्ति, राग, खिंचाव नहीं है, जो केवल मेरेको ही अपना मानते हैं, केवल मेरे ही परायण रहते हैं, केवल मेरी प्रसन्नताके लिये ही रात-दिन काम करते हैं और जो शरीर, इन्द्रियाँ, मन, वाणीके द्वारा मेरी तरफ ही चलते हैं*, वे मेरेमें हैं और मैं उनमें हूँ।

प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले मेरेमें हैं और मैं उनमें हूँ—इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो सामान्य जीव हैं तथा मेरी आज्ञाके विरुद्ध चलनेवाले हैं, वे मेरेमें और मैं उनमें नहीं हूँ, प्रत्युत वे अपनेको मेरेमें मानते ही नहीं। वे ऐसा कह देते हैं कि हम तो संसारी जीव हैं, संसारमें रहनेवाले हैं! वे यह नहीं समझते कि संसार, शरीर तो कभी एकरूप, एकरस रहता ही नहीं, तो ऐसे संसार, शरीरमें हम कैसे स्थित रह सकते हैं? इसको न जाननेके कारण

* सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥
(गीता ९। १४)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
(गीता १०। ९)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ही वे अपनेको संसार, शरीरमें स्थित मानते हैं! उनकी अपेक्षा जो रात-दिन मेरे भजन-स्मरणमें लगे हुए हैं, बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, सब देशमें, सब कालमें, सब वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, क्रिया आदिमें और अपने-आपमें भी मेरेको ही मानते हैं। इस वास्ते वे मेरेमें विशेषरूपसे हैं और मैं उनमें विशेषरूपसे हूँ।

दूसरा भाव यह है कि जो मेरे साथ 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं' ऐसा सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, तो मेरे साथ उनकी इतनी घनिष्ठता हो जाती है कि मैं और वे एक हो जाते हैं— **'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'**—(नारदभक्तिसूत्र ४१)। इस वास्ते वे मेरेमें और मैं उनमें हूँ—इसका अनुभव करते हैं।

तीसरा भाव यह है कि उनमें 'मैं'-पन नहीं रहता; क्योंकि 'मैं'-पन एक परिच्छिन्नता है। इस परिच्छिन्नता (एकदेशीयता)-के मिटनेसे वे मेरेमें ही रहते हैं।

अब कोई भगवान्‌से कहे कि आप भक्तोंमें विशेषतासे प्रकट हो जाते हो और दूसरोंमें कमरूपसे प्रकट होते हो—यह आपकी विषमता क्यों? तो भगवान् कहते हैं कि 'भैया! मेरेमें यह विषमता तो भक्तोंके कारण है। अगर कोई मेरा भजन करे, मेरे परायण हो जाय, शरण हो जाय और मैं उससे विशेष प्रेम न करूँ, उनमें विशेषतासे प्रकट न होऊँ; तो यह मेरी विषमता हो जायगी। कारण कि भजन करनेवाले और भजन न करनेवाले—दोनोंमें मैं बराबर ही रहूँ, तो यह न्याय नहीं होगा; प्रत्युत मेरी विषमता होगी। इससे भक्तोंके भजनका और उनका मेरी तरफ लगनेका कोई मूल्य ही नहीं रहेगा। यह विषमता मेरेमें न आ जाय, इस वास्ते जो

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिस प्रकार मेरा भजन करता है, मैं भी उसी प्रकार उसका भजन करता हूँ—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (गीता ४ । ११) । अतः यह विषमता मेरेमें भक्तोंके भावोंको लेकर ही है * ।

जैसे—कोई पुत्र अच्छा काम करता है तो सुपुत्र कहलाता है और खराब काम करता है तो कुपुत्र कहलाता है । यह सुपुत्र-कुपुत्रका भेद तो उनके आचरणोंके कारण हुआ है । माँ-बापके पुत्रभावमें कोई फरक नहीं पड़ता । गायके थनोंमें चींचड़ रहते हैं, वे दूध न पीकर खून पीते हैं, तो यह विषमता गायकी नहीं है, प्रत्युत चींचड़ोंकी अपनी बनायी हुई है । बिजलीके द्वारा कहीं बर्फ जम जाती है और कहीं आग पैदा हो जाती है, तो यह विषमता बिजलीकी नहीं है, प्रत्युत यन्त्रोंकी है । ऐसे ही जो भगवान्‌में रहते हुए भी भगवान्‌को नहीं मानते, उनका भजन नहीं करते, तो यह विषमता उन प्राणियोंकी ही है, भगवान्‌की नहीं । जैसे लकड़ीका टुकड़ा, काँचका टुकड़ा और आतसी शीशा—इन तीनोंमें सूर्यकी कोई विषमता नहीं है; परन्तु सूर्यके सामने

---

* तदपि करहिं सम बिषम बिहारा ।
भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
(मानस २ । २१८ । ३)

केवल भगवान्‌में ही नहीं, प्रत्युत जीवन्मुक्त श्रेष्ठ महापुरुषोंमें भी सामनेवालेके गुणों, भावों, आचरणों आदिको लेकर पक्षपात हो जाता है—

वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः ॥
(किराता० ३ । १२)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

(धूपमें) रखनेपर लकड़ीका टुकड़ा सूर्यकी किरणोंको रोक देता है, काँचका टुकड़ा किरणोंको नहीं रोकता और आतसी शीशा किरणों-को एक जगह केन्द्रित करके अग्नि प्रकट कर देता है अर्थात् यह विषमता सामने आनेवाले पदार्थोंकी है, सूर्यकी नहीं। सूर्यकी किरणें तो सबपर एक समान ही पड़ती हैं। वे पदार्थ उन किरणोंको जितनी पकड़ लेते हैं, उतनी ही वे किरणें उनमें प्रकट हो जाती हैं। ऐसे ही भगवान् सब प्राणियोंमें समानरूपसे व्यापक हैं, परिपूर्ण हैं। जो प्राणी भगवान्‌के सम्मुख हो जाते हैं, भगवान्‌का और भगवान्‌की कृपाका प्राकट्य उनमें विशेषतासे हो जाता है। उनकी भगवान्‌में जितनी अधिक प्रियता होती है, भगवान्‌की भी उतनी ही अधिक प्रियता प्रकट हो जाती है। वे अपने-आपको भगवान्‌को दे देते हैं, तो भगवान् भी अपने-आपको उनको दे देते हैं। इस प्रकार भक्तोंके भावोंके अनुसार ही भगवान्‌की विशेष कृपा, प्रियता आदि प्रकट होती है।

तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य सांसारिक रागके कारण ही अपनेको संसारमें मानते हैं। जब वे भगवान्‌का प्रेमपूर्वक भजन करने लग जाते हैं, तो उनका सांसारिक राग मिट जाता है और वे अपनी दृष्टिसे भगवान्‌में हो जाते हैं और भगवान् उनमें हो जाते हैं। भगवान्‌की दृष्टिसे तो वे वास्तवमें भगवान्‌में ही थे और भगवान् भी उनमें थे। केवल रागके कारण वे अपनेको भगवान्‌में और भगवान्‌को अपनेमें नहीं मानते थे।

भगवान्‌ने यहाँ 'ये भजन्ति' पदोंमें 'ये' सर्वनाम पद दिया है, जिसका तात्पर्य है कि मनुष्य किसी भी देशके हों, किसी भी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

देशमें हों, किसी भी अवस्थाके हों, किसी भी सम्प्रदायके हों, किसी भी वर्णके हों, किसी भी आश्रमके हों, कैसी ही योग्यतावाले हों, वे अगर भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं, तो वे मेरेमें और मैं उनमें हूँ। अगर भगवान् यहाँ किसी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, जाति आदिको लेकर कहते, तब तो भगवान‌में विषमता, पक्षपातका होना सिद्ध हो जाता। परन्तु भगवान्‌ने 'ये' पदसे सबको भजन करनेकी और 'मैं भगवान्‌में हूँ और भगवान् मेरेमें हैं'—इसका अनुभव करनेकी पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है।

सम्बन्ध—

पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने 'ये भजन्ति तु मां भक्त्या' पदोंसे भक्तिपूर्वक अपना भजन करनेकी बात कही। अब अगले श्लोकसे भजन करनेवालोंका विवेचन आरम्भ करते हैं।

श्लोक—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥

अर्थ—

अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भजन करता है, तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।

व्याख्या—

[कोई करोड़पति या अरबपति यह बात कह दे कि मेरे पास जो कोई आयेगा, उसको मैं एक लाख रुपये दूँगा, तो उसके इस वचनकी परीक्षा तब होगी, जब उससे सर्वथा ही विरुद्ध

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

चलनेवाला, उसके साथ वैर रखनेवाला, उसका अनिष्ट करनेवाला भी आकर उससे एक लाख रुपये माँगे और वह उसको दे दे। इससे सबको यह विश्वास हो जायगा कि यह जो माँगे, उसको दे देता है। इसी भावको लेकर भगवान् सबसे पहले दुराचारीका नाम लेते हैं।]

'अपि चेत्'— सातवें अध्यायमें आया है कि जो पापी होते हैं, वे मेरे शरण नहीं होते (७। १५) और यहाँ कहा है कि दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भजन करता है—इन दोनों बातोंमें आपसमें विरोध प्रतीत होता है। इस विरोधको दूर करनेके लिये ही यहाँ 'अपि' और 'चेत्' ये दो पद दिये हैं। तात्पर्य है कि सातवें अध्यायमें 'दुष्कृती पुरुष मेरे शरण नहीं होते' ऐसा कहकर उनके स्वभावका वर्णन किया है। परन्तु वे भी किसी कारणसे मेरे भजनमें लगना चाहें तो लग सकते हैं। मेरी तरफसे किसीको कोई मना नहीं है*; क्योंकि किसी भी प्राणीके प्रति मेरा द्वेष नहीं है। ये भाव द्योतन करनेके लिये ही यहाँ 'अपि' और 'चेत्' पदोंका प्रयोग किया है।

'सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्'—जो सुष्ठु दुराचारी है, साङ्गोपाङ्ग दुराचारी है अर्थात् दुराचार करनेमें कोई कमी न रहे, दुराचारका अङ्ग-उपाङ्ग न छूटे—ऐसा दुराचारी है, वह भी

---

* कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
(मानस ५। ४३। १)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अनन्यभाक् होकर मेरे भजनमें लग जाय तो उसका उद्धार हो जाता है ।

यहाँ 'भजते' क्रिया वर्तमानकी है, जिसका कर्ता है—साङ्गोपाङ्ग दुराचारी। इसका तात्पर्य हुआ कि पहले भी उसके द्वारा दुराचार बनते आये हैं और अभी वर्तमानमें वह अनन्यभावसे भजन करता है, तो भी उसके द्वारा दुराचार सर्वथा नहीं छूटे हैं अर्थात् कभी-कभी किसी परिस्थितिमें आकर पूर्वसंस्कारवश उसके द्वारा पाप-क्रिया हो सकती है। ऐसी अवस्थामें भी वह मेरा भजन करता है। कारण कि उसका ध्येय (लक्ष्य) अन्यका नहीं रहा है। अर्थात् उसका लक्ष्य अब धन-सम्पत्ति, आदर-सत्कार, सुख-आराम आदि प्राप्त करनेका नहीं रहा है। उसका एकमात्र लक्ष्य अनन्यभावसे मेरेमें लगनेका ही है।

अब यहाँ शङ्का यह होती है कि ऐसा दुराचारी अनन्यभावसे भगवान्‌के भजनमें कैसे लगेगा? उसके लगनेमें कई कारण हो सकते हैं; जैसे—

(१) वह किसी आफतमें पड़ जाय और उसको कहीं किञ्चिन्मात्र भी कोई सहारा न मिले। ऐसी अवस्थामें अचानक सुनी हुई बात उसको याद आ जाय कि 'भगवान् सबके सहायक हैं और उनकी शरणमें जानेसे सब काम ठीक हो जाता है' आदि।

(२) वह कभी किसी ऐसे वायुमण्डलमें चला जाय, जहाँ बड़े-बड़े अच्छे सन्त-महापुरुष हुए हैं और वर्तमानमें भी हैं, तो उनके प्रभावसे भगवान्‌में रुचि पैदा हो जाय।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(३) वाल्मीकि, अजामिल, सदन कसाई आदि पापी भी भगवान्‌के भक्त बन चुके हैं और भजनके प्रभावसे उनमें विलक्षणता आयी है—ऐसी कोई कथा सुन करके पूर्वका कोई अच्छा संस्कार जाग उठे, जो कि सम्पूर्ण प्राणियोंमें रहता है* ।

(४) कोई प्राणी ऐसी आफतमें आ गया, जहाँ उसके बचनेकी कोई सम्भावना ही नहीं थी, पर वह बच गया । ऐसी घटनाविशेषको देखनेसे उसके भीतर यह भाव पैदा हो जाय कि कोई ऐसी विलक्षण शक्ति है, जो ऐसी आफतसे बचाती है । वह विलक्षण शक्ति भगवान् ही हो सकते हैं; इस वास्ते अपनेको भी उनके परायण हो जाना चाहिये ।

(५) उसको किसी सन्तके दर्शन हो जायँ और उसका पतन करनेवाले दुष्कर्मोंको देखकर उसपर सन्तकी कृपा हो जाय; जैसे-वाल्मीकि, अजामिल आदि पापियोंपर सन्तोंकी कृपा हुई ।

—ऐसे कई कारणोंसे अगर दुराचारीका भाव बदल जाय, तो वह भगवान्‌के भजनमें अर्थात् भगवान्‌की तरफ लग सकता है । चोर, डाकू, लुटेरे, हत्या करनेवाले बधिक आदि भी अचानक भाव बदल जानेसे भगवान्‌के अच्छे भक्त हुए हैं—ऐसी कई कथाएँ पुराणोंमें तथा भक्तमाल आदि ग्रन्थोंमें आती हैं ।

अब एक शङ्का होती है कि जो वर्षोंसे भजन-ध्यान कर रहे हैं, उनका मन भी तत्परतासे भगवान्‌में नहीं लगता, तो जो दुराचारी-

* सुमति कुमति सब कें उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
(मानस ५ । ३९ । ३)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

से-दुराचारी है, उसका मन भगवान्‌में तैलधारावत् कैसे लगेगा? यहाँ 'अनन्यभाक्' का अर्थ 'वह तैलधारावत् चिन्तन करता है' यह नहीं है, प्रत्युत इसका अर्थ है—'न अन्यं भजति' अर्थात् वह अन्यका भजन नहीं करता। उसका भगवान्‌के सिवाय अन्य किसी-का सहारा, आश्रय नहीं है, केवल भगवान्‌का ही आश्रय है। जैसे पतिव्रता स्त्री केवल पतिका चिन्तन ही करती हो—ऐसी बात नहीं है। वह तो हरदम पतिकी ही बनी रहती है, स्वप्नमें भी वह औरोंकी नहीं होती। तात्पर्य है कि उसका तो एक पतिसे ही अपनापन रहता है। ऐसे ही उस दुराचारीका केवल भगवान्‌में ही अपनापन हो जाता है* और एक भगवान्‌का ही आश्रय रहता है†।

'अनन्यभाक्' होनेमें खास बात है—'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं' इस प्रकार अपनी अहंताको बदल देना। अहंता-परिवर्तनसे जितनी जल्दी शुद्धि आती है, जप, तप, यज्ञ, दान आदि क्रियाओंसे उतनी जल्दी शुद्धि नहीं आती। इस अहंताके परिवर्तनके विषयमें तीन बातें हैं—

(१) अहंताको मिटाना—ज्ञानयोगसे अहंता मिट जाती है। जिस प्रकाशमें 'अहम्' (मैं-पन) का भान होता है, वह प्रकाश मेरा स्वरूप है; और एकदेशीयरूपमें प्रतीत होनेवाला 'अहम्' मेरा

* बिगरी जनम अनेक की सुधरे अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥ (दोहावली २२)

† एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसी दास॥ (दोहावली २७७)

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

स्वरूप नहीं है। कारण यह है कि 'अहम्' दृश्य है और जो दृश्य होता है, वह अपना स्वरूप नहीं होता। इस प्रकार दोनोंका विभाजन करके अपने ज्ञप्तिमात्र स्वरूपमें स्थित होनेसे 'अहंता' मिट जाती है।

(२) अहंताको शुद्ध करना—कर्मयोगसे अहंता शुद्ध हो जाती है। जैसे, पुत्र कहता है कि 'मैं पुत्र हूँ और ये मेरे पिता हैं' तो इसका तात्पर्य है कि पिताकी सेवा करनामात्र मेरा कर्तव्य है; क्योंकि पिता-पुत्रका सम्बन्ध केवल कर्तव्य-पालनके लिये ही है। पिता मेरेको पुत्र न मानें, मेरेको दुःख दें, मेरा अहित करें, तो भी मेरेको उनकी सेवा करनी है, उनको सुख पहुँचाना है। ऐसे ही माता, भाई, भौजाई, स्त्री, पुत्र, परिवारके प्रति भी मेरेको केवल अपने कर्तव्यका ही पालन करना है। उनके कर्तव्यकी तरफ मेरेको देखना ही नहीं है कि वे मेरे प्रति क्या करते हैं, दुनियाके प्रति क्या करते हैं। उनके कर्तव्यको देखना मेरा कर्तव्य नहीं है; क्योंकि दूसरोंके कर्तव्यको देखनेवाला स्वयं अपने कर्तव्यसे च्युत हो जाता है। इस वास्ते उनका तो मेरेपर पूरा अधिकार है, पर वे मेरे अनुकूल चलें—ऐसा मेरा किसीपर भी अधिकार नहीं है। इस प्रकार दूसरोंका कर्तव्य न देखकर केवल अपना कर्तव्य-पालन करनेसे अहंता शुद्ध हो जाती है। कारण कि अपने सुख-आरामकी कामना होनेसे ही अहंता अशुद्ध होती है।

(३) अहंताका परिवर्तन करना—भक्तियोगसे अहंता बदल जाती है। जैसे, विवाहमें पतिके साथ सम्बन्ध होते ही कन्याको

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अहंता बदल जाती है और वह पतिके घरको ही अपना घर, पतिके धर्मको ही अपना धर्म मानने लग जाती है। वह पतिव्रता अर्थात् एक पतिकी ही हो जाती है, तो फिर वह माता-पिता, सास-ससुर आदि किसीकी भी नहीं होती। इतना ही नहीं, वह अपने पुत्र और पुत्रीकी भी नहीं होती; क्योंकि जब वह सती होती है तो पुत्र-पुत्रीके माता-पिताके स्नेहकी भी परवाह नहीं करती। हाँ, वह पतिके नाते सेवा सबकी कर देती है, पर उसकी अहंता केवल पतिकी ही हो जाती है। ऐसे ही मनुष्यकी अहंता 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं, इस प्रकार भगवान्‌के साथ हो जाती है, तो इसकी अहंता बदल जाती है। इस अहंताके बदलनेको ही यहाँ 'अनन्यभाक्' कहा है।

'साधुरेव स मन्तव्यः'—अब यहाँ एक प्रश्न होता है कि वह पहले भी दुराचारी रहा है और वर्तमानमें भी उसके आचरण सर्वथा शुद्ध नहीं हुए हैं, तो दुराचारोंको लेकर उसको दुराचारी मानना चाहिये या अनन्यभावको लेकर साधु ही मानना चाहिये? तो भगवान् कहते हैं कि उसको तो साधु ही मानना चाहिये। यहाँ 'मन्तव्यः' (मानना चाहिये) विधि वचन है अर्थात् यह भगवान्‌की विशेष आज्ञा है।

माननेकी बात वहीं कही जाती है, जहाँ साधुता नहीं दिखती। अगर उसमें किञ्चिन्मात्र भी दुराचार न होते, तो भगवान् 'उसको साधु ही मानना चाहिये' ऐसा क्यों कहते? तो भगवान्‌के कहनेसे यही सिद्ध होता है कि उसमें अभी दुराचार हैं। वह दुराचारोंसे सर्वथा रहित

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

नहीं हुआ है। इस वास्ते भगवान् कहते हैं कि वह अभी साङ्गोपाङ्ग साधु नहीं हुआ है, तो भी उसको साधु ही मानना चाहिये अर्थात् बाहरसे उसके आचरणोंमें, क्रियाओंमें कोई कमी भी देखनेमें आ जाय, तो भी वह असाधु नहीं है। इसका कारण यह है कि वह 'अनन्यभाक्' हो गया अर्थात् 'मैं केवल भगवान्का ही हूँ और केवल भगवान् ही मेरे हैं; मैं संसारका नहीं हूँ और संसार मेरा नहीं है' इस प्रकार वह भीतरसे ही भगवान्का हो गया, उसने भीतरसे ही अपनी अहंता बदल दी। इस वास्ते अब उसके आचरण सुधरते देरी नहीं लगेगी; क्योंकि अहंताके अनुसार ही सब आचरण होते हैं।

उसको साधु ही मानना चाहिये—ऐसा भगवान्को क्यों कहना पड़ रहा है? कारण कि लोगोंमें यह रीति है कि वे किसीके भीतरी भावोंको न देखकर बाहरसे जैसा आचरण देखते हैं, वैसा ही उसको मान लेते हैं। जैसे, एक आदमी वर्षोंसे परिचित है अर्थात् भजन करता है, अच्छे आचरणोंवाला है—ऐसा बीसों, पचीसों वर्षोंसे जानते हैं। पर एक दिन देखा कि वह रात्रिके समय एक वेश्याके यहाँसे बाहर निकला, तो उसे देखते ही लोगोंके मनमें आता है कि देखो! हम तो इसको बड़ा अच्छा मानते थे, पर यह तो वैसा नहीं है, यह तो वेश्यागामी है! ऐसा विचार आते ही उनका जो अच्छेपनका भाव था, वह उड़ जाता है। जो कई दिनोंकी श्रद्धा-भक्ति थी, वह उठ जाती है। इसी तरहसे लोग वर्षोंसे किसी व्यक्तिको जानते हैं कि वह अन्यायी है, पापी है, दुराचारी है और वही एक

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

दिन गङ्गाके किनारे स्नान किये हुए, हाथमें गोमुखी लिये हुए बैठा है। उसका चेहरा बड़ा प्रसन्न है। उसको देखकर कोई कहता है कि देखो! भगवान्‌का भजन कर रहा है, बड़ा अच्छा पुरुष है, तो दूसरा कहता है कि अरे! तुम इसको जानते नहीं, मैं जानता हूँ यह तो ऐसा-ऐसा है, कुछ नहीं है, केवल पाखण्ड करता है। इस प्रकार भजन करनेपर भी लोग उसको वैसा ही पापी मान लेते हैं और उधर साधन-भजन करनेवालेको भी वेश्याके घरसे निकलता देखकर खराब मान लेते हैं। उसको न जाने किस कारणसे वेश्याने बुलाया था, क्या पता वह दयापरवश होकर वेश्याको शिक्षा देनेके लिये गया हो, उसके सुधारके लिये गया हो—इस तरफ उनकी दृष्टि नहीं जाती। जिनका अन्तःकरण मैला हो, वे मैलापनकी बात करके अपने अन्तःकरणको और मैला कर लेते हैं और उनका अन्तःकरण मैलापनकी बात ही पकड़ता है। परन्तु उपर्युक्त दोनों प्रकारकी बातें होनेपर भी भगवान्‌की दृष्टि मनुष्यके भावपर ही रहती है, आचरणोंपर नहीं—'रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥' (मानस १। २८। ३); क्योंकि भगवान् भावग्राही हैं—'भावग्राही जनार्दनः'।

'सम्यग्व्यवसितो हि सः'—दूसरे अध्यायमें कर्मयोगके प्रकरणमें 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' की बात आयी है (२। ४१) अर्थात् वहाँ पहले बुद्धिमें यह निश्चय होता है कि 'मेरेको राग-द्वेष नहीं करने हैं, कर्तव्य-कर्म करते हुए सिद्धि-असिद्धिमें सम रहना है।' अतः कर्मयोगीकी बुद्धि व्यवसायात्मिका होती है और यहाँ कर्ता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

स्वयं व्यवसित है—'सम्यग्व्यवसितः'। कारण कि 'मैं केवल भगवान्‌का ही हूँ, अब मेरा काम केवल भजन करना ही है'—यह निश्चय स्वयंका है, बुद्धिका नहीं। इस वास्ते सम्यक् निश्चयवालेकी स्थिति भगवान्‌में है। तात्पर्य यह हुआ कि वहाँ निश्चय 'करण' (बुद्धि) में है और यहाँ निश्चय 'कर्ता' (स्वयं) में है। करणमें निश्चय होनेपर भी जब कर्ता परमात्मतत्त्वसे अभिन्न हो जाता है, तो फिर कर्ताके परमात्मासे अभिन्न होनेपर करणमें भी निश्चय हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या!

जहाँ बुद्धिका निश्चय होता है, वहाँ वह निश्चय तबतक एक-रूप नहीं रहता, जबतक स्वयं कर्ता उस निश्चयके साथ मिल नहीं जाता। जैसे; सत्संग-स्वाध्यायके समय मनुष्योंका ऐसा निश्चय होता है कि अब तो हम केवल भजन-स्मरण ही करेंगे। परन्तु यह निश्चय सत्सङ्ग-स्वाध्यायके बाद स्थिर नहीं रहता। इसमें कारण यह है कि उनकी स्वयंकी स्वाभाविक रुचि केवल परमात्माकी तरफ चलनेकी नहीं है, प्रत्युत साथमें संसारका सुख-आराम आदि लेनेकी भी रुचि रहती है। परन्तु जब स्वयंका यह निश्चय हो जाता है कि अब हमें परमात्माकी तरफ ही चलना है, तो फिर यह निश्चय कभी मिटता नहीं; क्योंकि यह निश्चय स्वयंका है।

जैसे, कन्याका विवाह होनेपर 'अब मैं पतिकी हो गयी, अब मेरेको पतिके घरका काम ही करना है' ऐसा निश्चय स्वयंमें हो जानेसे वह कभी मिटता नहीं प्रत्युत बिना याद किये ही हरदम याद रहता है। इसका कारण यह है कि उसने स्वयंको ही पतिका मान लिया।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ऐसे ही जब मनुष्य यह निश्चय कर लेता है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और अब केवल भगवान्‌का ही काम (भजन) करना है, भजनके सिवाय और कोई काम नहीं, किसी कामसे कोई मतलब नहीं, तो यह निश्चय स्वयंका होनेसे सदाके लिये पक्का हो जाता है, फिर कभी मिटता ही नहीं। इस वास्ते भगवान् कहते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये और केवल माननेकी ही बात नहीं, स्वयंका निश्चय होनेसे वह बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जाता है—'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा' (९ । ३१)

भक्तियोगकी दृष्टिसे सम्पूर्ण दुर्गुण-दुराचार भगवान्‌की विमुखतापर ही टिके रहते हैं। जब प्राणी अनन्यभावसे भगवान्‌के सम्मुख हो जाता है, तो सभी दुर्गुण-दुराचार मिट जाते हैं।

सम्बन्ध—

अब आगेके श्लोकमें सम्यक् निश्चयका फल बताते हैं।

श्लोक—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ ३१॥

अर्थ—

वह तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है और निरन्तर रहनेवाली शान्तिको प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन! तुम प्रतिज्ञा करो कि मेरे भक्तका विनाश अर्थात् पतन नहीं होता।

व्याख्या—

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा'—वह तत्काल धर्मात्मा हो जाता है अर्थात् महान् पवित्र हो जाता है। कारण कि यह जीव स्वयं

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परमात्माका अंश है और जब इसका उद्देश्य भी परमात्माकी प्राप्ति करना हो गया तो अब उसके धर्मात्मा होनेमें क्या देरी लगेगी ? अब वह पापात्मा कैसे रहेगा ? क्योंकि वह धर्मात्मा तो स्वतः था ही, केवल संसारके सम्बन्धके कारण उसमें पापात्मापन आया था, जो कि आगन्तुक था। अब जब अहंता बदलनेसे संसारका सम्बन्ध नहीं रहा, तो वह ज्यों-का-त्यों (धर्मात्मा) रह गया।

यह जीव जब पापात्मा नहीं बना था, तब भी पवित्र था और जब पापात्मा बन गया, तब भी वैसा ही पवित्र था। कारण कि परमात्माका अंश होनेसे जीव सदा ही पवित्र है। केवल संसार-के सम्बन्धसे वह पापात्मा बना था, संसारका सम्बन्ध छूटते ही वह ज्यों-का-त्यों पवित्र रह गया।

पाप करनेकी भावना रहते हुए मनुष्य 'मेरेको केवल भगवान्की तरफ ही चलना है'—ऐसा निश्चय नहीं कर सकता, यह बात ठीक है। परन्तु पापी मनुष्य ऐसा निश्चय नहीं कर सकता—यह नियम नहीं है। कारण कि जीवमात्र परमात्माका अंश होनेसे तत्त्वतः निर्दोष है। संसारकी आसक्तिके कारण ही उसमें आगन्तुक दोष आ जाते हैं। यदि उसके मनमें पापोंसे घृणा हो जाय और ऐसा निश्चय हो जाय कि अब भगवान्का ही भजन करना है, तो वह बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जाता है। कारण कि जहाँ संसारकी कामना है, वहाँ ही भगवान्की तरफ चलनेकी रुचि भी है। अगर भगवान्की तरफ चलने-की रुचि जम जाय, तो कामना, आसक्ति नष्ट हो जाती है। फिर भगवत्प्राप्तिमें देरी नहीं लग सकती।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वह बहुत जल्दी धर्मात्मा हो जाता है—इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसमें जो यत्किञ्चित् दुराचार दीखते हैं, वे भी टिकेंगे नहीं। कारण कि सब-के-सब दुराचार टिके हुए हैं—असत्को महत्त्व देनेसे। परन्तु जब वह संसारकी कामनासे रहित होकर केवल भगवान्को ही चाहता है, तो उसके भीतर असत्का महत्त्व न रहकर भगवान्का महत्त्व हो जाता है। भगवान्का महत्त्व होनेसे वह धर्मात्मा हो जाता है।

मार्मिक बात

यह एक सिद्धान्त है कि कर्ताके बदलनेपर क्रियाएँ अपने-आप बदल जाती हैं। जैसे, कोई धर्मरूपी क्रिया करके धर्मात्मा होना चाहता है, तो उसे धर्मात्मा होनेमें देरी लगेगी। परन्तु अगर वह कर्ताको ही बदल दे अर्थात् 'मैं धर्मात्मा हूँ' ऐसे अपनी अहंताको ही बदल दे, तो वह बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जायगा। ऐसे ही दुराचारी-से-दुराचारी भी 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं' ऐसे अपनी अहंताको बदल देता है, तो वह बहुत जल्दी धर्मात्मा हो जाता है, साधु हो जाता है, भक्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब संसार-शरीरके साथ 'मैं' और 'मेरा'-पन करके संयोगजन्य सुख चाहने लगता है, तो वह 'कामात्मा' (गीता २। ४३) बन जाता है और जब संसारसे सर्वथा विमुख होकर भगवान्के साथ अनन्य सम्बन्ध जोड़ लेता है, जो कि वास्तवमें है, तो वह शीघ्र ही 'धर्मात्मा' बन जाता है।

साधारण दृष्टिसे लोग यही समझते हैं कि मनुष्य सत्य बोलनेसे सत्यवादी होता है और चोरी करनेसे चोर होता है। परन्तु वास्तवमें

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ऐसी बात नहीं है ! जब स्वयं सत्यवादी होता है अर्थात् 'मैं सत्य बोलनेवाला हूँ' ऐसी अहंताको अपनेमें पकड़ लेता है, तो वह सत्य बोलता है और सत्य बोलनेसे उसकी सत्यवादिता दृढ़ हो जाती है। ऐसे ही चोर होता है, वह 'मैं चोर हूँ' ऐसी अहंताको पकड़कर ही चोरी करता है और चोरी करनेसे उसका चोरपना दृढ़ हो जाता है। परन्तु जिसकी अहंतामें 'मैं चोर हूँ ही नहीं' ऐसा दृढ़ भाव है, वह चोरी नहीं कर सकता। तात्पर्य यह हुआ कि अहंताके परिवर्तनसे क्रियाओंका परिवर्तन हो जाता है।

इन दोनों दृष्टान्तोंसे यह सिद्ध हुआ कि कर्ता जैसा होता है, उसके द्वारा वैसे ही कर्म होते हैं और जैसे कर्म होते हैं, वैसे ही कर्तापन दृढ़ हो जाता है। ऐसे ही यहाँ दुराचारी भी 'अनन्यभाक्' होकर अर्थात् 'मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् ही मेरे हैं' ऐसे अनन्यभावसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लेता है, तो उसकी अहंतामें 'मैं भगवान्‌का हूँ, संसारका नहीं हूँ' यह भाव दृढ़ हो जाता है, जो कि वास्तवमें सत्य है। इस प्रकार अहंताके बदल जानेपर क्रियाओंमें किञ्चिन्मात्र कमी रहनेपर भी वह बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जाता है।

यहाँ शङ्का हो सकती है कि पूर्वश्लोकमें भगवान् 'सुदुराचारः' कहकर आये हैं, तो फिर यहाँ भगवान्‌ने उसको 'धर्मात्मा' क्यों कहा है ? इसका समाधान है कि दुराचारीके दुराचार मिट जायँ, तो वह सदाचारी अर्थात् धर्मात्मा ही होगा। अतः सदाचारी कहो या धर्मात्मा कहो—एक ही बात है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'शश्वच्छान्तिं निगच्छति'—केवल धार्मिक क्रियाओंसे जो धर्मात्मा बनता है, उसके भीतर भोग और ऐश्वर्यकी कामना होनेसे उसको भोग और ऐश्वर्य तो मिल सकते हैं, पर शाश्वती शान्ति नहीं मिल सकती। दुराचारीकी अहंता बदलनेपर जब वह भगवान्के साथ भीतरसे एक हो जाता है तो उसके भीतर कामना नहीं रह सकती, असत्का महत्त्व नहीं रह सकता। इस वास्ते उसको निरन्तर रहनेवाली शान्ति मिल जाती है।

दूसरा भाव यह है कि स्वयं परमात्माका अंश होनेसे 'चेतन अमल सहज सुखरासी' है। इस वास्ते उसमें अपने स्वरूपकी अनादि अनन्त स्वतःसिद्ध शान्ति है, धर्मात्मा होनेसे अर्थात् भगवान्के साथ अनन्यभावसे सम्बन्ध होनेसे वह शाश्वती शान्ति प्राप्त हो जाती है। केवल संसारके साथ सम्बन्ध माननेसे ही उसका अनुभव नहीं हो रहा था।

'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति'—अठारहवें अध्यायके पैंसठवें श्लोकमें भगवान् स्वयं प्रतिज्ञा करते हैं—'प्रतिजाने प्रियोऽसि मे'। परन्तु यहाँ 'मेरे भक्तका पतन नहीं होता' ऐसी प्रतिज्ञा भगवान् अर्जुनसे करवाते हैं, स्वयं नहीं करते। इसका आशय यह है कि अभी युद्धका आरम्भ होनेवाला है और भगवान्ने पहले ही हाथमें शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञा कर ली है, परन्तु जब आगे भीष्मजी यह प्रतिज्ञा कर लेंगे कि 'जौं हरि हाथ न शस्त्र गहाऊँ, तो लाजौं गङ्गा जननीको शान्तनुसुत न कहाऊँ।' तो उस समय भगवान्की प्रतिज्ञा तो टूट जायगी, पर भक्तकी प्रतिज्ञा नहीं

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

टूटेगो। भगवान्‌ने चौथे अध्यायके तीसरे श्लोकमें 'भक्तोऽसि मे सखा चेति' कहकर अर्जुनको अपना भक्त स्वीकार किया है। इस वास्ते भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि भैया! तू प्रतिज्ञा कर ले, कारण कि तेरे द्वारा प्रतिज्ञा करनेपर अगर मैं खुद भी तेरी प्रतिज्ञा तोड़ना चाहूँगा, तो भी तोड़ नहीं सकूँगा, तो फिर और तोड़ेगा ही कौन? तात्पर्य हुआ कि अगर भक्त प्रतिज्ञा करें, तो उस प्रतिज्ञाके विरुद्ध मेरी प्रतिज्ञा भी नहीं चलेगी।

मेरे भक्तका विनाश अर्थात् पतन नहीं होता—यह कहनेका तात्पर्य है कि जब वह सर्वथा मेरे सम्मुख हो गया है, तो अब उसके पतनकी किञ्चिन्मात्र भी सम्भावना नहीं रही। पतनका कारण तो शरीरके साथ अपना सम्बन्ध मान लेना ही था। उस माने हुए सम्बन्धसे सर्वथा विमुख होकर जब वह अनन्यभावसे मेरे ही सम्मुख हो गया, तो अब उसके पतनकी सम्भावना हो ही कैसे सकती है?

दुराचारी भी जब भक्त हो सकता है, तो फिर भक्त होनेके बाद वह पुनः दुराचारी भी हो सकता है—ऐसा न्याय कहता है। इस न्यायको दूर करनेके लिये भगवान् कहते हैं कि यह न्याय यहाँ नहीं लगता। मेरे यहाँ तो दुराचारी-से-दुराचारी भी भक्त बन सकते हैं, पर भक्त होनेके बाद उनका फिर पतन नहीं हो सकता अर्थात् वे फिर दुराचारी नहीं बन सकते। इस प्रकार भगवान्‌के न्यायमें भी दया भरी हुई है। इस वास्ते भगवान् न्यायकारी और दयालु—दोनों ही सिद्ध होते हैं।

सम्बन्ध—

इस प्रकरणमें भगवान्‌ने अपनी भक्तिके सात अधिकारी

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

बताये हैं। उनमेंसे दुराचारीका वर्णन दो श्लोकोंमें किया। अब आगेके श्लोकमें भक्तिके चार अधिकारियोंका वर्णन करते हैं।

श्लोक—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥३२॥

अर्थ—

हे पृथानन्दन! जो भी पापयोनिवाले हों तथा जो भी स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र हों, वे भी सर्वथा मेरे शरण होकर निःसन्देह परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं।

व्याख्या—

'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ······ यान्ति परां गतिम्'—जिनके इस जन्ममें आचरण खराब हैं अर्थात् जो इस जन्मका पापी है, उसको भगवान्ने तीसवें श्लोकमें 'दुराचारी' कहा है। जिनके पूर्वजन्ममें आचरण खराब थे अर्थात् जो पूर्वजन्मके पापी हैं और अपने पुराने पापोंका फल भोगनेके लिये नीच योनियोंमें पैदा हुए हैं, उनको भगवान्ने यहाँ 'पापयोनि' कहा है।

यहाँ 'पापयोनि' शब्द ऐसा व्यापक है, जिसमें असुर, राक्षस, पशु, पक्षी आदि सभी लिये जा सकते हैं* और ये सभी भगवद्भक्तिके

* केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥
(श्रीमद्भा० ११।१२।८)

'गोपियाँ, गायें, वृक्ष, पशु, नाग तथा इस प्रकारके और भी मूढबुद्धि प्राणियोंने अनन्यभावके द्वारा सिद्ध होकर अनायास ही मेरी प्राप्ति कर ली है।'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अधिकारी माने जाते हैं। शाण्डिल्य ऋषिने कहा है—**अनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्।** (शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र ७८) अर्थात् जैसे दया, क्षमा, उदारता आदि सामान्य धर्मोंके मनुष्यमात्र अधिकारी हैं, ऐसे ही भगवद्भक्तिके नीची-से-नीची योनिसे लेकर ऊँची-से-ऊँची योनितकके प्राणी अधिकारी हैं। इसका कारण यह है कि मात्र जीव भगवान्‌के अंश होनेसे भगवान्‌की तरफ चलनेमें, भगवान्‌की भक्ति करनेमें, भगवान्‌के सम्मुख होनेमें अन-धिकारी नहीं हैं। प्राणियोंकी योग्यता-अयोग्यता आदि तो सांसारिक कार्योंमें है, क्योंकि ये योग्यता आदि बाह्य हैं और मिली हुई हैं तथा बिछुड़नेवाली हैं। इस वास्ते भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़नेमें योग्यता-अयोग्यता कोई कारण नहीं है अर्थात् जिसमें योग्यता है, वह भगवान्‌की तरफ चल सकता है और जिसमें अयोग्यता है, वह भगवान्‌में नहीं लग सकता—यह कोई कारण नहीं है। प्राणी स्वयं भगवान्‌के हैं, इस वास्ते सभी भगवान्‌के सम्मुख हो सकते हैं। तात्पर्य हुआ कि जो हृदयसे भगवान्‌को चाहते हैं, वे सभी भगवद्भक्तिके अधिकारी हैं। ऐसे पापयोनिवाले भी भगवान्‌के शरण होकर परम-गतिको प्राप्त हो जाते हैं, परम पवित्र हो जाते हैं।

लौकिक दृष्टिसे तो आचरण भ्रष्ट होनेसे अपवित्रता मानी जाती है, पर वास्तवमें जो कुछ अपवित्रता आती है, वह सब-की-सब भगवान्‌से विमुख होनेसे ही आती है। जैसे, अङ्गार अग्निसे विमुख होते ही काला कोयला बन जाता है। फिर उस कोयलेको साबुन लगाकर कितना ही धो लें, तो भी उसका कालापन नहीं मिटता।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अगर उसको पुनः अग्निमें रख दिया जाय तो उसका कालापन नहीं रहता और वह चमक उठता है। ऐसे ही भगवान्के अंश इस जीवमें कालापन अर्थात् अपवित्रता भगवान्से विमुख होनेसे ही आती है। अगर यह भगवान्के सम्मुख हो जाय, तो इसकी वह अपवित्रता सर्वथा मिट जाती है और वह महान् पवित्र हो जाता है तथा दुनियामें चमक उठता है। उसमें इतनी पवित्रता आ जाती है कि भगवान् भी उसे अपना मुकुटमणि बना लेते हैं!

जब स्वयं आर्त होकर प्रभुको पुकारता है, तो उस पुकारमें भगवान्-को द्रवित करनेकी जो शक्ति है, वह शक्ति शुद्ध आचरणोंमें नहीं है। जैसे, माँका एक बेटा अच्छा काम करता है तो माँ उससे प्यार करती है; और एक बेटा कुछ भी काम नहीं करता, प्रत्युत आर्त होकर माँको पुकारता है, रोता है, तो फिर माँ यह विचार नहीं करती कि यह तो कुछ भी अच्छा काम नहीं करता, इसको गोदमें कैसे लूँ? वह उसके रोनेको सह नहीं सकती और उठाकर गोदमें ले लेती है। ऐसे ही खराब-से-खराब आचरण करनेवाला, पापी-से-पापी आर्त होकर भगवान्को पुकारता है, रोता है, तो भगवान् उसको अपनी गोदमें ले लेते हैं, उससे प्यार करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्वयंके भगवान्की ओर लगनेपर जब इस जन्मके पाप भी बाधा नहीं दे सकते, तो फिर पुराने पाप बाधा कैसे पहुँचा सकते हैं? कारण कि पुराने पाप-कर्मोंका फल जन्म और भोगरूप प्रतिकूल परिस्थिति है, इस वास्ते वे भगवान्की ओर चलनेमें बाधा नहीं दे सकते।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यहाँ 'स्त्रियः' पद देनेका तात्पर्य है कि किसी भी वर्णकी, किसी भी आश्रमकी, किसी भी देशकी, किसी भी वेशकी कैसी ही स्त्रियाँ क्यों न हों, वे सभी मेरे शरण होकर परम पवित्र बन जाती हैं और परमगतिको प्राप्त होती हैं। जैसे, प्राचीन कालमें देवहूति, शबरी, कुन्ती, द्रौपदी, व्रजगोपियाँ आदि, और अभीके जमानेमें मीरा, करमैती, करमाबाई, फूली-बाई आदि कई स्त्रियाँ भगवान्‌की भक्ता हो गयी हैं। ऐसे ही वैश्योंमें समाधि, तुलाधार आदि, और शूद्रोंमें विदुर, संजय, निषादराज गुह आदि कई भगवान्‌के भक्त हुए हैं। तात्पर्य यह हुआ कि पापयोनि, स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र—ये सभी भगवान्‌का आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त होते हैं।

विशेष बात—

इस श्लोकमें 'पापयोनयः' पद स्वतन्त्ररूपसे आया है। इस पदको स्त्रियों, वैश्यों और शूद्रोंका विशेषण नहीं माना जा सकता; क्योंकि ऐसा माननेपर कई बाधाएँ आती हैं। स्त्रियाँ चारों वर्णोंकी होती हैं। उनमेंसे ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंकी स्त्रियोंको अपने-अपने पतियोंके साथ यज्ञ आदि वैदिक कर्मोंमें बैठनेका अधिकार है। अतः स्त्रियोंको पापयोनि कैसे कह सकते हैं? अर्थात् नहीं कह सकते। चारों वर्णोंमें आते हुए भी भगवान्‌ने स्त्रियोंका नाम अलग-से लिया है। इसका तात्पर्य है कि स्त्रियाँ पतिके साथ ही मेरा आश्रय ले सकती हैं, मेरी तरफ चल सकती हैं—ऐसा कोई भी नियम नहीं है। स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक मेरा आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो जाती हैं। इस वास्ते स्त्रियोंको किसी भी व्यक्तिका मनसे किञ्चिन्मात्र भी आश्रय न लेकर केवल मेरा ही आश्रय लेना चाहिये।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अगर इस 'पापयोनयः' पदको वैश्योंका विशेषण माना जाय, तो यह भी युक्तिसंगत नहीं बैठता। कारण कि श्रुतिके अनुसार वैश्योंको पापयोनि नहीं माना जा सकता*। वैश्योंको तो वेदोंके पढ़नेका और यज्ञ आदि वैदिक कर्मोंके करनेका पूरा अधिकार दिया गया है।

अगर इस 'पापयोनयः' पदको शूद्रोंका विशेषण माना जाय, तो यह भी युक्तिसंगत नहीं बैठता; क्योंकि शूद्र तो चारों वर्णोंमें आ जाते हैं। इस वास्ते चारों वर्णोंके अतिरिक्त अर्थात् शूद्रोंकी अपेक्षा भी जो हीन जातिवाले यवन, हूण, खस आदि मनुष्य हैं, उन्हींको 'पापयोनयः' पदके अन्तर्गत लेना चाहिये।

जैसे माँकी गोद जानेमें किसी भी बच्चेके लिये मनाही नहीं है; क्योंकि वे बच्चे माँके ही हैं। ऐसे ही भगवान्का अंश होनेसे प्राणिमात्रके लिये भगवान्की तरफ चलनेमें (भगवान्की ओरसे) कोई मनाही नहीं है। पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदिमें भगवान्की तरफ चलनेकी समझ, योग्यता नहीं है, फिर भी पूर्वजन्मके संस्कारसे या

---

*'तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥ (छान्दोग्य० ५। १०। ७)

अर्थात् जो अच्छे आचरणोंवाले हैं, उनका जन्म तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें होता है, परन्तु जो नीच आचरणोंवाले हैं, वे कुत्ते, सूकर तथा चाण्डालयोनिमें जन्म लेते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अन्य किसी कारणसे वे भगवान्‌के सम्मुख हो सकते हैं। इस वास्ते यहाँ 'पापयोनयः' पदमें पशु, पक्षी आदिको भी अपवादरूपसे ले सकते हैं। पशु-पक्षियोंमें गजेन्द्र, जटायु आदि भगवद्भक्त हो चुके हैं।

मार्मिक बात—

भगवान्‌की तरफ चलनेमें भावकी प्रधानता होती है, जन्मकी नहीं। जिसके अन्तःकरणमें जन्मकी प्रधानता होती है, उसमें भावकी प्रधानता नहीं होती और उसमें भगवान्‌की भक्ति भी पैदा नहीं होती। कारण कि जन्मकी प्रधानता माननेवालेके 'अहम्' में शरीरका सम्बन्ध मुख्य रहता है, जो भगवान्‌में नहीं लगने देता अर्थात् शरीर भगवान्‌का भक्त नहीं होता और भक्त शरीर नहीं होता, प्रत्युत स्वयं भक्त होता है। ऐसे ही जीव ब्रह्मको प्राप्त नहीं हो सकता; किन्तु ब्रह्म ही ब्रह्मको प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्ममें जीवभाव नहीं होता और जीवमें ब्रह्मभाव नहीं होता। जीव तो प्राणोंको लेकर ही है और ब्रह्ममें प्राण नहीं होते। इस वास्ते ब्रह्म ही ब्रह्मको प्राप्त होता है अर्थात् जीवभाव मिटकर ही ब्रह्मको प्राप्त होता है—'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' (बृहदारण्यक० ४।४।६)।

स्वयंमें शरीरका अभिमान नहीं होता। जहाँ स्वयंमें शरीरका अभिमान होता है, वहाँ 'मैं शरीरसे अलग हूँ' यह विवेक नहीं होता है, प्रत्युत वह हाड़-मांसका, मळ, मूत्र पैदा करनेवाली मसीनका ही दास (गुलाम) बना रहता है। यही अविवेक है, अज्ञान है। इस तरह अविवेककी प्रधानता होनेसे मनुष्य न तो भक्तिमार्गमें चल सकता है और न ज्ञानमार्गमें ही चल सकता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है । इस वास्ते शरीरको लेकर जो व्यवहार है, वह लौकिक मर्यादाके लिये बहुत आवश्यक है और उस मर्यादाके अनुसार चलना ही चाहिये । परन्तु भगवान्‌की तरफ चलनेमें स्वयंकी मुख्यता है, शरीरकी नहीं ।

तात्पर्य यह हुआ कि जो भक्ति या मुक्ति चाहता है, वह स्वयं होता है, शरीर नहीं । यद्यपि तादात्म्यके कारण स्वयं शरीर धारण करता रहता है; परन्तु स्वयं कभी भी शरीर नहीं हो सकता और शरीर कभी भी स्वयं नहीं हो सकता । स्वयं स्वयं ही है और शरीर शरीर ही है । स्वयंकी परमात्माके साथ एकता है और शरीरकी संसारके साथ एकता है। जबतक शरीरके साथ तादात्म्य रहता है, तबतक वह न भक्तिका और न ज्ञानका ही अधिकारी होता है तथा न सम्पूर्ण शङ्काओंका समाधान ही कर सकता है । वह शरीरका तादात्म्य मिटता है—भावसे, अर्थात् मनुष्यका जब भगवान्‌की तरफ भाव होता है, तो शरीर आदिकी तरफ उसकी वृत्ति ही नहीं जाती । वह तो केवल भगवान्‌में ही तल्लीन हो जाता है, जिससे शरीरका तादात्म्य मिट जाता है । इस वास्ते उसको विवेक-विचार करना नहीं पड़ता और उसमें वर्ण-आश्रम आदिकी किसी प्रकारकी शङ्का पैदा ही नहीं होती । ऐसे ही विवेकसे भी तादात्म्य मिटता है । तादात्म्य मिटनेपर उसमें किसी भी वर्ण या आश्रमका अभिमान नहीं होता। कारण कि स्वयंमें वर्ण-आश्रम नहीं है, वह वर्ण-आश्रमसे अतीत है ।

सम्बन्ध—

अब भक्तिके शेष दो अधिकारियोंका वर्णन आगेके श्लोकमें करते हैं ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

श्लोक—

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—

जो पवित्र आचरणवाले ब्राह्मण और ऋषिस्वरूप क्षत्रिय भगवान्‌के भक्त हों, वे परमगतिको प्राप्त हो जायँ, इसमें तो कहना ही क्या ! इस वास्ते हे अर्जुन ! इस अनित्य और सुखरहित शरीरको प्राप्त करके मेरा भजन कर ।

व्याख्या—

'किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता* राजर्षयस्तथा'—जब वर्तमानमें पाप करनेवाला साङ्गोपाङ्ग दुराचारी और पूर्वजन्मके पापोंके कारण नीच योनियोंमें जन्म लेनेवाले प्राणी तथा स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र—ये सभी मेरे शरण होकर, मेरा आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं, परम पवित्र हो जाते हैं, तो फिर जिनके पूर्वजन्मके आचरण भी अच्छे हों और इस जन्ममें भी उत्तम कुलमें जन्म हुआ हो, ऐसे पवित्र ब्राह्मण और पवित्र क्षत्रिय अगर मेरे शरण हो जायँ, मेरे भक्त बन जायँ, तो वे परमगतिको प्राप्त हो जायँगे, इसमें कहना ही क्या है ! अर्थात् वे निःसन्देह परमगतिको प्राप्त हो जायँगे ।

पहले तीसवें श्लोकमें जिसको दुराचारी कहा है, उसके विपक्षमें यहाँ 'पुण्याः' पद आया है और बत्तीसवें श्लोकमें जिनको

---

* यहाँ 'भक्ताः' पद देहली-दीपक-न्यायसे ब्राह्मण और राजर्षि (क्षत्रिय)—इन दोनोंके लिये आया है ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'पापयोनयः' कहा है, उनके विपक्षमें यहाँ 'ब्राह्मणाः' पद आया हैं। इसका आशय है कि ब्राह्मण सदाचारी भी हैं और पवित्र जन्मवाले भी हैं। ऐसे ही इस जन्ममें जो शुद्ध आचरणवाले क्षत्रिय हैं, उनकी वर्तमानकी पवित्रताको बतानेके लिये यहाँ 'ऋषि' शब्द आया है, और जिनके जन्मारम्भक कर्म भी शुद्ध हैं, यह बतानेके लिये यहाँ 'राजन्' शब्द आया है।

पवित्र ब्राह्मण और ऋषिस्वरूप क्षत्रिय—इन दोनोंके बीचमें 'भक्ताः' पद देनेका तात्पर्य है कि जिनके पूर्वजन्मके आचरण भी शुद्ध हैं और जो इस जन्ममें भी सर्वथा पवित्र ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, वे अगर भगवान्‌की भक्ति करने लग जायँ, तो उनके उद्धारमें सन्देह हो ही कैसे सकता है ?

'पुण्या ब्राह्मणाः' 'राजर्षयः' और 'भक्ताः'—ये तीन बातें कहनेका तात्पर्य यह हुआ कि इस जन्मके आचरणसे पवित्र और पूर्वजन्मके शुद्ध आचरणोंके कारण इस जन्ममें ऊँचे कुलमें पैदा होनेसे पवित्र—ये दोनों तो बाह्य चीजें हैं। कारण कि कर्ममात्र बाहरसे (मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और शरीरसे) बनते हैं, तो उनसे जो पवित्रता होगी, वह भी बाह्य ही होगी। इस बाह्य शुद्धिके वाचक ही यहाँ 'पुण्या ब्राह्मणाः' और 'राजर्षयः'—ये दो पद आये हैं। परन्तु जो भीतरसे स्वयं भगवान्‌के शरण होते हैं, उनके लिये अर्थात् स्वयंके लिये यहाँ 'भक्ताः' पद आया है।

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्'—अनित्य और असुख—इन दो विशेषणोंपर विचार करनेसे मालूम होता है

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कि यह मनुष्यजन्म अनन्त जन्मोंका अन्त करनेवाला होनेसे अन्तिम जन्म है। इस जन्ममें मनुष्य भगवान्‌के शरण होकर भगवान्‌को भी सुख देनेवाला बन सकता है। इस वास्ते यह मनुष्यजन्म पवित्र तो है, पर अनित्य है—**'अनित्यम्'** अर्थात् नित्य रहनेवाला नहीं है; किस समय छूट जाय, इसका कुछ पता नहीं है। इस वास्ते जल्दी-से-जल्दी अपने उद्धारके लिये लग जाना चाहिये। इस मनुष्यशरीरमें सुख भी नहीं है—**'असुखम्'**। आठवें अध्यायके पन्द्रहवें श्लोकमें भगवान्‌ने इसको दुःखालय बताया है। इस वास्ते मनुष्यशरीर मिलनेपर सुखभोगके लिये ललचाना नहीं चाहिये। ललचानेमें और सुख भोगनेमें अपना भाव और समय खराब नहीं करना चाहिये।

यहाँ **'इमं लोकम्'** पद मनुष्यशरीरका वाचक है, जो कि केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिला है। मनुष्यशरीर पानेके बाद किसी पूर्वकर्मके कारण भविष्यमें इस जीवका दूसरा जन्म होगा—ऐसा कोई विधान भगवान्‌ने नहीं बनाया है, प्रत्युत केवल अपनी प्राप्तिके लिये ही यह अन्तिम जन्म दिया है। अगर इस जन्ममें भगवत्प्राप्ति करना, अपना उद्धार करना भूल गये, तो अन्य शरीरोंमें ऐसा मौका मिलेगा नहीं। इस वास्ते भगवान् कहते हैं कि इस मनुष्यशरीरको प्राप्त करके केवल मेरा भजन कर। इस प्राणीमें जो कुछ विलक्षणता आती है, वह सब भजन करनेसे ही आती है।

'मां भजस्व' से भगवान्‌का यह तात्पर्य नहीं है कि मेरा भजन करनेसे मेरेको कुछ लाभ होगा, प्रत्युत तेरेको ही महान्

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

लाभ होगा* । इस वास्ते तू तत्परतासे केवल मेरी तरफ ही लग जा, केवल मेरा ही उद्देश्य, लक्ष्य रख । सांसारिक पदार्थोंका आना-जाना तो मेरे विधानसे स्वतः होता रहेगा, पर तू अपनी तरफसे उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंका लक्ष्य, उद्देश्य मत रख; उनपर दृष्टि ही मत डाल; उनको महत्त्व ही मत दे । उनसे विमुख होकर तू केवल मेरे सम्मुख हो जा ।

जैसे, माताकी दृष्टि बालकके शरीरपर रहती है, ऐसे ही भगवान् और भगवान्के भक्तोंकी दृष्टि प्राणियोंके स्वरूपपर रहती है । वह स्वरूप भगवान्का अंश होनेसे शुद्ध है, चेतन है, अविनाशी है । परन्तु प्रकृतिके साथ सम्बन्ध जोड़कर वह तरह-तरहके आचरणोंवाला बन जाता है । उन्तीसवें श्लोकमें भगवान्ने कहा कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें सम हूँ । किसी भी प्राणीके प्रति मेरा राग और द्वेष नहीं है । मेरे सिद्धान्तसे, मेरी मान्यतासे और मेरे नियमोंसे सर्वथा विरुद्ध चलनेवाले जो दुराचारी-से-दुराचारी हैं, वे भी जब मेरेमें अपनापन करके मेरा भजन करते हैं, तो उनके वास्तविक स्वरूपकी तरफ दृष्टि रखनेवाला मैं उनको पापी कैसे मान सकता हूँ ? नहीं मान सकता । और उनके पवित्र होनेमें देरी कैसे लग सकती है ? नहीं लग सकती । कारण कि मेरा अंश होनेसे वे सर्वथा पवित्र हैं ही । केवल उत्पन्न और नष्ट होनेवाले आगन्तुक दोषोंको लेकर स्वयंसे दोषी कैसे हो सकते हैं ? और मैं उनको दोषी कैसे मान सकता हूँ ? वे तो केवल

* इसी भावको लेकर भगवान्ने यहाँ आत्मनेपदी 'भजस्व' क्रिया दी है ।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उत्पत्ति-विनाशशील शरीरोंके साथ 'मैं' और 'मेरा'-पन करनेके कारण मायाके परवश होकर दुराचारमें, पापाचारमें लग गये थे, पर वास्तवमें वे हैं तो मेरे ही अंश ! ऐसे ही जो पापयोनिवाले हैं अर्थात् पूर्वके पापोंके कारण जिनका चाण्डाल आदि नीच योनियोंमें और पशु, पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें जन्म हुआ है, वे तो अपने पूर्वके पापोंसे मुक्त हो रहे हैं। ऐसे पापयोनिवाले प्राणी भी मेरे शरण होकर मेरेको पुकारें तो उनका भी उद्धार हो जाता है। इस प्रकार भगवान्‌ने दो प्रकारके मनुष्योंका अर्थात् वर्तमानके पापी और पूर्वजन्मके पापी—इन दो नीचे दर्जेके मनुष्योंका वर्णन किया।

अब आगे भगवान्‌ने मध्यम दर्जेके मनुष्योंका वर्णन किया। पहले 'स्त्रियः' पदसे स्त्री जातिमात्रको लिया। इसमें ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी स्त्रियाँ भी आ गयी हैं, जो कि वैश्योंके लिये भी वन्दनीया हैं। इस वास्ते इनको पहले रखा है। जो ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके समान पुण्यात्मा नहीं हैं, पर द्विजाति हैं, वे वैश्य हैं। जो द्विजाति नहीं हैं अर्थात् जो वैश्योंके समान पवित्र नहीं हैं, वे 'शूद्र' हैं। वे स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र भी मेरा आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं। जो उत्तम दर्जेके मनुष्य हैं अर्थात् जो पूर्वजन्ममें अच्छे आचरण होनेसे और इस जन्ममें ऊँचे कुलमें पैदा होनेसे पवित्र हैं, ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय भी मेरा आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो जायँ, इसमें सन्देह ही क्या है !

भगवान्‌ने यहाँ (९। ३०—३२ में) भक्तिके सात अधिकारियोंके नाम लिये हैं—दुराचारी, पापयोनि, स्त्रियाँ, वैश्य,

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

शूद्र, ब्राह्मण और क्षत्रिय। इन सातोंमें सबसे पहले भगवान्‌को श्रेष्ठ अधिकारीका अर्थात् पवित्र भक्त ब्राह्मण या क्षत्रियका नाम लेना चाहिये था। परन्तु भगवान्‌ने सबसे पहले दुराचारीका नाम लिया है। इसका कारण यह है कि भक्तिमें जो जितना छोटा और अभिमानरहित होता है, वह भगवान्‌को उतना ही अधिक प्यारा लगता है। दुराचारीमें अच्छाईका, सद्‌गुण-सदाचारोंका अभिमान नहीं होता, इस वास्ते उसमें स्वाभाविक ही छोटापन और दीनता रहती है। इसलिये भगवान् सबसे पहले दुराचारीका नाम लेते हैं। इसी कारणसे बारहवें अध्यायमें भगवान्‌ने सिद्ध भक्तोंको प्यारा और साधक भक्तोंको अत्यन्त प्यारा बताया है (१२ । १३–२०)।

अब इस विषयमें एक ध्यान देनेकी बात है कि भगवान्‌ने यहाँ भक्तिके जो सात अधिकारी बताये हैं, उनका विभाग वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र), आचरण (दुराचारी और पापयोनि और व्यक्तित्व (स्त्रियाँ) को लेकर किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि वर्ण (जन्म), आचरण और व्यक्तित्वसे भगवान्‌की भक्तिमें कोई फरक नहीं पड़ता; क्योंकि इन तीनोंका सम्बन्ध शरीरके साथ है। परन्तु भगवान्‌का सम्बन्ध स्वरूपके साथ है, शरीरके साथ नहीं। स्वरूपसे तो सभी भगवान्‌के ही अंश हैं। जब वे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़कर, उनके सम्मुख होकर भगवान्‌का भजन करते हैं तो उनके उद्धारमें कहीं किञ्चिन्मात्र भी फरक नहीं होता; क्योंकि भगवान्‌के अंश होनेसे वे पवित्र और उद्धार-स्वरूप ही हैं। तात्पर्य यह हुआ कि भक्तिके सात

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अधिकारियोंमें जो कुछ विलक्षणता, विशेषता आयी है, वह किसी वर्ण, आश्रम, भाव, आचरण आदिको लेकर नहीं आयी है, प्रत्युत भगवान्‌के सम्बन्धसे, भगवद्भक्तिसे आयी है। मात्र प्राणी भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ सकते हैं; क्योंकि ये प्राणी भगवान्‌से स्वयं विमुख हुए हैं; भगवान् कभी किसी प्राणीसे विमुख नहीं हुए हैं। इस वास्ते भगवान्‌से विमुख हुए सभी प्राणी भगवान्‌के सम्मुख होनेमें, भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़नेमें, भगवान्‌की तरफ चलनेमें स्वतन्त्र हैं, समर्थ हैं, योग्य हैं, अधिकारी हैं। इसलिये भगवान्‌की तरफ चलनेमें किसीको कभी किञ्चिन्मात्र भी निराश नहीं होना चाहिये।

सम्बन्ध—

उन्तीसवें श्लोकसे लेकर तैंतीसवें श्लोकतक भगवान्‌के भजनकी ही बात मुख्य आयी है। अब आगेके श्लोकमें उस भजनका स्वरूप बताते हैं।

श्लोक—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ३४॥

अर्थ—

तू स्वयं मेरा भक्त हो जा, मेरेमें मनवाला हो जा, मेरा पूजन करनेवाला हो जा और मेरेको नमस्कार कर। इस प्रकार मेरे साथ अपने-आपको लगाकर, मेरे परायण हुआ तू मेरेको ही प्राप्त होगा।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

व्याख्या—

[अपने हृदयकी बात वहीं कही जाती है, जहाँ सुननेवालेमें कहनेवालेके प्रति दोषदृष्टि न हो; प्रत्युत आदरभाव हो। अर्जुन दोषदृष्टिसे रहित हैं, इस वास्ते भगवान्‌ने उनको 'अनसूयवे' (९। १) कहा है। इसी कारण भगवान् यहाँ अर्जुनके सामने अपने हृदयकी गोपनीय बात कह रहे हैं।]

'मद्भक्तः'—'मेरा भक्त हो जा' कहनेका तात्पर्य है कि तू केवल मेरे साथ ही अपनापन कर; केवल मेरे साथ ही सम्बन्ध जोड़, जो कि अनादिकालसे स्वतःसिद्ध है। केवल भूलसे ही शरीर और संसारके साथ अपना सम्बन्ध मान रखा है अर्थात् 'मैं अमुक वर्णका हूँ, अमुक आश्रमका हूँ, अमुक सम्प्रदायका हूँ, अमुक नामवाला हूँ'—इस प्रकार वर्ण, आश्रम आदिको अपनी अहंतामें मान रखा है। इस वास्ते अब असत्-रूपसे बनी हुई अवास्तविक अहंताको वास्तविक सत्-रूपमें बदल दे कि 'मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो'। फिर तेरा मेरे साथ स्वाभाविक ही अपनापन हो जायगा, जो कि वास्तवमें है।

'मन्मना भव'—मन वहीं लगता है, जहाँ अपनापन होता है, प्रियता होती है। तेरा मेरे साथ जो अखण्ड सम्बन्ध है, उसको मैं तो नहीं भूल सकता, पर तू भूल सकता है, इस वास्ते तेरेको 'मेरेमें मनवाला हो जा'—ऐसा कहना पड़ता है।

'मद्याजी'—'मेरा पूजन करनेवाला हो' अर्थात् तू खाना-पीना, सोना-जगना, आना-जाना, काम-धन्धा करना आदि जो कुछ क्रिया

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

करता है, वह सब-की-सब मेरी पूजाके रूपमें ही कर; उन सबको मेरी पूजा ही समझ।

'मां नमस्कुरु'—नमस्कारका अर्थ है कि जिसके चरणोंमें पड़ जाय, उसका जो कुछ अनुकूल, प्रतिकूल या सामान्य विधान हो, उसमें परम प्रसन्न रहे। वह विधायक चाहे मन और मान्यतासे सर्वथा विरुद्ध फैसला दे दे, तो भी उसमें प्रसन्न रहे। जो मनुष्य हानि और परलोकके भयसे मेरे चरणोंमें पड़ते हैं, मेरे शरण होते हैं, वे वास्तवमें अपने सुख और सुविधाके ही शरण होते हैं, मेरे शरण नहीं। मेरे शरण होनेपर किसीसे कुछ भी सुख-सुविधा पानेकी इच्छा होती है तो वह सर्वथा मेरे शरणागत कहाँ हुआ! कारण कि वह जबतक कुछ-न-कुछ सुख-सुविधा चाहता है, तबतक वह अपना कुछ स्वतन्त्र अस्तित्व मानता है।

वास्तवमें मेरे चरणोंमें पड़े हुए वे ही माने जाते हैं, जो अपनी कुछ भी मान्यता न रखकर, मेरी मरजीमें अपने मनको मिला देते हैं। उसमें मेरेसे ही नहीं, प्रत्युत संसारमात्रसे भी अपनी सुख-सुविधा, सम्मानकी किञ्चित् गन्धमात्र भी नहीं रहती। अनुकूलता-प्रतिकूलताका ज्ञान होनेपर भी उसपर उसका कुछ भी असर नहीं होता अर्थात् मेरे द्वारा कोई अनुकूल-प्रतिकूल घटना घटती है, तो मेरे परायण रहनेवाले भक्तकी अनुकूल-प्रतिकूल घटनामें विषमता नहीं होती। अनुकूल-प्रतिकूलका ज्ञान होनेपर भी वह घटना उसको दो रूपसे नहीं दीखती, प्रत्युत केवल भगवत्कृपारूपसे दीखती है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मेरा किया हुआ विधान चाहे शरीरके अनुकूल हो, चाहे प्रतिकूल हो, मेरे विधानसे कैसी भी घटना घटे, उसको मेरा दिया हुआ प्रसाद मानकर परम प्रसन्न रहना चाहिये। अगर मनके प्रतिकूल-से-प्रतिकूल घटना घटती है, तो उसमें मेरी विशेष कृपा माननी चाहिये; क्योंकि उस घटनामें उसकी सम्मति नहीं है। अनुकूल घटनामें उसकी जितने अंशमें सम्मति हो जाती है, उतने अंशमें वह घटना उसके लिये अपवित्र हो जाती है। परन्तु प्रतिकूल घटनामें केवल मेरा ही किया हुआ शुद्ध विधान होता है—इस बातको लेकर उसको परम प्रसन्न होना चाहिये।

प्राणी प्रतिकूल घटनाको चाहता नहीं, करता नहीं और उसमें उसका अनुमोदन भी नहीं रहता, फिर भी ऐसी घटना घटती है, तो उस घटनाको उपस्थित करनेमें कोई भी निमित्त क्यों न बने और वह भी भले ही किसीको निमित्त मान ले, पर वास्तवमें उस घटनाको घटानेमें मेरा ही हाथ है, मेरी ही मरजी है*। इस वास्ते प्राणीको उस घटनामें दुःखी होना और चिन्ता करना तो दूर रहा, प्रत्युत उसमें अधिक-से-अधिक प्रसन्न होना चाहिये। उसकी यह प्रसन्नता मेरे विधानको लेकर नहीं होनी चाहिये; किन्तु मेरेको (विधान करनेवालेको) लेकर होनी चाहिये। कारण कि अगर उसमें उस प्राणीका मङ्गल न होता, तो प्राणिमात्रका परमसुहृद् मैं उसके लिये ऐसी घटना क्यों घटाता ? इसी प्रकार हे अर्जुन ! तू भी सर्वथा मेरे चरणोंमें पड़ जा अर्थात् मेरे प्रत्येक विधानमें परम प्रसन्न रह।

* राम कीन्ह चाहहिं सो होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
(मानस १। १२७। १)

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जैसे, कोई किसीका अपराध करता है, तो वह उसके सामने जाकर लम्बा पड़ जाता है और उससे कहता है कि आप चाहे दण्ड दें, चाहे पुरस्कार दें, चाहे दुत्कार दें, चाहे जो काम करें, उसीमें मेरी परम प्रसन्नता है। उसके मनमें यह नहीं रहता कि सामनेवाला मेरे अनुकूल ही फैसला दे। ऐसे ही भक्त भगवान्‌के सर्वथा शरण हो जाता है, तो भगवान्‌से कह देता है कि 'हे प्रभो! मैंने न जाने किन-किन जन्मोंमें आपके प्रतिकूल क्या-क्या आचरण किये हैं, इसका मेरेको पता नहीं है। परन्तु उन कर्मोंके अनुरूप आप जो परिस्थिति भेजेंगे, वह मेरे लिये सर्वथा कल्याणकारक ही होगी। इस वास्ते मेरेको किसी भी परिस्थितिमें किञ्चिन्मात्र भी असन्तोष न होकर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता होगी।'

'हे नाथ! मेरे कर्मोंका आप कितना ख्याल रखते हैं कि मैंने न जाने किस-किस जन्ममें, किस-किस परिस्थितिमें परवश होकर क्या-क्या कर्म किये हैं, उन सम्पूर्ण कर्मोंसे सर्वथा रहित करनेके लिये आप कितना विचित्र विधान करते हैं। मैं तो आपके विधानको किञ्चिन्मात्र भी समझ नहीं सकता और मेरेमें आपके विधानको समझनेकी शक्ति भी नहीं है। इस वास्ते हे नाथ! मैं उसमें अपनी बुद्धि क्यों लगाऊँ? मेरेको तो केवल आपकी तरफ ही देखना है। कारण कि आप जो कुछ विधान करते हैं, उसमें आपका ही हाथ रहता है अर्थात् वह आपका ही किया हुआ होता है, जो कि मेरे लिये परम मङ्गलमय है।' यही 'मां नमस्कुरु' का तात्पर्य है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

'मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः'—यहाँ 'एवम्' का तात्पर्य है कि 'मद्भक्तः' से तू स्वयं मेरे अर्पित हो गया, 'मन्मनाः' से तेरा अन्तःकरण मेरे परायण हो गया, 'मद्याजी' से तेरी मात्र क्रिया और पदार्थ मेरी पूजा-सामग्री बन गयी और 'नमस्कुरु' से तेरा शरीर मेरे चरणोंके अर्पित हो गया। इस प्रकार मेरे परायण हुआ तू मेरेको ही प्राप्त होगा।

'युक्त्वैवमात्मानम्' (अपने-आपको मेरेमें लगाकर) कहने का तात्पर्य यह हुआ कि 'मैं भगवान्‌का ही हूँ' ऐसे अपनी अहंता-का परिवर्तन होनेपर शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, पदार्थ, क्रिया—ये सब-के-सब मेरेमें ही लग जायँगे। इसीका नाम शरणागति है। ऐसी शरणागति होनेपर मेरी ही प्राप्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं है। मेरी प्राप्तिमें सन्देह वहीं होता है, जहाँ मेरे सिवाय दूसरेकी कामना है, आदर है, महत्त्वबुद्धि है। कारण कि कामना, महत्त्वबुद्धि, आसक्ति आदि होनेपर सब जगह परिपूर्ण रहते हुए भी मेरी प्राप्ति नहीं होती।

'मत्परायणः' का तात्पर्य है कि भगवान्‌की मरजीके बिना कुछ भी करने-करानेकी किञ्चिन्मात्र भी स्फुरणा नहीं रहे। भगवान्‌के साथ सर्वथा अभिन्न होकर उनके हाथका खिलौना बन जाय।

विशेष बात—

(१)

भगवान्‌का भक्त बननेसे, भगवान्‌के साथ अपनापन करनेसे, 'मैं भगवान्‌का हूँ' इस प्रकार अहंताको बदल देनेसे मनुष्यमें बहुत

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जल्दी परिवर्तन हो जाता है। वह परिवर्तन यह होगा कि वह भगवान्‌में मनवाला हो जायगा, भगवान्‌का पूजन करनेवाला बन जायगा और भगवान्‌के मात्र विधानमें प्रसन्न रहेगा। इस प्रकार इन चारों बातोंसे शरणागति पूर्ण हो जाती है। परन्तु इन चारोंमें मुख्यता भगवान्‌का भक्त बननेकी ही है। कारण कि जो स्वयं भगवान्‌का हो जाता है, उसके न मन-बुद्धि अपने रहते हैं, न पदार्थ और क्रिया अपने रहते हैं और न शरीर अपना रहता है। तात्पर्य है कि लौकिक दृष्टिमें जो अपनी कहलानेवाली चीजें हैं, जो कि उत्पन्न और नष्ट होनेवाली हैं, उनमेंसे कोई भी चीज अपनी नहीं रहती। स्वयंके अर्पित हो जानेसे वे प्राकृतमात्र चीजें भगवान्‌की ही हो जाती हैं। उनमेंसे अपनी ममता उठ जाती है। उनमें ममता करना ही गल्ती थी, वह गल्ती सर्वथा मिट जाती है।

(२)

प्राणी संसारके साथ कितनी ही एकता मान लें, तो भी वे संसारको नहीं जान सकते। ऐसे ही शरीरके साथ कितनी अभिन्नता मान लें, तो भी वे शरीरके साथ एक नहीं हो सकते और उसको जान भी नहीं सकते। वास्तवमें संसार-शरीरसे अलग होकर ही उनको जान सकते हैं। इस रीतिसे परमात्मासे अलग रहते हुए परमात्माको यथार्थरूपसे नहीं जान सकते। परमात्माको तो वे ही जान सकते हैं, जो परमात्मासे एक हो गये हैं अर्थात् जिन्होंने 'मैं' और 'मेरा'-पन सर्वथा भगवान्‌के समर्पित कर दिया है। 'मैं' और 'मेरा'-पन तो दूर रहा, 'मैं' और 'मेरे'-पनकी गन्ध भी अपनेमें न रहे कि मैं भी कुछ हूँ, मेरा भी कोई सिद्धान्त है, मेरी भी कुछ मान्यता है, आदि।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जैसे, प्राणी शरीरके साथ अपनी एकता मान लेता है, तो स्वाभाविक ही शरीरका सुख-दुःख अपना सुख-दुःख दीखता है। फिर उसको शरीरसे अलग अपने अस्तित्वका भान नहीं होता। ऐसे ही भगवान्‌के साथ अपनी स्वतःसिद्ध एकताका अनुभव होनेपर भक्तका अपना किञ्चिन्मात्र भी अलग अस्तित्व नहीं रहता। जैसे संसारमें भगवान्‌की मरजीसे जो कुछ परिवर्तन होता है, उसका भक्तपर असर नहीं पड़ता, ऐसे ही उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरमें जो कुछ परिवर्तन होता है, उसका उसपर कुछ भी असर नहीं पड़ता। उसके शरीरद्वारा भगवान्‌की मरजीसे स्वतः-स्वाभाविक क्रिया होती रहती है। यही वास्तवमें भगवान्‌की परायणता है।

मेरेको प्राप्त होनेका तात्पर्य है कि मेरे साथ अभिन्नता हो जाती है, जो कि वास्तविकता है। यह अभिन्नता भेद-भावसे भी होती है और अभेदभावसे भी होती है। जैसे, श्रीजीकी भगवान् श्रीकृष्णके साथ अभिन्नता है। मूलमें भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीजी और श्रीकृष्ण—इन दो रूपोंमें प्रकट हुए हैं। दो रूप होते हुए भी श्रीजी भगवान्‌से भिन्न नहीं हैं और भगवान् श्रीजीसे भिन्न नहीं हैं। परन्तु परस्पर रस-(प्रेम)का आदान-प्रदान करनेके लिये उनमें योग और वियोगकी लीला होती रहती है। वास्तवमें उनके योगमें भी वियोग है और वियोगमें भी योग है अर्थात् योगसे वियोग और वियोगसे

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

योग पुष्ट होता रहता है, जिसमें अनिर्वचनीय प्रेमकी वृद्धि होती रहती है। इस अनिर्वचनीय और प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमको प्राप्त हो जाना ही भगवान्‌को प्राप्त होना है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

इस प्रकार ॐ, तत्, सत्—इन भगवन्नामोंके उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्‌रूप श्रीकृष्णार्जुन-संवादमें 'राजविद्याराजगुह्ययोग' नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥९॥

इस अध्यायमें भगवान्‌ने जो 'मया ततमिदं सर्वम्' आदि उपदेश दिया है, वह सब विद्याओंका राजा है; और जो भगवान्‌ने अपने-आपको प्रकट करके अर्जुनको अपने शरण होने और अपनेमें मन लगानेके लिये कहा है, वह सम्पूर्ण गोपनीय भावोंका राजा है। इन दोनों-(राजविद्या और राजगुह्य) को तत्त्वसे समझ लेनेपर 'योग' (नित्ययोग)का अनुभव हो जाता है। इस वास्ते इस अध्यायका नाम 'राजविद्याराजगुह्ययोग' रखा गया है।

नवें अध्यायके पद, अक्षर और उवाच

(१) इस अध्यायमें 'अथ नवमोऽध्यायः' के तीन, उवाचके दो, श्लोकोंके चार सौ छियालीस और पुष्पिकाके तेरह पद हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पदोंका योग चार सौ चौंसठ है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(२) 'अथ नवमोऽध्यायः' में सात, उवाचमें सात, श्लोकोंमें एक हजार एक सौ बारह और पुष्पिकामें इक्यावन अक्षर हैं। इस अध्यायके चौंतीस श्लोकोंमेंसे बीसवाँ और इक्कीसवाँ—ये दो श्लोक चौवालीस अक्षरोंके हैं और शेष बत्तीस श्लोक बत्तीस अक्षरोंके हैं।

(३) इस अध्यायमें एक उवाच है—'श्रीभगवानुवाच'।

नवें अध्यायमें प्रयुक्त छन्द

इस अध्यायके चौंतीस श्लोकोंमेंसे बीसवाँ और इक्कीसवाँ—ये दो श्लोक 'उपजाति' छन्दवाले हैं। बचे हुए बत्तीस श्लोकोंमेंसे—पहले श्लोकके प्रथम चरणमें 'भगण' और तृतीय चरणमें 'नगण' प्रयुक्त होनेसे 'संकीर्ण-विपुला'; दूसरे श्लोकके प्रथम चरणमें 'रगण' प्रयुक्त होनेसे 'र-विपुला'; तीसरे और दसवें श्लोकके प्रथम चरणमें 'भगण' प्रयुक्त होनेसे 'भ-विपुला'; सत्रहवें श्लोकके प्रथम चरणमें और तेरहवें तथा छब्बीसवें श्लोकके तृतीय चरणमें 'नगण' प्रयुक्त होनेसे 'न-विपुला' संज्ञावाले श्लोक हैं। शेष पचीस श्लोक ठीक 'पथ्यावक्त्र' अनुष्टुप् छन्दके लक्षणोंसे युक्त हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—यह सोचनेकी हमें किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। कारण कि हम सदा भगवान्‌के हाथमें ही हैं और भगवान् सदा ही हमारा वास्तविक हित करते रहते हैं। इस वास्ते हमारा अहित कभी हो ही नहीं सकता। तात्पर्य है कि भक्तका मनचाहा हो जाय तो उसमें भी कल्याण है और मनचाहा न हो तो उसमें भी कल्याण है। भक्तका चाहा और न चाहा कोई मूल्य नहीं रखता, मूल्य तो भगवान्‌के विधानका है। इस वास्ते अगर कोई अनुकूलतामें प्रसन्न और प्रतिकूलतामें खिन्न होता है, तो वह भगवान्‌का दास नहीं है, प्रत्युत अपने मनका दास है। (इसी पुस्तकसे)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) (उ० प्र०)

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

c Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-

ath, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundatio

blic Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-M
Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, J

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2
Rajaram Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon